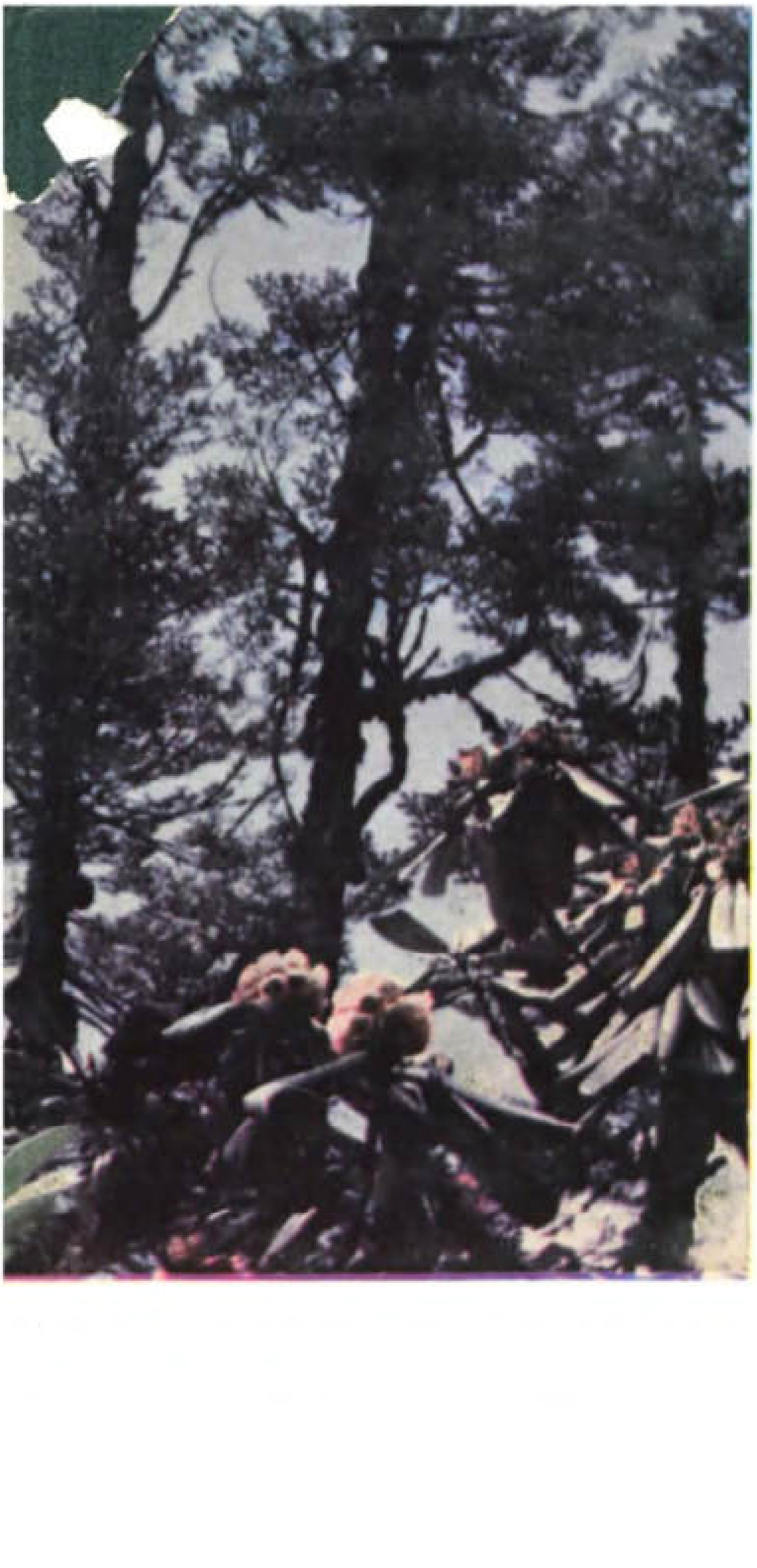

भारत की वनस्पति

संकलन एवं संपादन

सुधांशु कुमार जैन
विश्वनाथ मुद्गल

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
पर्यावरण विभाग

भारत
की
वनस्पति

भारत की वनस्पति

संकलन व संपादन

सुधांशु कुमार जैन
विश्वनाथ मुद्गल

सत्यमेव जयते

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
पर्यावरण विभाग

© भारत सरकार, जून 1984

मूल्य : 35.00 रुपये

निदेशक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण हावड़ा-711103 द्वारा प्रकाशित एवं
दीप प्रिन्टर्स, 3/26, रमेश नगर द्वारा मुद्रित ।

आमुख

भारत को सोने की चिड़िया कहा गया—न केवल इस लिये कि वास्तव में यहाँ कुछ स्वर्ण की खदानें हैं; वरन् इसलिये कि अन्य प्राकृतिक संपदा में भी हमारा देश बहुत धनी है। अनेक खनिज पदार्थ, बड़े क्षेत्र में उपजाऊ भूमि, बड़ी-२ नदियाँ, विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं फलस्वरूप नाना प्रकार की वनस्पतियाँ और जीव जंतु।

इस देश में उपलब्ध वनस्पति तथा पौधों की विविधता की दृष्टि से संसार के कम ही क्षेत्र भारत की तुलना कर सकते हैं।

भारत की वन सम्पत्ति पर पर्याप्त साहित्य अंग्रेजी में है। इनमें से कुछ के अनुवाद देहरादून के वन अनुसंधान संस्थान एवं अन्य के प्रयास से हिन्दी में भी उपलब्ध हैं। वन संपदा पर मूलतः हिन्दी में लिखी कुछ पुस्तकें भी प्रकाशित हो चुकी हैं। कृषि में उपयुक्त पौधों (जैसे-अनाज, दालें, फल, भाजी आदि) पर भी हिन्दी में अनेक रचनाएं हैं। इनमें से कुछ पाठ्यक्रम के लिये हैं तथा कुछ कृषि प्रसार सामग्री के रुप में प्रकाशित हुई हैं।

प्राकृतिक वनस्पति पर सामान्य व्यक्ति के लिये हिन्दी में कोई भी उल्लेखनीय प्रकाशन नहीं हुआ है। ऐसा नहीं कि इसका ज्ञान नहीं है—यदि पूरा नहीं, फिर भी पर्याप्त है। किन्तु हिन्दी में लिखा नहीं गया। बस यही है इस पुस्तक की रचना की पृष्ठ भूमि।

(लेख 1-17)

प्राकृतिक वनस्पति के अध्ययन में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, (पर्यावरण विभाग, भारत सरकार) महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। अतः सर्वप्रथम लेख में सर्वेक्षण के कार्य का ब्यौरा है। तदुपरांत 16 लेखों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों के प्राकृतिक वनों और पुष्पी वनस्पतियों का विवरण है।

(18-23)

जिन छोटे बड़े पुष्पी पौधों-वृक्षों क्षुप, लता आदि को हम अपने चारो और देखते हैं उनके अतिरिक्त सहस्रों अत्यन्त छोटे या सूक्ष्म अपुष्पी पौधे भी प्राकृतिक वनस्पति में सम्मिलित हैं जैसे शैवाल, कवक, लाइकेन आदि। इन छः लेखों में अपुष्पी पौधों की वनस्पति का संक्षिप्त विवरण हैं।

(24-25)

हमारे देश के आदिवासियों एवं ग्राम वासियों को पौधों के अनेक प्रयोग ज्ञात हैं, वास्तव में इनका अध्ययन खोज का एक नया एवं रोचक विषय ही है। इस पहलू पर तथा औषधीय पौधों में मिलावट के महत्वपूर्ण विषय पर ये दो लेख हैं।

(26-27)

पौधों के वर्गीकरण में प्राय: वाह्य गुणों जैसे पौधे के फूल, पत्तों आदि के आकार, रूप, संख्या, रंग आदि की सहायता ली जाती थी; किन्तु अब उनके गुणसूत्रों, परागकणों तथा रासायनिक पदार्थों आदि के अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों की भी सहायता ली जाती है। इन दो लेखों में वनस्पति विज्ञान की इस नयी दिशा का विवरण है।

(28-34)

कुछ कारणों से हमारे देश की सभी प्राकृतिक संपदा पर अनेक प्रकार के दबाव हैं। यदि सही कदम न लिये जायें तो बढ़ती जनसंख्या, कृषि का प्रसार, नये नगर, नयी सड़कें आदि प्राकृतिक साधनों पर हानिकारक प्रभाव डाल सकते हैं। पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने में वनस्पति का योगदान तथा सुरक्षित वनों एवं राष्ट्रीय उद्यानों द्वारा लुप्तप्राय पौधों के संरक्षण से भी संबंधित ये लेख सम्मिलित किये गये हैं।

(35-43)

ये लेख पौधों के विषय में जनता को जागरूक करना, संग्रहालयों में उनको प्रदर्शित करना, विदेशी पौधों का देश में आगमन, वनस्पति के अध्ययन एवं संरक्षण उद्यानों का महत्व आदि पर हैं।

पुस्तक के लिए 41 लेखकों ने सामग्री प्रस्तुत की है। कई लेखकों का हिन्दी में लिखने का यह प्रथम प्रयास है। अत: भाषा की दृष्टि से कहीं-2 त्रुटियां, वाक्य रचना तथा शैली में भिन्नता आदि स्वभाविक है। इससे पाठकों को भाषा के प्रवाह में कुछ असंगति सी लग सकती है, किन्तु बहुरंगी का आनन्द भी आ सकता है।

कुछ पाठकों को किसी विषय विशेष पर अधिक जिज्ञासा हो सकती है। अत: लेखकों के पते नाम के वर्णक्रमानुसार पुस्तक के आरंभ में दिये गये हैं। भारत की वनस्पतियों पर प्रकाशित कुछ ग्रंथों की सूची भी परिशिष्ट में दी गई है।

पौधों के वैज्ञानिक नामों के शुद्ध उच्चारण एवं लिप्यांतरण लैटिन होते हैं :—जैसे **Lotus: लोटुस, Cedrus : सेड्रुस, Pyrus : पीरुस Aconitum : आकोनीटुम** तथा संसार के अधिकांश देशों में इसी प्रकार बोले जाते हैं। भारत में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से कुछ अशुद्ध उच्चारण (सुधांशु कुमार जैन (1967) वनस्पति कोश, दिल्ली : राजकमल प्रकाशन

इस पुस्तक में उच्चारण के सिद्धांत समझाये गये हैं तथा लगभग 1000 पौधों के सही उच्चारण दिये हैं) प्रचलित हो गये हैं। इस पुस्तक में लैटिन उच्चारण प्रयुक्त किये गये हैं। पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक में प्रयुक्त पौधों के नामों के रोमन लिप्यांतरण परिशिष्ट में दिये हैं।

श्री सर्वेश कुमार, प्रकाश कुमार तिवारी, विष्णु शरण अग्रवाल, भगवती प्रसाद उनियाल, अरुण कुमार बनर्जी, दया शंकर पांडेय एवं हरी शंकर पांडेय का पुस्तक की सामग्री को प्रस्तुत रूप देने में उल्लेखनीय सहयोग है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण
हावड़ा
जून 1984.

विषय-सूची

			पृ० सं०
1.	भारत में वनस्पति सर्वेक्षण	सुधांशु कुमार जैन	1
2.	लद्दाख के पेड़ पौधे और वातावरण के अनुसार उनका अनुकूलन	उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य	9
3.	जम्मू व कश्मीर के वन और वनस्पति	सुदर्शन कुमार मल्होत्रा	13
4.	हिमाचल प्रदेश के वन और वनस्पति	हर्ष चौधरी	17
5.	चमोली गढ़वाल में पाये जाने वाले उपयोगी पौधे	भोला दत्त नैथानी	22
6.	फूलों की घाटी का संरक्षण और पेड़ पौधों के विषय में कुछ विचार	उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य एवं देव राज अग्रवाल	28
7.	राजस्थान के वन और वनस्पति	विजेन्द्र सिंह	32
8.	उत्तर प्रदेश के वन और वनस्पति	रमेश चन्द्र श्रीवास्तव	39
9.	बिहार, उड़ीसा व पश्चिम बंगाल के मैदानी क्षेत्र के वन और वनस्पति	सर्वेश कुमार	43
10.	सिक्किम के रोचक पौधे	बिजय कृष्ण	50
11.	अरुणाचल के वन और वनस्पति	चरणजीत लाल मल्होत्रा	53
12.	मध्य प्रदेश के वन और वनस्पति	दिनेश मोहन वर्मा	56
13.	गुजरात के वन और वनस्पति	महेशचन्द्र जयन्तीलाल कोठारी	60
14.	कर्नाटक के वन और वनस्पति	नेत्र पाल सिंह	64
15.	तमिलनाडु के वन और वनस्पति	ब्रह्म दत्त शर्मा	68
16.	अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के वन और वनस्पति	रमेश चन्द्र श्रीवास्तव	73
17.	भारत के अनावृत बीजी पादप	प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव	77

18. कुछ रोचक अपुष्पी पौधे—पर्णांग	राम दास दीक्षित	82
19. भारतीय शैवालक की वर्तमान स्थिति, प्रत्याशा, कठिनाइयां और महत्व	कृष्ण पाल सिंह	86
20. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व—शैवाल	जगदीश लाल	90
21. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व—कवक	जय राम शर्मा	95
22. भारत में अपुष्पी पादप समूह-'लिवरवर्ट्स' की वर्तमान स्थिति	देवेन्द्र कुमार सिंह	102
23. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व—मॉस	जितेन्द्र नाथ वोहरा	109
24. औषधीय पौधों के मिश्रक व विस्थापक	विश्वनाथ मुद्गल	116
25. गढ़वाल की नृवनस्पति	भगवती प्रसाद उनियाल एवं विपिन बलोदी	123
26. पौधों के वर्गीकरण में कोशिकानुवांशिकी के अध्ययन की उपयोगिता	सर्वेश कुमार	127
27. पौधों के वर्गीकरण में रसायन विज्ञान का योगदान	सत्य प्रकाश चतुर्वेदी	132
28. भारत की वनस्पति सम्पदा-विविधता और पर्यावरण रक्षा में योगदान	श्री कृष्ण मूर्ति	137
29. मेघालय के पावन लघु वन	प्रभात कुमार हजरा	140
30. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान	आनन्द कुमार एवं जगदीशलाल	142
31. कौरबेट राष्ट्रीय उद्यान और उसकी वनस्पति	पूरन चन्द पन्त	146
32. भारत के विलुप्त प्राय पौधे	अमर सिंह चौहान	149
33. भारत के सीमित क्षेत्री पौधे	अजय मेहरोत्रा	153

34. राष्ट्रीय मरु उद्यान एवं मरुस्थल में पौधों को सुरक्षित रखने की संभावनायें	राजेन्द्र प्रसाद पान्डे	156
35. वन निधि संरक्षण एवं जन संचार विधि	विष्णु शरण अग्रवाल	164
36. भारत में नृवनस्पति विज्ञान का अध्ययन	वीना चन्द्रा	170
37. भारत में पाये जाने वाले सालकुल के वृक्ष	प्रकाश कुमार तिवारी	174
38. भारत में गोधूमि कुल के उपयोगी पौधें	गिरिजा प्रसाद राय	177
39. क्यू हर्बेरियम का भारतीय वनस्पति के अध्ययन में योगदान	ब्रह्म दत्त शर्मा	186
40. भारतीय वनस्पति उद्यान	हरी शंकर पान्डेय	193
41. भारत में कुछ उपयोगी विदेशी पौधे	दया शंकर पाण्डेय	200
42. भारत में विदेशी खर पतवार	प्रकाश कुमार तिवारी एवं गौर गोपाल माइती	218
43. वनस्पति उद्यानों में लुप्त-प्राय पौधों का संरक्षण—घटपर्णी	अरुण कुमार बनर्जी	225

परिशिष्ट

1. पौधों के वंश तथा जाति के नामों की अनुक्रमणिका	229
2. हिन्दी अंग्रेजी शब्दावली	271
3. संदर्भ-सूची	277

लेखक

अजय मेहरोत्रा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 711103.
अमर सिंह चौहान	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्र, शिलांग 793003.
अरुप कुमार बैनर्जी	—भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा 711103.
आनन्द कुमार	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र, इलाहाबाद 211002.
उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य	—केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा 711103.
कृष्ण पाल सिंह	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्र, शिलांग 793003.
गिरजा प्रसाद राय	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र, इलाहाबाद 211002.
गौर गोपाल माइती	—वनस्पति विभाग, कल्याणी विश्वविद्यालय, कल्याणी 741235.
चरणजीत लाल मल्होत्रा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.
जगदीश लाल	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र, इलाहाबाद 211002.
जय राम शर्मा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 711103.
जितेन्द्र नाथ वोहरा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.
दया शंकर पान्डेय	—भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा 711103.
दिनेश मोहन वर्मा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र, इलाहाबाद 211002.

देव राज अग्रवाल —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.

देवेन्द्र कुमार सिंह —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूर्वी क्षेत्र, शिलांग 793003.

नेत्र पाल सिंह —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, पुणे, 411001.

पूरन चन्द पन्त —भारतीय वनस्ति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून, 248001.

प्रकाश कुमार तिवारी —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 1, सदर स्ट्रीट, कलकत्ता 700016.

प्रभात कुमार हजरा —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.

प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव —वनस्पति विभाग, चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय, इलाहाबाद 211002.

विजय कृष्ण —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, गंगटोक 737101.

बिपिन बलोदी —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादुन 248001.

ब्रह्म दत्त शर्मा —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, पुणे 411001.

भगवती प्रसाद उनियाल —केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय, हावड़ा 711103.

भोला दत्त नैथानी —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.

महेशचन्द्र जयन्तीलाल कोठारी —भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्य क्षेत्र इलाहाबाद 211002.
राजेन्द्र प्रसाद पान्डे	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर 342003.
राम दास दीक्षित	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, मध्यक्षेत्र, इलाहाबाद 211002.
बिजेन्द्र सिंह	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, जोधपुर 342003.
विश्वनाथ मुद्गल	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 711103.
विष्णु शरण अग्रवाल	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 711103.
वीना चन्द्रा	—वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून 248006.
श्री कृष्णा मूर्ति	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.
सत्यप्रकाश चतुर्वेदी	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, 1, सदर स्ट्रीट, कलकत्ता 700016.
सर्वेश कुमार	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.
सुदर्शन कुमार मल्होत्रा	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पश्चिमी क्षेत्र, पुणे, 411001.
सुधांशु कुमार जैन	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा 711103.
हर्ष चौधरी	—भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र, देहरादून 248001.
हरी शंकर पान्डेय	—भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा 711103.

पाफिओपेडिलुम वेनुस्टुम

पाफिओपेडिलुम फाइारएअ्रानुम

पाफिग्रोपेडिलुम स्पिसेरिग्रानुम

पाफिग्रोपेडिलुम विल्लोसुम

1. भारत में वनस्पति सर्वेक्षण

सुधांशु कुमार जैन

वनस्पति इस पृथ्वी की प्राकृतिक सम्पत्ति है। इसका योजनाबद्ध अध्ययन इस सम्पत्ति के सदुपयोग और संरक्षण के लिए आवश्यक है। वनस्पति पर अनेक छोटे-बड़े उद्योग निर्भर हैं। स्वजात वनस्पति अनेक रूप से कृषि की फसलों की उन्नति के लिए भी उपयोगी होती है। भूमि संरक्षण तथा पर्यावरण की स्वच्छता के लिए वनस्पति का बहुत महत्व है।

किसी देश या क्षेत्र में कौन-कौन से पौधे पाये जाते हैं, कहां-कहां पाते जाये हैं, कैसी परिस्थिति में होते हैं, थोड़ी संख्या में मिलते हैं या बहुतायत में होते हैं, आदि पहलुओं से सम्बन्धित अध्ययन वहाँ का वनस्पति सर्वेक्षण कहलाता है।

प्राकृतिक वनस्पति म क्या परिवर्तन हो रहे हैं, क्या कोई नये पौधे वहां प्रवेश कर गये हैं, अथवा क्या पौधों का कुछ जातियां वहां विलीन हो रही हैं, या हो चुकी हैं इसके लिए बारम्बार सर्वेक्षण करना आवश्यक होता है।

वनस्पति जगत में भारत में पाये जाने वाले पौधों का विशेष स्थान है। इसके कई कारण हैं। इस पृथ्वी पर कई क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ पौधों की अनेक नई जातियों की उत्पत्ति हुई है और आज भी इसके प्रमाण हैं। भारत तथा उसका निकटवर्ती क्षेत्र भी उनमें से एक है।

भारत का क्षेत्रफल लगभग 32 लाख वर्ग किलोमीटर है, तथा यहाँ लगभग 15 हजार जाति के पुष्पी पौधे पाये जाते हैं। वर्ग भूमि के विचार से संसार के कम ही क्षेत्रों में वनस्पतियों की ऐसी विविधता पायी जाती है। उत्तरी अमेरिका का क्षेत्रफल भारत के क्षेत्रफल का लगभग आठ गुना है लेकिन वहां केवल 22 हजार जाति के पौधे हैं। आस्ट्रेलिया का क्षेत्रफल भारत का दो गुना है, किन्तु वहाँ केवल 10 हजार जाति के पौधे होते हैं।

वनस्पतियों की विविधता के कारण अनेक उपयोगी, शोभनीय, अनोखे तथा दुर्लभ पौधे भारत में मिलते हैं। इसका कुछ अनुमान निम्नलिखित उदाहरण से हो सकेगा।

घास एक बहुत साधारण शब्द है। घर के आसपास, सड़क के किनारे, बेकार स्थानों में, बगीचे के लान में घास हो तो होती है। किन्तु थोड़े ही व्यक्तियों को यह मालूम है कि भारत में लगभग एक हजार किस्म की घास पायी जाती हैं, तथा गेहूं, चावल, ज्वार, बाजरा, ईख, मकई, कोदों तथा विविध प्रकार के बाँस आदि घास-कुल के ही पौधे हैं।

हमारे देश की अधिकांश जनता इतना भी नहीं जानती कि आर्किड शायद एक सुन्दर फूल होता है। बहुत से वनस्पतिज्ञों ने भी अपने जीवन में जीवित आर्किड नही देखा होगा। लेकिन यह उनका दोष नहीं। मैदानी क्षेत्रों में आर्किड कम मिलते हैं। हमारे देश में लगभग 1000 जाति के आर्किड होते हैं, जो अधिकतर पर्वतीय क्षेत्रों में, और उसमें भी विशेषतः पूर्वी हिमालय में, पाये जाते हैं। संसार में भारत के अनेक आर्किडों की मांग है।

मरुस्थल के पौधे, तटवर्ती दलदल में होने वाली मैंनग्रोव वनस्पति, आर्द्र उष्ण कटिबंधी क्षेत्रों के घने वनों के विशिष्ट पौधे, पर्वतीय क्षेत्रों के रंगीन शोभनीय **रहोडोडेंड्रोन व प्रिमूला** तथा चीड़ व देवदार, अधिक ऊंची श्रेणियों में ब्रह्म कमल, मेघालय का मांसाहारी पौधा **नेपेन्थेस** (घटपर्णी), तार जैसी दृढ़ सियाड़ी (बाउहीनिया वाहलिई) नामक लता (की छाल), चमेली, गुलाब तथा चम्पा जैसे सुगंधित पुष्प, सर्पगंधा, पाथरी, **जटामांसी**, रूदंती, पुनर्नवा और ब्राह्मी जैसे सहस्त्रों औषधीय पौधे, दुर्लभ रूप से पाए जाने वाले लेडी स्लीपर, **साप्रिआ**, **मिट्राष्टेमोन** आदि पौधे, सभी तो भारत मे मिलते हैं।

हमारी राष्ट्रभूमि वनस्पति संपदा की दृष्टि से बहुत धनी है। इस विषय में हम क्या खोज कर रहे हैं यह जानना रोचक होगा।

भारत की वनस्पतियों के उपयुक्त सर्वेक्षण एवं अध्ययन के लिये सन् 1890 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की स्थापना की गयी थी। यह बात नहीं है कि सर्वेक्षण विभाग की स्थापना के पूर्व भारत की वनस्पतियों के विषय में बिल्कुल ज्ञान ही नहीं था।

वर्तमान युग से पहले भी मानव पेड़-पौधों से खाद्य पदार्थ, औषधि, छाल, रंग आदि प्राप्त करता रहा है। प्राचीन साहित्य में वेदों के समय से ही उपयोगी पौधों का विवरण मिलता है। चरक और सुश्रुत संहिता में अनेक पौधों के औषधीय गुणों का वर्णन है। अनेक हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में, जिनमें धार्मिक एवं साहित्यिक रचनाएं सम्मिलित हैं, पौधों के ब्यौरे दिये गए हैं।

ऐसा माना जाता है कि भारत में वनस्पतियों पर सर्वप्रथम छपी रचना 'गार्सिया डेओर्टा की 'कोलोक्योस' है जो सन् 1565 में प्रकाशित हुई थी। सन् 1678-1703 के बीच फान रीड द्वारा रचित 'हार्टुस इंडिकुस मलाबारिकुस' नामक एक सचित्र ग्रंथ प्रकाशित हुआ।

18वीं तथा 19वीं शताब्दी में अनेक व्यक्तियों ने भारत के विभिन्न भागों से पौधे एकत्रित करके, उन्हे भली भांति सुखाकर, उनके विधिवत् नमूने तैयार किये और भारत तथा संसार के कई संग्रहालयों को भेजे। भारत में सन् 1787 में कलकत्ता में राजकीय वनस्पति उद्यान की, तथा सन् 1793 में सुखाए पौधों के संग्रहालय (हर्बेरियम अथवा पादपालय) की स्थापना हुई। इनसे भारत की वनस्पतियों का अध्ययन वर्तमान वैज्ञानिक ढंग से आरम्भ हुआ। 18वीं तथा 19वीं शताब्दी में पौधे एकत्रित करने वालों अथवा

ऐसे कार्य का आयोजन करने वालों में कोएनिग, क्लीन, राटलर, वाइट, फ्लेमिंग रॉक्सबर्ग, वालिच, बुकैनन-हैमिल्टन, ग्रिफिथ, हूकर, थाम्सन, किंग, गिब्सन, ग्राहम, बेड्डोम, डैल्जेल, रायल, स्ट्रैची, डथी, नाइर्न, एवं कैमरोन के नाम उल्लेखनीय हैं।

19वीं शताब्दी के मध्य में जब संसार के विभिन्न देशों में फ्लोरा (वनस्पतिजात) लिखने के कार्य की लहर सी आयी तब भारत की वनस्पतियों पर भी जोसेफ डाल्टन हुकर और उनके सहयोगियों ने एक वृहत ग्रंथ 'फ्लोरा ग्राफ ब्रिटिश इंडिया' की रचना की। इस ग्रंथ की रचना के समय ही इसके लेखकों और भारत के प्रशासकों को यह आभास हुआ कि भारत की वनस्पतियां अत्यन्त विशिष्ट हैं, और इनके उपयुक्त सर्वेक्षण और अध्ययन की आवश्यकता है।

यह थी संक्षिप्त भूमिका, जिसके आधार पर सन् 1890 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की स्थापना हुई थी।

भारत के विशाल क्षेत्र को देखते हुए सर्वेक्षण विभाग के कलकत्ता स्थित कार्यालय के अतिरिक्त तीन और केन्द्र स्थापित किये गये थे, यह थे—उत्तर में सहारनपुर, पश्चिम में बम्बई तथा दक्षिण में मद्रास।

20वीं शताब्दी के आरम्भ अथवा पहले चार दशकों में कई नये 'फ्लोरा' प्रकाशित हुए, जैसे कोबेंट्री द्वारा कश्मीर, कोलेट द्वारा शिमला, बैंबर द्वारा पंजाब, ग्रोस्मेस्टन द्वारा कुमायूं, डथी द्वारा उत्तर प्रदेश तथा निकटवर्ती क्षेत्र, हेन्स द्वारा बिहार व उड़ीसा, प्रेन द्वारा बंगाल, कांजीलाल आदि द्वारा असम, कुक द्वारा बम्बई, विट एवं हेन्स द्वारा मध्य प्रदेश, रामाराव द्वारा ट्रावनकोर, गैम्बल द्वारा मद्रास, फाइसन द्वारा नीलगिरि तथा पुलनी पर्वत, पार्किन्सन द्वारा अंडमान द्वीप तथा इंद्राजी ठकर द्वारा कच्छ की वनस्पतियों पर।

इनमें से अधिकांश पुस्तकों की सामग्री 19वीं शताब्दी में एकत्रित पौधों पर ही आधारित थी। इनमें 20वीं शताब्दी में एकत्रित थोड़े ही पौधों का विवरण है।

20वीं शताब्दी के प्रथम चार दशकों में विभिन्न प्रांतों में वनों तथा कृषि विभागों का बहुत विस्तार हुआ और वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के अनेक कार्य उन्होंने भी करने आरम्भ कर दिये। जूट, चाय, कुनैन, काठ आदि चीजों से सम्बंधित पृथक संस्थाएं या प्रयोगशालाएं स्थापित हुई और सर्वेक्षण विभाग का कार्य अत्यन्त सीमित रह गया। सन् 1939 में सर्वेक्षण के तत्कालीन निदेशक काल्डर के अवकाश प्राप्त करने पर विभाग लगभग बन्द सा हो गया।

कलकत्ता स्थित वनस्पति उद्यान एवं पादपालय तथा कुछ विश्वविद्यालयों आदि में थोड़ा कार्य चलता रहा। विशेषत: डा० विश्वास, रायजादा, चटर्जी, संतापाऊ, अघारकर, नारायण स्वामी, राजी, रत्नम, बनर्जी एवं श्रीवास्तव ने सर्वेक्षण का कार्य कुछ

अंश तक जारी रखा। उनके सम्मुख अनेक कठिनाइयाँ थीं; आवश्यक धन, कर्मचारी तथा अन्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं थीं।

1953 में संतापाऊ द्वारा रचित खंडाला घाट का फ्लोरा प्रकाशित हुआ। शताब्दी के प्रारम्भ में प्रकाशित अनेक क्षेत्रीय फ्लोरा के लगभग 30-40 वर्ष के बाद संतापाऊ की पुस्तक के प्रकाशन ने सर्वेक्षण के कार्य को फिर प्रोत्साहित किया।

इस समय विशेष कठिनाई थी, सर्वेक्षण के परिणाम और अध्ययन पर आधारित शोध पत्रों के प्रकाशन की। फ्लोरा के वर्णन पर शोधपत्र प्राय: बड़े होते हैं, प्राय: ही 50-60 या अधिक पृष्ठों के। वनस्पति शास्त्र की शोध पत्रिकायें प्राय: उन्हें स्वीकार नहीं करती थी। अनेक शोधपत्र कई भाग में विभाजित करके छपते थे। बहुत अच्छे शोधपत्र मात्र क्षेत्रीय महत्व की पत्रिकाओं मे अथवा विश्वविद्यालयों एवं छोटी विज्ञान समितियों की पत्रिकाओं में छपवा दिये जाते थे। अर्थात् एक ओर तो फ्लोरा पर कार्य करने वाले कम थे, जो थे भी, उनकी उपलब्धियों को उचित मान्यता नहीं मिल पाती थी।

इन परिस्थितियों का सबसे अनुचित परिणाम यह हुआ कि पर्याप्त संख्या में अच्छे विद्यार्थियों का ध्यान वनस्पति सर्वेक्षण, बॉटनी तथा वनस्पति नामकरण विज्ञान की ओर आकर्षित नहीं हुआ। इसका प्रभाव अब भी हमारे देश के वनस्पति सर्वेक्षण पर पड़ रहा है।

देश की स्वतंत्रता के बाद कई वनस्पतिज्ञों ने महसूस किया कि भारत की वनस्पतियों के उपयुक्त सर्वेक्षण तथा अध्ययन की बहुत आवश्यकता है। कुछ विश्व-विद्यालयों में इस पर कार्य भी प्रारंभ हुआ। सन् 1952 में सरकार ने जानकी अम्माल को, जो उस समय प्रयाग में स्थित केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला की निदेशक थीं, विशेष अधिकारी नियुक्त किया, और उन्हें भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण नामक विभाग की योजना बनाने का कार्य सौंपा। सन् 1954 में इस विभाग की फिर से स्थापना (या पुनर्गठन कहें) हुई। 1-12-1954 को बम्बई के जेवियर कालेज के प्राध्यापक प्रो० संतापाऊ को, कलकत्ता में नया कार्यालय स्थापित करके, कार्यकारी मुख्य वनस्पतिज्ञ (चीफ बाटनिस्ट) नियुक्त किया गया। लगभग एक वर्ष बाद कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कालेज के अवकाश प्राप्त आचार्य, सेनगुप्ता विधिवत् चीफ बॉटनिस्ट नियुक्त हुए। उनकी नियुक्ति के बाद, पुन: संतापाऊ, उसके बाद सुब्रमनयम एवं मुखर्जी इस पद पर रहे। सन् 1963 से इस पद का नाम पुन: निदेशक हो गया।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग की वर्तमान कार्यवाही तथा उपलब्धियाँ

इस समय विभाग के अन्तर्गत कलकत्ता में एक केन्द्रीय कार्यालय, भारतीय वनस्पति उद्यान, केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय (हर्बेरियम), केन्द्रीय वनस्पति प्रयोगशाला, उपयोगी पौधों का संग्रहालय तथा नौ क्षेत्रीय कार्यालय, देहरादून, जोधपुर, इलाहाबाद, पुणे,

कोयंबटूर, शिलांग, पोर्ट ब्लेयर (अंडमान द्वीप), ईटानगर (अरूणाचल प्रदेश) तथा गैंगटोक (सिक्किम) में हैं ।

विभाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं

1. देश के विभिन्न क्षेत्रों में भ्रमण करके पौधों के नमूने एकत्रित करना, उनके उपयोग आदि पर सूचना एकत्रित करना, सही पहचान करना, वैज्ञानिक नाम निश्चित करना तथा इन नमूनों और साहित्य के आधार पर देश का नया "फ्लोरा" तैयार करना ।

2. जिन पौधों के अत्यधिक उपयोग से अथवा उनकी संख्या और उपज कम होने के कारण तथा वनों के नष्ट होने के कारण विलीन हो जाने की आशंका या संभावना है, उनका अध्ययन करके उनके संरक्षण की व्यवस्था करना ।

3. पौधों की उत्पत्ति, विकास, तथा देश एवं संसार में इनके वितरण संबंधी विषयों पर यथासंभव खोज करना ।

4. देश के विभिन्न भागों में वनस्पति संबंधी सर्वेक्षण, अध्ययन, शिक्षण तथा संरक्षण की सुविधा के लिये क्षेत्रीय वनस्पति-उद्यान, पादपालय, पुस्तकालय तथा प्रयोगशालाएं स्थापित करना, और पौधों के शुष्क व जीवित दोनों प्रकार के नमूनों का संरक्षण करना ।

5. देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास में वनस्पतियों के अधिकाधिक योगदान की दृष्टि से पौधों के नये उपयोग व प्रयोजन पर कार्य करना ।

इस विभाग में इस समय इन कार्यों के लिये 150 से ऊपर वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त, फ्लोरा का कार्य शीघ्र पूरा करने के लिये कुछ कुलों या वंशों पर कार्य करने के लिये विश्वविद्यालयों तथा अन्य शोध संस्थाओं के कुशल वैज्ञानिकों का सहयोग लिया जा रहा है । सर्वेक्षण में लगभग 40 छात्रवृत्तियों की व्यवस्था है । इसके लिए प्राय: एम०एस०सी० में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र—छात्राएं चुने जाते हैं, जो सर्वेक्षण के विभिन्न कार्यालयों में शोध कार्य करते हैं । कुछ पी०एच०डी० की उपाधि के लिए भी कार्य करते हैं । विभाग कुछ वैज्ञानिकों को इंगलैंड, रूस, जर्मनी व फ्रांस भेज कर उनकी उच्च शिक्षा की भी व्यवस्था करता है । एक वैज्ञानिक को लंदन के निकट "क्यू हर्बेरियम" में 1-2 वर्ष के लिये रखने की भी व्यवस्था है जिससे वहां एकत्रित भारत की वनस्पति से संबंधित प्ररूपों का अध्ययन किया जा सके ।

सर्वेक्षण विभाग के पुनर्गठन के कुछ ही वर्ष बाद 1959 में एक वैज्ञानिक पत्रिका बुलेटिन आफ बोटेनिकल सर्वे आफ इण्डिया का शुभारंभ किया गया । सर्वेक्षण के शोधपत्रों के लिए एक उत्तम माध्यम स्थापित हो गया ।

अब तक सर्वेक्षण विभाग के ही वैज्ञानिकों ने लगभग 1500 बार वनों में भ्रमण करके सर्वेक्षण किया है और पौधों के लगभग 20 लाख नमूने एकत्रित किए हैं । लगभग 50 ग्रंथ तथा 2000 लेख प्रकाशित किए गए हैं ।

सर्वेक्षण की अनेक उपलब्धियों में से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं

अनेक ऐसे क्षेत्रों का सर्वेक्षण जहाँ की वनस्पतियों की जानकारी नहीं थी या बहुत थोड़ी थी, जैसे अंडमान द्वीप, लक्षद्वीप, हिमालय की श्रेणियां, अरूणाचल तथा अन्य प्रदेशों व तटवर्ती क्षेत्रों आदि का ।

भारत के आर्किड, मॉस, लाइकेन, फर्न, उत्तरी व पूर्वी भारत के गोघूमि वर्ग के पौधों आदि पर शोध कार्य ।

सोलानुम वंश के पौधों से सोलासोडीन प्राप्त करने की दिशा में कार्य ।

इफीजेनिआ वंश के पौधों से कोलचीसीन नामक बहुमूल्य पदार्थ सम्बन्धी खोज ।

विभिन्न वंशों में पराग के आकार और वर्गिकी में इसके महत्व सम्बन्धी अनुसंधान ।

कपूर, तुलसी तथा सर्पगंधा आदि औषधीय पौधों की गुणसूत्र संख्या व आकृति पर कार्य ।

आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त होने वाले औषधीय, खाद्य तथा अन्य उपयोगी पौधों पर कार्य । सर्वेक्षण के इस कार्य की देश-विदेश में सराहना हुई है ।

देश के भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थित सर्वेक्षण उद्यानों में अध्ययन तथा संरक्षण हेतु अनेक दुर्लभ, उपयोगी व संकटग्रस्त पौधों का संग्रह ।

इंगलैंड के क्यू हर्बेरियम में रखे हुए भारतीय पौधों के प्ररूपों के फोटो खींच कर उनका संग्रह तैयार करना ।

सर्वेक्षण के विभिन्न केन्द्रों पर पौधों की वर्गिकी तथा उपयोगिता पर गोष्ठी, व्याख्यान आदि द्वारा समय-समय पर शिक्षकों, विद्यार्थियों तथा शोधकर्ताओं के शिक्षण की व्यवस्था करना ।

विश्वविद्यालयों, अनुसंधानकर्ताओं, वैज्ञानिकों तथा व्यापारियों आदि को पौधों के नाम, उपयोग, प्राप्तिस्थान, व्यापार, संरक्षण, कृषि आदि सम्बन्धी अनेक विषयों पर प्रतिवर्ष सहस्त्रों प्रश्नों के उत्तर देना, तथा सीमित रूप से नमूने भी भेजना ।

सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि यह हुई कि देश में अनेक स्थानों पर पादपालयों, पुस्तकालयों एवं वनस्पति उद्यानों की स्थापना हुई, जिससे अनेक शिक्षा संस्थानों में सर्वेक्षण के कार्य में रुचि जागृत हुई । इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पिछले लगभग 10 वर्ष में विश्वविद्यालयों के अध्यापकों या छात्रों द्वारा कई फ्लोरा प्रकाशित किए गए, जिसमें से कुछ डाक्टरेट की उपाधि के लिए भी स्वीकृत हुए । इनमें से महेश्वरी का दिल्ली पर, सलदान्हा का हसन पर, भण्डारी का पश्चिमी राजस्थान तथा त्यागी और शर्मा का पूर्वी

राजस्थान पर, देव का मनीपुर पर, गुप्ता का नैनीताल पर, रायजादा एवं सक्सेना का मसूरी पर, राजी एवं राव का बगलोर एवं मैसूर पर, बाबू का देहरादून पर, उल्लेखनीय है।

वनस्पति सर्वेक्षण पर कार्य करने वाले भारतीय वैज्ञानिकों में मुखर्जी, सुब्रामन्यम अनतस्वामी राव, रोल्ला राव, जैन, आनन्द राव, देव, पानिग्रही, नायर, बोले, शर्मा, बालकृष्णन, थोथाथ्री, भट्टाचार्य, राघवेन्द्र राव, भण्डारी, वर्तक, शिव शर्मा, गुप्ता साहनी, कपूर, महेश्वरी, कचरू, त्रिवेदी, शाह, मैथ्यू, एवं सलदाना के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस समीक्षा में पुष्पी पौधों पर किए गए सर्वेक्षण का ही ब्यौरा है। अन्य वर्गों, पर भी बहुत कार्य हुआ है, और हो रहा है, सर्वेक्षण विभाग में मॉस, लाइकेन, फर्न, आदि के सर्वेक्षण पर भी समुचित ध्यान दिया गया है।

भविष्य के लिए चुनौतियाँ

भारत के आकार और यहां की घनी वनस्पति को ध्यान में रखते हुए सर्वेक्षण का कार्य बहुत तेज करने की आवश्यकता है। अभी भी देश में अनेक राज्य व जिले ऐसे हैं जहां की वनस्पति में अनेक विषयों पर बहुत कम ज्ञान है, जैसे नागालैंड, मीजोरम अरूणाचल प्रदेश की भीतरी पर्वतीय घाटियाँ आदि। यहां कौन कौन से उपयोगी अथवा नवीन पौधे उगते हैं, उनकी खोज भविष्य के लिए चुनौती है।

अनेक पौधे अत्यधिक मात्रा में उखाड़े जाने के कारण बिरले हो रहे हैं, जैसे मिश्मी तीता, सर्पगंधा, जटामांसी, ब्रह्मकमल तथा अनेक शोभनीय आर्किड। इनके सही वितरण, वृद्धि, किस्मों आदि का अध्ययन करके उन स्थानों का, जहां ये उगते हैं आरक्षण अथवा इनके पर्याप्त नमूनों का उद्यानों में आरक्षण एक चुनौती है जिसे पूरा करना ही है।

वनों में उन स्थानों का, जहाँ की वनस्पति विशिष्ट है, निराली है, या जहां प्राय: ही पौधों की नई जातियों का जन्म और विकास हुआ है, आरक्षण आवश्यक है, जैसे पूर्वी हिमालय, उड़ीसा के कुछ भाग तथा पश्चिमी घाट।

आदिवासियों द्वारा प्रयुक्त वनस्पति के विषय में हमारा ज्ञान अभी बहुत कम है। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि अनेक नये अज्ञात उपयोग इनके बीच छिपे हैं, जिनका ठीक और शीघ्र अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। वनस्पति सर्वेक्षण के समय इस पर ध्यान आवश्यक है, और निश्चय ही भविष्य में इससे उपयोगी परिणाम निकल सकते हैं।

हमारे देश में कृषि में प्रयुक्त रोपित पौधों की निकट सम्बन्धी जातियां और प्रभेद जो स्वजात उगती हैं, उनका संग्रह अध्ययन और उद्यानों में एकत्रित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि विभिन्न प्रभेदों के योग (संकरण आदि) से भविष्य में फसलों की किस्में उन्नत करने में सफलता की संभावनाएं हैं।

राष्ट्र का एक नवीन आधुनिक फ्लोरा होना चाहिए, यह मांग लगभग 20 वर्ष से हो रही थी। पिछले वर्ष हमारी संस्था ने इसका शुभारंभ कर दिया है । इस बृहत् कार्य को पहले छोटे-छोटे खण्डों में प्रकाशित करने की योजना है। 14 खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं, अनेक तैयार किए जा रहे हैं ? भविष्य में यह कार्य और भी वेग से चले, शीघ्र इसके खण्ड प्रकाशित होते रहें, यह एक चुनौती है। जिसे हमने स्वीकार किया है।

देश के वनस्पतिज्ञों के सहयोग से ये सब चुनौतियां पूरी होंगी। इसमें कोई आशंका नहीं है। हां, आवश्यक है कि अधिकाधिक विद्यार्थी सर्वेक्षण और वर्गिकी में रुचि लें जिससे भविष्य में योग्य वनस्पतिज्ञ सर्वेक्षण के कार्य के हेतु उपलब्ध होते रहें।

(इस लेख की सामग्री 'जैवविज्ञान चयनिका' तथा 'खेती' में प्रकाशित तथा प्रेस-ट्रस्ट हिन्दी फीचर द्वारा वितरित लेखक की कुछ रचनाओं पर आधारित है।)

2. लद्दाख के पेड़-पौधे और वातावरण के अनुसार उनका अनुकूलन

उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य

हिमालय के उत्तरी अंचल में जो विशाल पर्वतीय क्षेत्र है उसको लद्दाख के नाम से जाना जाता है। जन-साधारण को वहां के पेड़-पौधों की जानकारी अत्यन्त सीमित है। यह विचित्र पर्वतीय भू-भाग जम्मू-कश्मीर की विशाल भूमि पर स्थित है। जन्सकार और लद्दाख नामक दो पर्वत-मालाएं और इनकी शाखा प्रशाखाएं इस क्षेत्र में फैली हुई हैं और सिन्धु एवं उसकी उपनदियां इस क्षेत्र को सींचती हैं। अत्यन्त ठण्ड और ऊंचाई व शुष्कता के कारण स्वाभाविक पौधे जो हिमालय के अन्य क्षेत्रों में पाये जाते हैं, यहां दिखाई नहीं देते। कुछ अन्य पौधे पर्यावरण की स्थिति के अनुसार अपने आप को ढाल कर यहां रह रहे हैं।

पूर्वोत्तर लद्दाख क्षेत्र, इस समय करगिल और लेह दो जिलों में बंटा है। नदियों की अधिकता व अधिकतम ऊंचाई 2800 मीटर तक होने के कारण करगिल जिला काफी हरा-भरा है। लेह क्षेत्र में हरियाली का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। दिन में अत्यधिक गर्मी व रात्रि में शून्य से भी कई डिग्री कम तापमान होने के कारण इस अंचल के ऊपरी भाग तापमान में परिवर्तन के कारण खंडित हो गए हैं। कोई भी हिममाला 6000 मी० से नीची नहीं है। ऐसी स्थिति में भी प्रकृति ने सैकड़ों प्रकार के विचित्र पेड़-पौधों को उगाने में सहायता दी है। सम्पूर्ण क्षेत्र स्वाभाविक वृक्ष-सम्पदा से वंचित है। हिम-खंडों के पास व नदियों के बहाव पर ही कई प्रकार की झाड़ियां जैसे—**मीरिकारीआ एलेगान्स**, **हिप्पोफाऐ रहाम्नोइडेस**, **सालिक्स पिक्नोस्टाचिआ रोसा वेब्बिआना**, एवं बहुत से रुचिकर पौधे जैसे—**साउस्सुरेआ ग्लासिआलिस**, **सा० ग्नाफालोडेस**, **सा० ग्लान्डुलीगेरा**, **सक्सीफ्रागा**, **ड्राबा**, **डेल्फीनिउम ब्रूनोनिआनुम**, **थेर्मोप्सिस इनफ्लाटा**, **ड्राकोसेफालुम नुटान्स**, **जेन्टिआना अल्जिडा**, **सेडुम टिबेटिकुम**, **बीएबेर्स्टेइनिआ ओडोरा**, **पोटेन्टिल्ला बीफुर्का**, **आरेनारिआ ब्रीओफिल्ला**, **अराबिस टिबेटिका**, **फाइसोक्लाइना प्राएआल्टा** आदि मिलते हैं। इनमें झाड़ियां तो बर्फ का सामना कर लेती हैं किन्तु दूसरे पौधे केवल बर्फ रहित काल में ही दिखाई देते हैं। इनमें से अधिकतर पेड़-पौधे तिब्बत व मध्य एशिया के पेड़-पौधों से मिलते-जुलते हैं। एक अत्यन्त विचित्र झाड़ी **करागाना वेर्सीकोलोर** जो पूरे लद्दाख क्षेत्र में फैली है, चोटियों के ऊपर लाखों स्तूपों जैसे आकृतियों में दिखाई देती है। कई विचित्र पौधे जैसे—**पीलाकोस्पेर्मुम काएस्पीटोसुम**, **अकान्थोलिमोन लीकोपीडिओइडेस**, **साउस्सुरेआ ब्राक्टेआटा**, **ड्राबा सेटोसा**, **ड्रा० स्टेनोकार्पा**, **एफेड्रा जेरार्डिआना**, **लागोटिस ग्लोबोसा**, **क्रेमान्थोडिउम आर्निकोइडेस** आदि केवल ऊंचे दर्रो तक तक ही सीमित हैं। कोई भी दर्रा ऊंचाई में 4000 मी० से कम नहीं है। बजरी, सामान, टूटे पत्थरों के बीच में मिलने वाले **कोरीडालिस**

क्रास्सीस्सिमा, स्क्रोफुलारिआ डेन्टाटा, साउस्सुरेआ जासेआ, आस्ट्रागालुस मुनरोई, आ० होपफ्मीस्टेरी, वेस्नेया कुनेआटा, सिसेर सौंगारिकुम, काम्पानुला क्लडेरालिस, एफेड्रा इन्टेरमेडिआ, रुबिआ टिबेटिका आदि पौधे केवल इसी प्रकार के वातावरण में ही दिखाई देते हैं।

आजकल सिन्धु व इसकी सहायक नदियों की नीची घाटियों में सिंचाई के सहयोग से **सालिक्स** और **पोपुलुस** के पेड़ दूर-दूर तक लगाए गये हैं जो हरियाली का वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। कारगिल क्षेत्र में खुमानी, आलू बुखारा और सेब उगाने में सहायता मिली है। देश के विभिन्न क्षेत्रों में यह फल भेजे जा रहे हैं। सेना की सहायता से कई क्षेत्रों में अनाज व सब्जियां उगाई जा रही हैं, जो हमारे मैदानी क्षेत्रों में मिलने वाली सब्जियों से भी उत्तम हैं।

जो क्षेत्र किसी समय एक हिमाच्छादित मरुभूमि समझा जाता था और जहां की यात्रा करना प्राय: मृत्यु को बुलावा देना समझा जाता था, आज वही मानव के प्रयास से एक सम्पूर्ण व आकर्षक पर्यटन केन्द्र बन चुका है। कश्मीर घाटी की भांति लद्दाख में भी सैंकड़ों विदेशी पर्यटक आने लगे हैं। जब पर्यटक यहां की विचित्र वनस्पति देखते हैं तो स्तब्ध रह जाते हैं क्योंकि यहां पर सम्पूर्ण वनस्पति अद्भुत एवं अन्य स्थानों से अलग प्रकार की होती है।

लद्दाख क्षेत्र की वनस्पति के विभाजन का ढंग भी अत्यन्त रुचिकर है। कुछ प्रकार के पौधे जैसे—**स्टाकिस टिबेटिका, क्रिस्टोलेआ क्रास्सीफोलिआ, आर्टेमीसिआ मिनोर, नेपेटा फलोक्कुलोसा** अत्यन्त विस्तृत क्षेत्रों में फैले हैं जिसमें से **आर्टेमीसिआ** और **क्रिस्टोलेआ** उल्लेखनीय हैं।

कई क्षेत्रों में, जैसे नमिकाला और उसके उपरांत, **कोरीडालिस फलाबेल्लाटा** बड़ी मात्रा में मिलता है। चुशूल के विशाल रेतीले क्षेत्रों में **क्रिस्टोलेआ** ही अपनी महानता बनाये हुए हैं और दूर क्षितिज तक अकेला ही दीखता है। न जाने ऐसे और कितने पौधे जैसे—**जिप्सोफिला सेडीफोलिआ, आल्लिउम प्रजेवाल्सकिआनुम** भी विभिन्न क्षेत्रों में मौजूद हैं।

लद्दाख जैसे ऊसर व ठण्डे क्षेत्र में जल के अभाव में कोई भी पौधे भली प्रकार नहीं उग सकते। इनका जीवन काल केवल दो-तीन महीने, प्राय: जून से अगस्त तक ही होता है क्योंकि गर्मी पड़ती है व पिघलते हिमखण्डों का जल इन पौधों को मिलता रहता है। बर्फ का पिघला पानी जहां इकट्ठा हो या नदी का पानी रुका हो, वहां भी कुछ विचित्र पौधे दिखाई देते हैं जो अन्य हिमालय क्षेत्रों में दुर्लभ हैं। इनमें से कुछ जैसे—**लिमोसेल्ला आक्वाटिका, बीडेन्स सेर्नुआ, हिप्पुरिस वुल्गारिस, फ्राग्मीटेस कोम्मुनिस,** उट्रीकुलारिआ **आउरेआ, पोटामोजेटोन क्रिस्पुस** भी अधिक मात्रा में मिलता है। नदी की गीली रेत में कुछ ऐसे पौधे होते हैं जो बहुत दुर्लभ और विचित्र है। उसमें सफेद पुष्प वाले **जेन्टिआना लेउकोमेलाएना,**

जेन्टिआनोप्सिस डेटोन्सा, टाराक्साकुम लेउकान्थुम, ग्लाउक्स मारीटिमा, हालेरपेस्टेस ट्रिकुस्पिस और **लान्सेआ टिबेटिका** मुख्य हैं। ऐसे पौधे अन्य हिमालय क्षेत्रों में मिलना बहुत असम्भव हैं। तांगसे से चुशूल तक पानी के बहाव के साथ-साथ **क्लेमाटिस ओरिएन्टालिस,** के पीले फूलों का जो दृश्य दिखाई देता है, न जाने कौन से प्राकृतिक परिवेश ने इसकी बाहुल्यता में सहयोग दिया है। गीली रेत में पीले फूलों वाला **हिप्पोफाए टिबेटाना** कभी-कभी एक ऐसी चादर सा बिछा देता है, जिसमें पैर रखने के लिए भी खाली स्थान ढूंढना कठिन हो जाता है। ऐसा ही एक और अत्यन्त सुन्दर पीले फूलों का कालीन बिछाने वाला पौधा **पेडीकुलारिस ट्यूबोफ्लोरा** है जो काफी दूरी से भी सरलता से पहचाना जा सकता है। छोटे-छोटे ऐसे और सैंकड़ों विचित्र व सुन्दर पौधे ऐसी गीली रेत में छिपे रहते हैं जिनका लद्दाख जैसे क्रूर जलवायु वाले क्षेत्र में पाया जाना अत्यन्त असम्भव सा लगता है।

जिस प्रकार हिमालय के अन्य क्षेत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण जड़ी-बूटियां पाई जाती हैं, जो कि विभिन्न रूपों में महत्वपूर्ण दवाइयों के रूप में प्रयोग की जाती हैं; इसी प्रकार लद्दाख में भी कुछ दुर्लभ पौधे होते हैं जिनमें कई बीमारियों को ठीक करने की सामर्थ्य है। ऐसे पौधों में **आर्टेमीसिआ** की कई जातियों के बारे में ठीक ढंग से खोज की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त **हिओस्किआमुस नीजेर, हि० पुसील्लुस, फाइसोक्लाएना प्राएआल्टा,** आर्नेबिआ **गुट्टाटा, आ० एउक्रोमा, र्‌हेउम स्पिसीफोर्मे, आस्ट्रागालुस वेब्बिआनुस, एफेड्रा जेरार्डिआना** आदि पौधों की कई बीमारियों में उपयोगी सिद्ध होने की सम्भावना है। वातावरण की प्रतिकूलता के कारण इस क्षेत्र में अनाज उगाना बहुत कठिन है, तथा जौ और छोटे मटर ही केवल कृषि हेतु उपलब्ध हैं।

जिस क्षेत्र में अनाज उगाना कठिन है वहां पर दाल, सब्जी, और अनाज के विकल्प के लिये हमें जानकारी मिली है कि दालें सहज उपलब्ध हैं। **करागाना वेर्सीकोलोर** नामक झाड़ी के फलों को दाल के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। यह पौधा अधिक मात्रा में जलाने के लिए भीप्रयोग करना संभव है। चना और जंगली **सिसेर सौंगारिकुम** की कोई एक संकर बनाई जाये तो दाल के रूप में इसको प्रयोग करने की सम्भावना है। प्याज वंश की कई जातियां लद्दाख क्षेत्र में उगती हैं जैसे **आल्लिउम जाक्वेमोन्टिई, आ० प्रजेवाल्सकिआनुम**। इनको मसालों के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। वैसे भी इन दोनों पौधों के पत्तों की स्वादिष्ट सब्जी बनती है और उनको सुखाकर मसाले के रूप में प्रयोग करते हैं। इनके जनसाधारण में प्रचलन से ये काफी उपयोगी सिद्ध होंगे। इनको आबादी वाले क्षेत्र में भी लगाया जा सकता है। गेहूं, जौ, जैसे महत्वपूर्ण अनाजों की जंगली किस्में भी लद्दाख क्षेत्र में मिलती हैं जिनकी काफी जानकारी हमारे सर्वेक्षणों के दौरान हुई है।

लद्दाख की वनस्पति का अभी तक कोई पूर्ण विवरण एक साथ कहीं उपलब्ध नहीं है। प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ सर हुकर की सात खण्डों में प्रकाशित 'फ्लोरा आफ ब्रिटिश इण्डिया'

(1872-1897) नामक पुस्तक में लद्दाख के सारे पौधों को पश्चिमी तिब्बत के पौधे मानकर उल्लेखन किया गया है। इसके बाद स्टीवर्ट ने (1917 और 1972) प्राय: सभी पौधों को इकट्ठा करके दो किताबों में सूचीबद्ध किया है। एक और किताब कचरू ने (1977) प्रकाशित की है। उससे भी लद्दाख के पौधों के बारे में हमारी जानकारी बढ़ी है। हैंस हार्टमैन ने भी 'फ्लांत्सेनगेशेलशफतेन एल्लांग दर कशमीरते इन लद्दाख' नामक लेख ('सौन्दरद्रुक ओस दम व्हारबुख' नामक शोध पुस्तिका 1983) में यहां के पौधों का सुन्दर विवरण किया है।

लद्दाख जैसे दुर्गम व कठिन क्षेत्रों में वनस्पति सर्वेक्षण कोई सरल कार्य नहीं है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरीय परिमंडल की टोलियां सन् 1971 से पेड़-पौधों की खोज में कई बार लद्दाख जा चुकी हैं। अब तक उत्तरीय परिमंडल के पादपालय में लद्दाख से लाए गये लगभग 1000 जाति के पौधे मौजूद हैं। इतना कर लेने के पश्चात् भी हमारा संग्रह हमारी संतुष्टि तक नहीं पहुंच सका है। आशा है भविष्य में हम इस विचित्र क्षेत्र के पौधों के ऊपर एक सम्पूर्ण पुस्तक प्रकाशित करने में समर्थ होंगे। ताकि देश-विदेश के लोगों, और विशेषकर प्रकृति में दिलचस्पी रखने वालों तक इनकी जानकारी पहुंच सके। उत्तरीय परिमंडल इसके लिए परिश्रम कर रहा है।

आभार

इस लेख के लिखने में मुझे श्री देवराज अग्रवाल से महत्वपूर्ण सहयोग मिला है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। लेख से संबन्धित कुछ चित्र भी उन्हीं के द्वारा लिये गये हैं।

3. जम्मू व कश्मीर के वन और वनस्पति

सुदर्शन कुमार मल्होत्रा

जम्मू व कश्मीर राज्य भारत के उत्तर पश्चिम में 32° 17/से 36° 58/उत्तर अक्षांश और 73° 26/से 80° 30°/पूर्व देशान्तर में स्थित है। इसके मुख्य भाग लद्दाख जम्मू और कश्मीर हैं। इसके उत्तर में तिब्बत, दक्षिण में पंजाब, पश्चिम में पाकिस्तान और पूर्व में चीन देश हैं।

कश्मीर की जलवायु :—जुलाई और अगस्त आदि वर्षा के मास हैं। मासिक वर्षा औसतन 55 से 66 मि० मी० होती है। अगस्त में अधिकतम गर्मी पड़ती है, जबकि औसत तापक्रम 25° से० तक होता है। जनवरी में अधिकतम शीत रहता है।

लद्दाख एक शीतल मरुभूमि (कोल्ड डेजर्ट) है। ग्रीष्म ऋतु में तापक्रम अधिक हो जाता है तथा शिशिर काल में जो कि नवम्बर मास से आरम्भ होता है तापक्रम बहुत ही कम रहता है। वर्षा तो प्राय: इस भाग में होती ही नहीं।

जम्मू भाग में मार्च से जून तक गर्मी का मौसम रहता है। जुलाई से सितम्बर के बीच वर्षा होती है। अक्टूबर से दिसम्बर तक ठन्ड रहती है। हल्की सी वर्षा जनवरी और फरवरी में होती है।

जम्मू व कश्मीर में विक्टर जेक्युमोन्ट ने 1831 में कश्मीर की वनस्पतियों का संग्रह किया। इसके पश्चात् रॉयल (1839), बिगने (1842), डथी (1892-1893), मीबोल्ड (1909) ने कश्मीर की वनस्पति पर कार्य किया।

इस शताब्दी में बहुत से वनस्पतिज्ञों ने यहां की वनस्पति के विषय में अपना-अपना योगदान किया है, इनमें से कुछ हैं, बैम्बर, स्टीवर्ट, ब्लेटर, कोवेन्ट्री, राव, सरीन, शर्मा, विष्णु मित्रै, कपूर, कौल, दुर्रानी, सिंह, कचरु, भट्ट, धर आदि।

लगभग 2500 से अधिक पौधों की जातियां जम्मू व कश्मीर राज्य में मिलती हैं। यहां की वनस्पतियों को तीन भागों में बांटा जा सकता है।

(अ) लद्दाख की वनस्पतियां (ब) कश्मीर की वनस्पतियां (स) जम्मू क्षेत्र की वनस्पतियां।

(अ) **लद्दाख की वनस्पतियां**—लद्दाख क्षेत्र एक मरुस्थल है जहां पर प्राय: वर्षा नहीं होती और शुष्क जलवायु वाली वनस्पतियों की जातियां ही यहां पर मिलती हैं। वृक्ष नहीं मिलते। वन में **चेस्नेया कूनेआटा, अकान्थोलिमोन लीकोपोडिओइडेस, जूनीपेरुस म्कुआमाटा** आदि झाड़ियों की जातियां पाई जाती हैं। यहां वनस्पतियां स्थानीय भी हैं, जैसे **स्टाकिस टिबेटिका, एउफोर्बिआ टिबेटिका,** आदि। यहां पर दूसरी जड़ी बूटियां भी होती हैं, जैसे **टुलिपा स्टेल्लाटा, प्लान्टागो एशिआटिका, पोटेन्टिला रेप्टान्स, एउफोर्बिआ डेन्सीफ्लोरा, पेडीकुलारिस पेक्टिनाटा, बुप्लेउरुम ग्रासोलिलमुम, ब्रूनेल्ला वुल्गारिस, नेपेटा कोन्नाटा** आदि।

(ब) **कश्मीर की वनस्पतियां**—इसके बाहरी पर्वत तथा अन्य छोटी-छोटी घाटियां बहुमूल्य शीतोष्ण वनों से ढकी रहती हैं जो कि राज्य की अर्थ-व्यवस्था का एक साधन हैं। वनों में अधिकतर शंकु वृक्ष होते हैं। यही कारण है कि कश्मीर के वनों की तुलना हिमालय के दूसरे भागों की अपेक्षा यूरोप और मध्य एशिया के वनों से अधिक की जाती है। कश्मीर के वनों में मिलने वाली शंकु वृक्षों की जातियां निम्नलिखित हैं—**सेड्रुस देओदारा, पीनुस वालिचिआना, पीसेआ मोरिन्डा, आबिएस पिन्डरोव, टाक्सुस बक्काटा** इत्यादि। इनके अतिरिक्त चौड़ी पत्ती वाले वृक्ष भी मिलते हैं, जैसे अखरोट (**जुग्लान्स रेजिआ**), **आएस्कुलुस ईन्डिका, प्रूनुस कोनराटा** इत्यादि। ऊंचाई पर **बेटुला ऊटिलिस** आदि पाये जाते हैं।

झाड़ीदार पौधों में **पारोटिआ जाक्वूमोन्टिआना, इन्डीगोफेरा जेरार्डिआना, कोटोनेआ-स्टेर मीक्रोफिल्ला, विबुर्नुम कोटोनिफोलिउम, आस्ट्रागालुस कैन्डोल्लेआनुस, रिबेस ग्रोस्सुलारिआ, रोसा माक्रोफिल्ला**, ... इत्यादि अधिक मिलते हैं।

बूटियों में अधिकतर **एउफोर्बिआ वालिचिआना, टाराक्साकुम ओफ्फीसिनाले, कोरीडालिस रामोसा, जेरानिउम वालिचिआनुम, आन्ड्रोसासे प्रिमुलोइडेस, पेडीकुलारिस, साक्सीफ्रागा डीवेर्सीफोलिआ, रानुनकुलुस हिर्टेल्लुस, पोलीगोनुम अफीने इत्यादि।**

4000 मीटर से अधिक ऊंचाई पर धरती के हिम से ढके रहने के कारण पौधों की जातियां बहुत कम मिलती हैं। यहां पर मिलने वाली वनस्पतियों में **प्रिमुला एल्लिप्टिका, साक्सीफ्रागा फ्लाजेल्लारिस, कोरीडालिस कास्सीमिरिआना, कोरीस्पोरा साबुलोसा, प्रिमुला माक्रोफिल्ला** इत्यादि प्रभावशाली हैं।

कश्मीर के हिमाद्रि भाग में वनस्पतियां अधिक समय तक नहीं रहतीं। प्राय: कम जीवन काल वाली जड़ी बूटियां ही मिलती हैं।

बर्फ की चट्टानों में कई जगह गड्ढा हो जाने के कारण ऊंचे पर्वतों पर बर्फ पिघलने

से बड़ी-बड़ी झीलें देखने में आती हैं जैसे कि कौन्सरनाग, महीनाग, शेषनाग आदि। इनके किनारे पर **पोलीगोनुम अफीने, ड्राबा ओरेआडेस, आल्लिउम हूमिले** इत्यादि जड़ी बूटियां मिलती हैं।

3000-3500 मी० पर वृक्ष नहीं मिलते और झाड़ीदार पौधे भी बहुत कम जी पाते हैं। इनमें **कोटोनेआस्टेर मीक्रोफिल्ला, जूनीपेरुस कोम्मूनिस, लोनीसेरा क्युइन्क्युएलोकुलारिस** प्रसिद्ध हैं। जड़ी बूटियों में **फ्रीटिल्लारिआ रायलेई, पेडीकुलारिस पेक्टीनाटा, सालिक्स फ्लाबेल्लारिस, पोलीगोनुम अफीने, ग्नाफालिउम थोमसोनिई, कोरीडालिस, आर्नेबिआ पेरेन्निस** इत्यादि ही अधिकतर मिलते हैं।

(स) **जम्मू क्षेत्र की वनस्पतियां**—यहां के वन साधारणतया पर्णपाती या मिश्रित पर्णपाती होते हैं। **अकासिआ मोडेस्टा** जाति **अकासिआ** के वनों में श्रेष्ठ हैं। इसके अतिरिक्त अन्य झाड़ी वाले पौधे जैसे कि **काप्पारिस सेपिआरिआ, जिजीफुस माउरिटिआना, फ्लौकूर्टिआ ईन्डिका** आदि अधिक होते हैं। लता वाले पौधों में यहां **टीनोस्पोरा कोर्डीफोलिआ, टेलोस्मा पाल्लिडा, जास्मीनुम आउरिकुलाटुम** आदि अधिक पाये जाते हैं।

मिश्रित अर्ध पर्णपाती वनों में **मित्रागिना पार्वीफोलिआ, ट्रेमा पोलीटोरिआ, टेर्मिनालिआ चेबुला, ओडेलिया विस्कोसा** आदि वृक्ष अधिक मिलते हैं। झाड़ीदार वनस्पतियों में **मीमोसा रुबीकाउलिस, डोडोनाएआ विस्कोसा, वुडफोर्डिआ फ्रुटीकोसा, नेरिउम ईन्डिकुम** आदि भी बहुत मात्रा में मिलते हैं।

उप उष्ण कटिबन्धीय (सब ट्रापिकल)/चीड़ के वनों में **पीनुस राक्सबर्घिइ** के वृक्ष अधिक पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त यहां पर झाड़ीदार पौधों के फैले टुकड़ों में **कारिस्सा स्पिनारुम, निक्टान्थेस आर्बोरट्रिस्टिस** आदि बहुत मिलते हैं।

डोडा के वनों में जलवायु तथा ऊंचाई के कारण वनस्पतियों में बहुत ही अन्तर मिलता है। पटनी टाप के पर्वत अधिकतर **सेड्रुस देओदारा** और **पीनुस** की जातियों से ढके रहते हैं। इसके अतिरिक्त पर्वतों की ढलानों पर **इन्डीगोफेरा जेराडिआना, रोजा माक्रोफिला, बेरबेरिस सेराटोफिला, आर्टेमीसिआ वुल्गारिस** आदि झाड़ी वाले पौधे अधिक मिलते हैं। यहां **आस्ट्रागालुस क्लोरोस्टाकिस, डीआन्थुस आंगुलाटुस, एउफोर्बिआ प्रिंफिथिई, रानुनकुलुस आर्वेन्सिस, ओरिगानुम वुल्गारे** आदि जड़ी बूटियां प्राप्त होती हैं।

चिनाब की घाटी में बहुत अच्छी वनस्पतियां होती हैं। इसकी ढलानों पर **पीनुस राक्सबर्घिई, क्वेरकुस डीलाटाटा** आदि वृक्ष महत्व के हैं। झाड़ीदार वनस्पतियों में **मौसिने अफ्रीकाना, जिमनोस्पोरिआ रॉयलेआना, लेस्पेडेजा सेरीसेआ, पुनीका ग्रानाटुम, रुबुस फ्रूटीकोसुस** आदि अधिक मात्रा में मिलते हैं। **आन्ड्रोसासे रोटुन्डीफोलिआ, बुप्लेउरुम**

फ़ाल्काटुम, कालामिन्था क्लिनोपोडिउम, क्रीसोपोगॉन फुल्वुस, सीपेरुस नीवेउस, जरबेरा गोस्सीपिना, रुमेक्स नेपालेन्सिस आदि जड़ी बूटियां भी यहां खूब होती हैं।

पुंछ और कश्मीर के बीच में पीरपन्जाल एक आड़ है। पुंछ समस्थल में चौड़े पत्तों वाले वृक्ष और झाड़ीदार पेड़ श्रेष्ठ हैं—जैसे कि **उल्मुस वालिचिआना, सेड्रेला टूना, मेलिआ आजेडाराक, जिजीफुस वुल्गारिस, विटेक्स नेगुन्डो, रोजा वेब्बिआना** आदि और जमीन की छोटी बूटियों में **स्टेल्लारिआ मेडिआ, एउफोर्बिआ हेलिओस्कोपिआ, एपीलोबिउम पार्वीफ्लोरुम** आदि का अपना महत्व है।

यहां के पर्वतों पर मिश्रित वन हैं। वृक्षों और झाड़ीदार पौधों की जातियों में **पीनुस वालिचिआना, कुएरकुस इनकाना, इन्डीगोफेरा हेटेरान्था, स्पीराएआ कानेस्सेन्स, आन्ड्राक्ने कोर्डीफोलिआ** आदि हैं।

जम्मू कश्मीर राज्य में वनों में बहुत ही बहुमूल्य औषधि-सम्बन्धी वनस्पतियां प्रायः मिलती हैं जैसे एकोनाइट्स (**आकोनीटुम हेटेरोफिल्लुम**), कुथ (**साउस्सुरेआ लापा**), कैफल (**आट्रोपा आकुमिनाटा**), दारुहल्दी (**बेरबेरिस लीसिउम**), जख्मे हयात (**बेर्गेनिआ लिगुलाटा**), किल्स (**डिओस्कोरेआ डेल्टोइडेआ**), वन ककड़ी (**पोडोफील्लुम, हेक्साड्रुम**), अनार (**पुनीका ग्रानाटुम**), रेवनडिचनी (**र्हेउम एमोडी**), चिरा (**स्वेर्टिआ चिराता**), मुश्कबाला (**वालेरिआना वालिचिई**), बेरी (**जिजीफुस साटिवा**) आदि।

यहां पर बहुत से वृक्षों की जातियां लकड़ी के कामों में लाई जाती हैं। इनमें सर्व श्रेष्ठ देवदार (**सेड्रुस देओदारा**), कयल (**पीनुस वालिचिआना**), चीड़ (**पीनुस राक्सबर्घिई**), फिर (**आबिएस पिंड्रोव**) आदि हैं।

आभार

लेखक डॉ० सुधांशु कुमार जैन, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा व डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा उपनिदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, पूना का कृतज्ञ है।

4. हिमाचल प्रदेश के वन और वनस्पति

हर्ष चौधरी

1 नवम्बर, 1966 को पंजाब राज्य के कुल्लू, कांगड़ा, शिमला, लाहौल और स्पिति जिले तथा अंबाला जिले का नालागढ़ क्षेत्र, जिला होशियारपुर की ऊना तहसील और जिला गुरदासपुर की पठानकोठ तहसील को मिलाकर एक नये राज्य-हिमाचल प्रदेश का गठन किया गया। इस प्रदेश को जनवरी, 1971 में तत्कालीन भारत के प्रधानमंत्री द्वारा भारतीय गण-राज्य के अट्ठारवें राज्य होने की विधिवत घोषणा की गई।

हिमाचल प्रदेश का कुल क्षेत्रफल लगभग 55673 वर्ग किलोमीटर है। जिसमें लगभग 595 किलोमीटर का क्षेत्र पहाड़ी शृंखलाओं से युक्त है जिनकी ऊंचाई 244 मीटर से 6750 मीटर तक की है। राज्य—उत्तर में जम्मू और कश्मीर, पूर्व में टिहरी गढ़वाल तथा चीनी क्षेत्र, दक्षिण में उत्तर प्रदेश व हरियाणा के विभिन्न जिलों तथा पश्चिम में पंजाब के क्षेत्रों से घिरा है। हिमाचल प्रदेश अपने सुन्दर व आकर्षक पर्यटक केन्द्रों, सेब के बागों, चिलगोजों (पीनुस जेरार्डिआना के खाये जाने वाले बीज) और जलवायु के लिए प्रसिद्ध है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरीय परिमंडल, जिसका गठन 1 अगस्त, 1956 में देहरादून में हुआ, के वनस्पतिज्ञों ने समय-समय पर इस राज्य की (हिमाचल प्रदेश) वानस्पतिक सम्पदा का गहन सर्वेक्षण किया है। उन सभी वनस्पतियों के नमूने (हरबेरियम स्पेसीमेन) हमारे उत्तरीय परिमंडल के पादपालय में संग्रहित हैं तथा सभी वनस्पति वैज्ञानिकों को अध्ययन हेतु सरलता से उपलब्ध हैं।

भारतवर्ष के कुल क्षेत्रफल का लगभग 19 प्रतिशत वन विभाग के लिए है। साथ ही हिमाचल प्रदेश को भारतीय गणराज्य का एक सर्वाधिक वन क्षेत्र वाला राज्य होने का गौरव प्राप्त है। हिमाचल के लगभग 39 प्रतिशत भाग में वन हैं और यदि वृक्षों की सीमा रेखा (ट्री लाइन) के बाद वाली भूमि को राज्य के क्षेत्रफल में न जोड़ें तो यह अनुपात 39 प्रति-शत से बढ़कर 56 प्रतिशत हो जाता है।

अब तक की हुई खोजों, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा किये गये सर्वेक्षणों और प्राचीन वानस्पति ग्रन्थों के स्रोतों से पुष्पधारी वनस्पतियों की लगभग 3500 जातियां इस प्रदेश से ज्ञात हैं। इस प्रदेश से संग्रहित वनस्पतियों के नमूने, यात्राओं के संस्मरणों के आधार पर यहां के वनों के प्रकार और वनस्पति संपदा का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:—

हिमाचल प्रदेश के वनों का एक बड़ा भाग चीड़ पाइन (**पीनुस राक्सबर्धिई**) का है जो लीसा (रेजिन) निकालने के लिए बड़ी मात्रा में उगाये जाते हैं। जिस क्षेत्र के चीड़ के वृक्षों से लीसा निकालते हैं उन वृक्षों के नीचे उगने वाली समस्त छोटी-छोटी वनस्पतियों और झाड़ियों को समय-समय पर जला कर नष्ट करते रहते हैं। साथ ही इन वृक्षों की आपस की दूरी समान करने के लिए बहुत समीप उगे हुए पेड़ों को भी काट दिया जाता है। जिसके कारण भूमि पर उगने वाली वनस्पति (ग्राउंड वेजीटेशन) पूर्णतया नष्ट हो जाती है। जहां भी इस प्रकार के वन नष्ट या क्षतिग्रस्त हो जाते हैं वह स्थान उपोष्ण कटिबंधीय अनुक्षुप में परिवर्तित हो जाते हैं जिनमें **एउफोर्बिआ** की कंटीली झाड़ियां मुख्य हैं। हिमाचल प्रदेश के वनों को निम्न-लिखित वर्गों में बांटा जा सकता है।

उप-उष्णकटिबन्धीय चीड़ के वन

इस प्रकार के वन 600 से 1700 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। और प्रदेश के 7300 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए हैं। इन वनों में सबसे अधिक वृक्ष चीड़ पाइन के हैं। तथा अन्य छोटे क्षुप और छोटी वनस्पतियों में **बेरबेरिस, रुबुस, कारिस्सा** तथा खुली हुई ढलानों पर **एउफोर्बिआ रोइलेआना** मुख्य हैं।

उप-उष्णकटिबन्धीय शुष्क सदाबहार वन

ये वन प्रदेश के लगभग 900 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हुए हैं तथा 500 से 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इन वनों में पाई जाने वाली वनस्पतियों में **ओलेआ, टेर्मिनालिआ, आल्बीजिआ, अनोगेइस्सुस, अकासिआ** तथा विभिन्न प्रकार के घास जैसे **थेमेडा, टेरोपोगान, सीम्बोपोगान, साक्कहेरुम** इत्यादि मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त नाना प्रकार की झाड़ियां जैसे **पीरुस, रुबुस, कोरिआरिआ, डे-मोडिउम, जान्थोक्सीलुम** इत्यादि भी बहुत मिलती हैं।

हिमालय के शीतोष्ण कटिबन्धीय आर्द्र वन

1500 से 3000 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं और प्रदेश के लगभग 7000 वर्ग किलोमीटर भाग में फैले हुए हैं। इन वनों में पाये जाने वाले मुख्य वृक्ष **कुएरकुस इनकाना, कु० डीलाटाटा, कु० सेमेकार्पोफोलिआ, पीसेआ स्मिथिआना, आबिएस पिन्डरोव, सेड्रुस डेओदारा, पीनुस वालिचिआना, आएस्कुलुस ईन्डिका, रहोडोडेन्ड्रोन आर्बोरेउम, जुग्लान्स रेजिआ** इत्यादि हैं। इसके अतिरिक्त **सिम्प्लोकास, आर्टेमीसिआ, सोनीग्लोस्सुम, ईरिस** इत्यादि झाड़ियों या छोटी-छोटी वनस्पतियों के रूप में मिलते हैं।

हिमालय के शीतोष्ण कटिबन्धीय शुष्क वन

इस प्रकार के वन साधारणतया 2000 से 3000 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं और इनका कुल क्षेत्रफल लगभग 700 वर्ग किलोमीटर है। इन वनों में मुख्यतः **कुएरकुस**

इलेक्स, **पीनुस जेरार्डिआना**, **आसेर**, **सालिक्स**, **मोरस सेर्राटा**, के वृक्ष पाये जाते हैं। तथा छोटी वनस्पतियों और झाड़ियों में **आर्टेमीसिआ**, **प्रूनुस**, **डाफ्ने**, **कोर्नुस**, **फ्राक्सीनुस** आदि का मुख्य स्थान है।

उप-हिमाद्रि वन

ये वन 3000 से 3400 मीटर की ऊंचाई तक मिलते हैं और इन वनों में मुख्य रूप से ब्ल्यूपाइन, **र्‌होडोडेन्ड्रोन काम्पानुलाटुम**, बर्च या भोज पत्र (**बेटुला ऊटिलिस**), फर (**आबिएस पिन्डरोव**, **आ० स्पेक्टाबिलिस**) आदि के वृक्ष 2400 से 3600 मीटर की ऊंचाई तक अथवा वृक्षों की अन्तिम सीमा रेखा (ट्री लाइन) तक पाये जाते हैं। **साक्सीफ्रागा**, **एफेड्रा जेरार्डिआना**, **मोरीना कोउल्टेरिआना**, **एरेमुरुस हिमालाइकुस** आदि छोटी वनस्पतियां खुले शुष्क चट्टानी कगारों पर बड़ी मात्रा में पाई जाती हैं।

हिमाद्रि वन

3500 मीटर और उससे अधिक ऊंचाई से स्नो लाइन तक के क्षेत्र को हिमाद्रि वनस्पति का क्षेत्र कहा जाता है जिसके पश्चात् अलपाइन मीडो का क्षेत्र आता है जिसमें बहुत नीची, घनी **जूनीपेरुस कोम्मूनिस** तथा **जू० स्कुआमाटा** की झाड़ियां मिलती हैं। इसके अतिरिक्त **र्‌होडेन्ड्रोन**, **अन्थोपोगान**, **र्‌हो० लेपीडोटुम**, **कास्सीओपे फास्टीगिआटा**, **सालिक्स लिन्डलेइआना**, **सा० फ्लाबेल्लारिस**, **प्रिमुला**, **कोरीडालीस**, **सेलीनुम**, **अनाफालिस**, **साउस्सुरेआ पिप्टाथेरा**, **कोटोनेआस्टेर प्रोस्ट्राटुस**, **को० मीक्रोफिल्लुस**, **ड्राबा**, **सेनेसिओ**, **पोआ** आदि वनस्पतियां प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

हिमाद्रि वनस्पति वाले इस क्षेत्र को निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

1. पथरीले रेगिस्तान : यहां की मुख्य वनस्पति लाईकेन है साथ ही **बेर्गेनिआ स्ट्राचेई**, **सेडुम** तथा **प्रिमुला** की अनेक जातियां भी काफी मात्रा में मिलती हैं। इस क्षेत्र में उगने वाली वनस्पतियां बहुधा एक गद्देदार रूप धारण कर लेती हैं जो इनको इस दुर्गम क्षेत्र की शुष्क जलवायु तथा वातावरण का सफलतापूर्वक सामना करने में सक्षम बनाता है।

2. हिमाद्रि क्षुप : ये क्षेत्र 3500 से 4200 मीटर तक की ऊंचाई के मध्य पाया जाता है—जो दो मुख्य भागों में बंटा है—

   (अ) हिमाद्रि आर्द्र क्षुप : लगभग 3600 मीटर से अधिक की ऊंचाई पर पाये जाने वाले इस प्रदेश में मुख्य रूप से **र्‌होडोडेन्ड्रोन**, **बेरबेरिस**, **सालिक्स**, **आकोनीटुम**, **लोनीसेरा**, **कोटोनेआस्टेर**, **आस्ट्रागालुस**, **र्‌हेउम**, **पोटेन्टिला**, **ईरिस**, **आल्लिउम**, **कोराडालीस**, **पेडीकुलारिस** इत्यादि बड़ी संख्या में मिलते हैं।

(ब) **हिमाद्रि शुष्क क्षुप :** इस क्षेत्र में **जूनीपेरस** की छोटी-छोटी झाड़ियां बहुत संख्या में मिलती हैं और इस प्रदेश की दूसरी मुख्य वनस्पतियां हैं—**प्रिमुला, सेडुम, ड्राबा, साउस्सुरेआ, कोरीडालीस, अनेमोने, मेकोनोप्सिस, साक्सीफ्रागा, थालीक्ट्रुम, टाराक्साकुम, काल्था, कारेक्स, पोआ, फेस्टुका** जातियों की घासें।

3. **हिमाद्रि मीडो** : इस क्षेत्र की मुख्य वनस्पतियां **अनेमोने, प्रिमुला, काल्था, आक्टाएआ, आरेनारिआ, प्लेउरोस्पेर्मुम, जेउम, लाक्टुका, कोरीडालीस** आदि की अनेक जातियां हैं जो प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।

यहां के वनों में नाना प्रकार के परोपजीवी पौधे भी पाये जाते हैं जिनमें अमरबेल (**कुस्कुटा**) की अनेक जातियां **कोर्थाल्सेल्ला ओपुन्टिआ, स्कुर्रुला एलाटा, स्कु० पुल्वेरुलेन्टा, टाक्सील्लुस वेस्टिटुस, विस्कुम अल्बुम, वि० आर्टिकुलाटुम**, मुख्य हैं। इसके अतिरिक्त **आर्कउथोबिउम, मिनुटीस्सिमुम** नामक एक आश्चर्यजनक सूक्ष्म पौधा भी है जिसे संसार का सबसे छोटा पुष्पधारी पौधा होने का श्रेय प्राप्त है। यह शंकुधारी वृक्षों (कोनीफेरस प्लांट्स) को असाधारण क्षति पहुंचाता है जिसके फलस्वरूप उनसे प्राप्त होने वाली बहुमूल्य लकड़ी किसी भी उपयोग की नहीं रह पाती।

इन्हीं परोपजीवियों की श्रेणी में एक और विशेष श्रेणी ऐसे पौधों की है जो वृक्षों तथा अन्य वनस्पतियों की जड़ों पर परोपजीवियों की तरह रहते हैं। इनमें से **पेडीकुलारिस की** अनेक जातियां तथा **ओरोबान्चे** विभिन्न प्रकार की घासों तथा छोटी वनस्पतियों की जड़ों पर और बड़े वृक्षों की जड़ों पर परोपजीवी है।

मोनोट्रोपा, हीपोपिथीस और **गास्ट्रोडिआ** मृतोपजीवी पौधों की श्रेणी में आते हैं जो कि यहां के वनों में भूमि की सतह पर मिलती हैं।

हिमाचल प्रदेश में औषधीय पौधे बड़ी संख्या में मिलते हैं। कुछ पौधों की तो काफी बड़े पैमाने पर खेती की जा रही है जिसमें **साउस्सुरेआ लाप्पा, डिओस्कोरेआ, आकोनीटुम, पोडोफील्लुम, आर्नेबिआ, आर्टेमीसिआ, बेरबेरिस, पाएओनिआ एमोडी, एक्बुद्लेगीआ, थालीक्ट्रुम फोलिओलोसुम** आदि अनेकों ऐसे पौधे हैं जो औषधि के रूप में विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाये जाते हैं।

इस प्रदेश में अनेकों विशेष क्षेत्री पौधे पाये जाते हैं जिनमें **डेउत्सिआ सीम्लेन्सीस, ओउथेइनिआ अ स्नामेन्येरा** आदि मुख्य हैं।

प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर इस प्रदेश में मनुष्य द्वारा किए गए परिवर्तनों के फल-

स्वरूप इस क्षेत्र की परिस्थितिकी में अत्यधिक परिवर्तन हुआ है। राज्य में सड़कों, पुलों तथा बांधों का निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। परिणाम-स्वरूप वनों को सबसे अधिक क्षति पहुंची है। वनों के इस विनाशकारी दोहन पर रोक लगाना अति आवश्यक हो गया है। ऐसा न करना वनस्पति और उस पर आश्रित जीव-जन्तुओं के जीवन के साथ खिलवाड़ करना है। प्रकृति में पौधों और जीव जन्तुओं की विभिन्न जातियां एक जैव समुदाय बनाती हैं। वे अपने वातावरण के साथ इस तरह सम्बन्धित हो जाती हैं कि अगर इस तंत्र के किसी एक घटक को क्षति पहुंचायी जाय तो उससे पूरे तंत्र में व्यवधान पड़ता है और वह सुचारु रूप से कार्य कर सकने में असमर्थ हो जाता है। अतः इस क्षेत्र के जैवमंडल (बायोस्फीयर) को सुरक्षित रखने के लिए वनों के इस विनाशकारी दोहन को रोकना होगा।

5. चमोली गढ़वाल में पाये जाने वाले उपयोगी पौधे

भोला दत्त नैथानी

वनस्पतिज्ञों के अनुसार भूमण्डल में पाये जाने वाले पौधे किसी न किसी रूप में हमारे लिए उपयोगी हैं अथवा भविष्य में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। जिन पौधों को आज हम अनुपयोगी समझते हैं वे कल की खोज से उपयोगी हो सकते हैं। आदि काल से ही पौधों और जीवों का पारस्परिक सम्बन्ध रहा है और वे अपनी आवश्यकता के आधार पर उनका चयन करते चले आये हैं। इस प्रकार के चयन कार्यों पर अनेकों सावधानियां बरतनी पड़ी क्योंकि कई पौधे उनके जीवन के लिए हानिकारक थे। अतः आज के दैनिक उपयोग में आने वाले पौधे जैसे गेहूं, चावल, मक्का आम, अमरूद एवं कई अन्य प्रकार की वनस्पतियां हमारे पूर्वजों के अथक प्रयासों का फल है। जैसे-जैसे वनस्पतियों के उपयोगों का महत्व बढ़ता गया, मनुष्य ने अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिए अनेकों नियम बना जिससे वनस्पतियों का सुच.रु रूप से अध्ययन किया जा सके। इस प्रकार के ज्ञानको एक ठोस सुलभ नियम पर लाने के लिए अनेकों वर्ष लगे, तत्पश्चात् स्वीडन के वैज्ञानिक कैरोलस लिनियस (17 7 से 1778) ने पौधों की एक विशेष नामकरण पद्धति की स्थापना कर विश्व में आदि काल से चली आ रही समस्या का समाधान किया। इस पद्धति को द्विनाम पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति के आधार पर हम विश्व में पाये जाने वाले पौधों का सुगमता से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अमुक पौधा क्षेत्र में किस परिस्थिति में है, इस ज्ञान से उक्त क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदा का सुचारु रूप से प्रयोग किया जा सकता है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए 1956 से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के उत्तरीय परिमंडल से अनेकों सर्वेक्षण दल चमोली गढ़वाल में गये। यह कार्य इस क्षेत्र में पूर्णतः नवीन तो नहीं था; पहले भी कुछ मात्रा में हो चुका था। पहले के सर्वेक्षकों में सर्वप्रथम हार्डविक थे जो गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर में वहां के नरेश के एक पदाधिकारी के रूप में 1797 में गये और अलकनन्दा घाटी से पादपों का संग्रह किया जिनमें फ्लेमिन्जिआ नामा एक महत्वपूर्ण अग्नि प्रतिरोधी पौधा है। तत्पश्चात् मूरक्राफ्ट ने तिब्बत जाते समय नीति से पादपों का संग्रह किया। इनके अतिरिक्त स्ट्राची और विन्टरबाटम नामक दो वैज्ञानिकों ने सर्वेक्षण कार्य करते हुए लगभग 2000 पादप जातियों की जानकारी दी। तत्पश्चात् डथी, वालिच, रायल, फालकोनर, टामस और ओसमस्टन, होल्डवर्ड्स और स्माइथ, घिल्डियाल, राव, भट्टाचार्य आदि अनेकों वनस्पतिज्ञों ने अपने अथक प्रयासों के फलस्वरूप दुर्गम स्थानों से पौधों का संग्रह करके इस क्षेत्र की वनस्पति का विस्तृत विवरण दिया है।

मध्य हिमालय की श्रेणी में स्थित गढ़वाल क्षेत्र का चमोली जिला आदिकाल से ही प्रसिद्ध एवं पवित्र देव भूमि है। इसका विस्तृत वर्णन हमारे पुराणों में केदारखण्ड या उत्तरा-

खण्ड के नाम से अनेकों संदर्भों में मिलता है। यह उत्तर की ओर चीन, पूर्व में पिथौरागढ़ और अल्मोड़ा, दक्षिण में पौड़ी एवं पश्चिम में उत्तर काशी और टिहरी जिलों से घिरा है।

इस क्षेत्र की उपजाऊ घाटियों में अलकनन्दा, पिंडर, नन्दाकिनी, मन्दाकिनी एवं धौली आदि प्रमुख हैं और इस जिले की जनसंख्या मुख्यतः इन्हीं घाटियों में बसी है। जिले का मुख्य सरकारी कार्यालय गोपेश्वर है। यह जिला 1960 से पहले ब्रिटिश गढ़वाल की एक तहसील थी। यह क्षेत्र ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण से ही नहीं वरन् वनस्पति सम्पदा की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। यहां पर उप उष्ण कटिबन्धीय से लेकर पर्वतीय वनस्पति 600 से 7000 मी० तक पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से महत्त्व पूर्ण अनेक बहुमूल्य पौधे मिलते हैं। फलतः इस क्षेत्र से अत्यधिक मात्रा में औषध निर्माण में उपयोगी पौधों का व्यापार होने लगा है। परिणाम स्वरूप यह क्षेत्र क्षतिग्रस्त होता जा रहा है जिससे वहां की वन संपदा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

इस क्षेत्र की बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वहां के वासी क्षेत्र की प्राकृतिक सम्पदाओं का अधिक से अधिक प्रयोग करने लगे हैं। फलस्वरूप प्राकृतिक सम्पदा के भंडारों में कमी होती जा रही है। यदि इसी प्रकार निरन्तर प्राकृतिक सम्पदा का दोहन होता रहा तो निःसन्देह वन परितंत्र का संतुलन बिगड़ जायेगा एवं प्राकृतिक सम्पदाओं की अनेकों जातियां लुप्त भी हो सकती हैं। अतः क्षेत्र के पर्यावरण को सुरक्षित रखने के लिए ऐसे प्रयास किये जाने चाहिए जिससे वहाँ की वन सम्पदाओं का ह्रास भी न हो एवं क्षेत्रवासी अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्तियां भी कर सकें। यह तभी संभव है जब दैनिक जीवन में उपयोग होने वाले पौधों की खेती की जाय या विशेष क्षेत्र के रूप में सुरक्षित रखकर उपयोग किया जाये। जिले के कई क्षेत्र इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सुरक्षित घोषित भी हो चुके हैं जिनमें फूलों की घाटी और नन्दा देवी प्रमुख क्षेत्र हैं।

पर्यावरण के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए जिले में पाये जाने वाले उन पौधों की सूची प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है जिनका इस क्षेत्र में वन परितंत्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है और दैनिक उपयोगिता में अधिक प्रयुक्त होने के फलस्वरूप वन परितंत्र पर कुप्रभाव पड़ता जा रहा है। सूची में पौधों की उपयोगिता, वानस्पतिक नाम (कोष्ठक में) एवं स्थानीय नाम दिये गये हैं :—

(अ) **काष्ठ**

1. सुराछ (**कूप्रेस्सुस टोरुलोसा**)
2. देवदार (**सेड्रुस देओदारा**)
3. कुलाई (**पीनुस राक्सबर्घिई**)
4. कैल (**पी० वालिचिआना**)

5. तोण (**टूना सीलिआटा**)

(आ) ऊर्जा

1. किनगोड़ा (**बेरबेरिस एशिआटिका**)
2. भोजपत्र (**बेटुला ऊटिलिस**)
3. डेकन (**मेलिया अजेडाराक**)
4. बांज (**कुएरकुस लेउकोट्रीकोफोरा**)
5. खरसू (**कु० सेमेकार्पीफोलिआ**)
6. बुरांस (**र्‌होडोडेन्ड्रान आर्बोरिउम**)
7. सेमरु (**र्‌हो० काम्पानुलाटुम**)
8. टुंगला (**र्‌हुस पार्वीफ्लोरा**)

(इ) **कुटीर धन्धों में**

1. रिंगाल (**अरुन्डीनारिआ फल्काटा**)
   (चटाई, टोकरे इत्यादि बनाये जाते हैं)

2. मालू (**बाउहीनिआ वाह्‌लिई**)
   (पत्तल बनाये जाते हैं)

3. भोजपत्र (**बेटुला ऊटिलिस**)
   (लिखने एवं पैकिंग कार्यों में उपयोग किये जाते हैं)

4. गैंठी (**बोह्‌मेरिआ रुगुलोसा**)
   (दूध, घी रखने के लिए बर्तन बनाये जाते हैं)

5. पापरी (**बुक्सुस वालिचिआना**)
   (खिलौने एवं बक्से बनाये जाते हैं)

6. भंगलू (**कान्नाबिस साटिवा**)
   (रेशे प्राप्त किये जाते हैं)

7. बबलिया (**एउलालिओप्सिस बीनाटा**)
   (साधारण रस्सियां बनाई जाती हैं)

8. फन्डालू (**जिरार्डिनिआ डिवेर्सीफोलिआ**)
   (रेशे उपलब्ध होते हैं)

लद्दाख में आजकल लगायी जा रही पेड़ों की मुख्य जाति --
पोपुलस नीग्रा

संसार का सबसे ठंडा गांव - दराम (लद्दाख)

देखें लेख सं 2

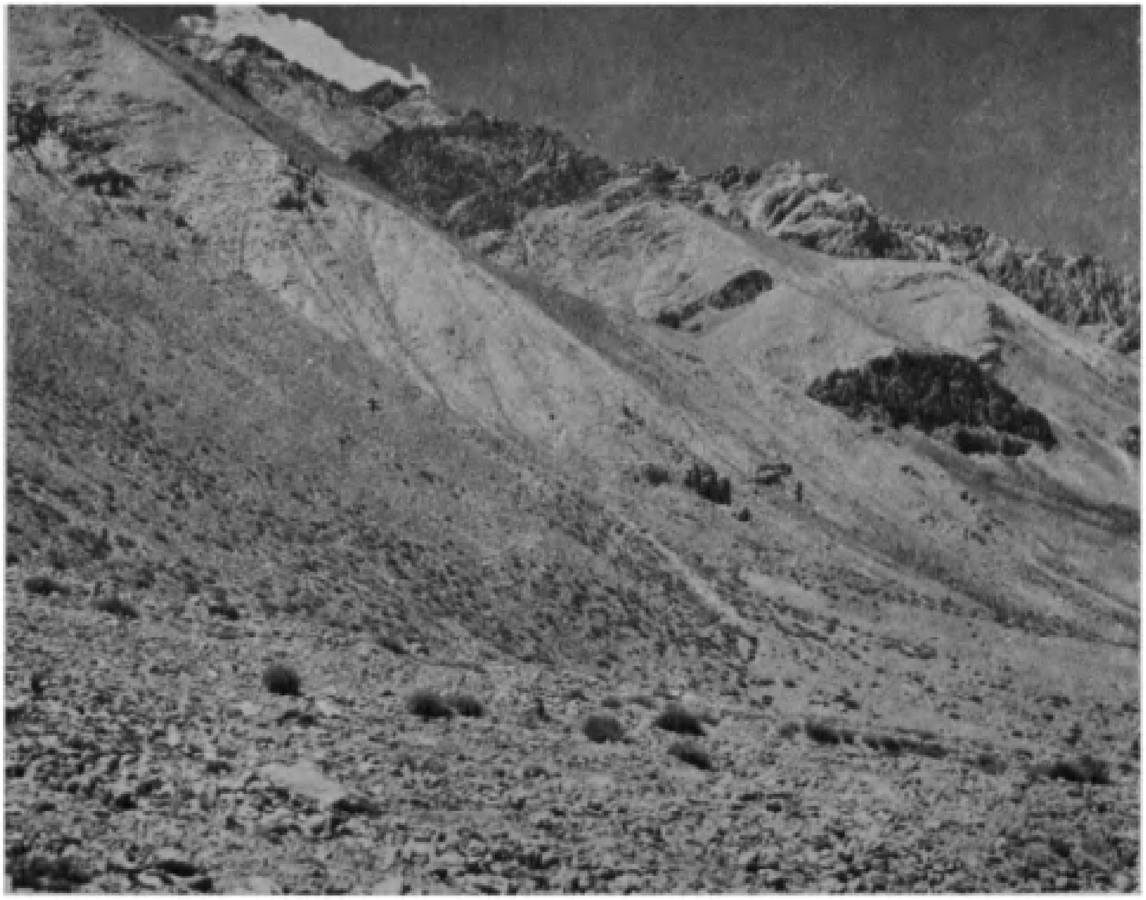

लद्दाख की पहाड़ियों पर **स्टाकिस टिबेटिका**

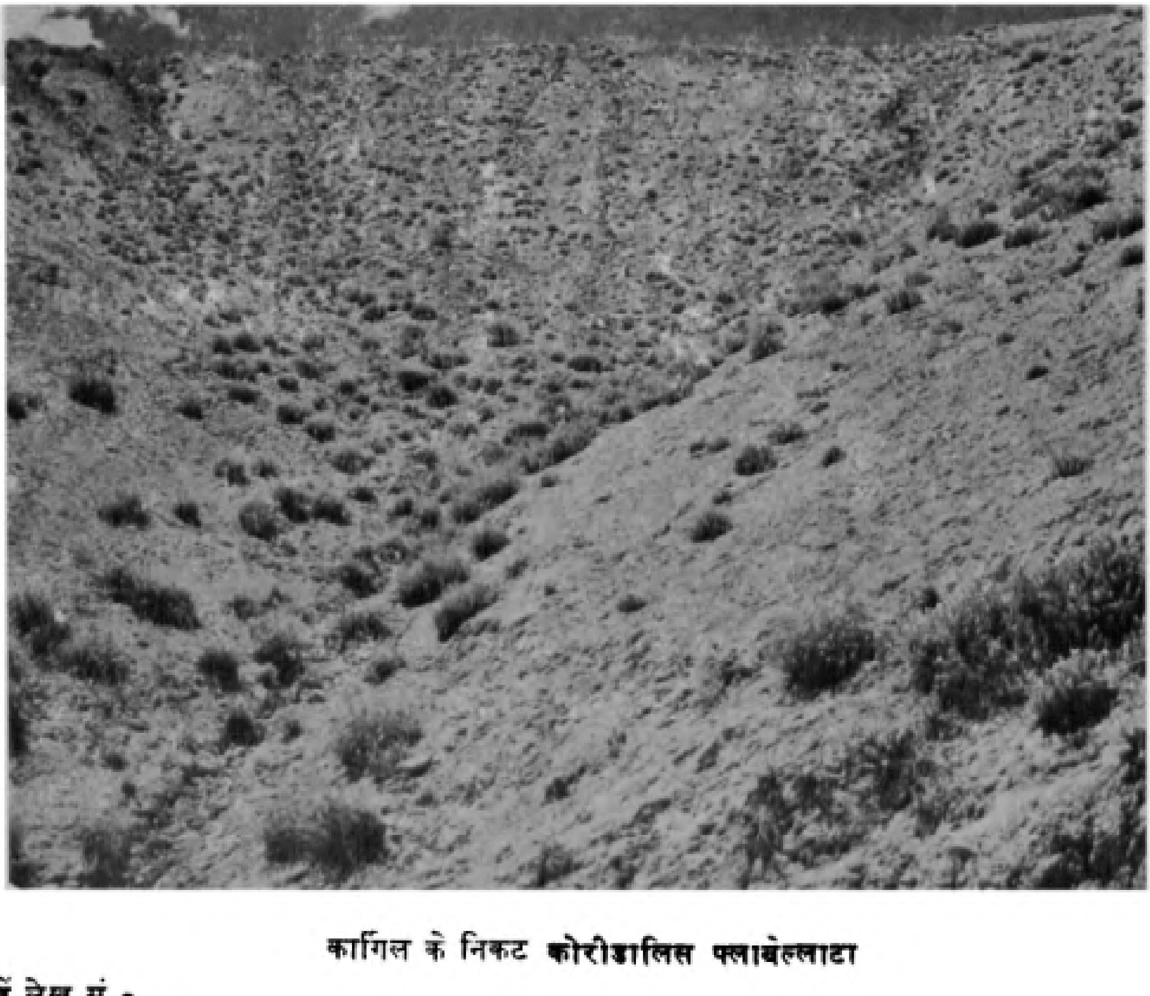

कार्गिल के निकट **कोरीडालिस फ्लाबेल्लाटा**

देखें लेख सं 2

फीसोक्लाइना प्राएआल्टा – एक संभाव्य औषधि

देखें लेख सं 2

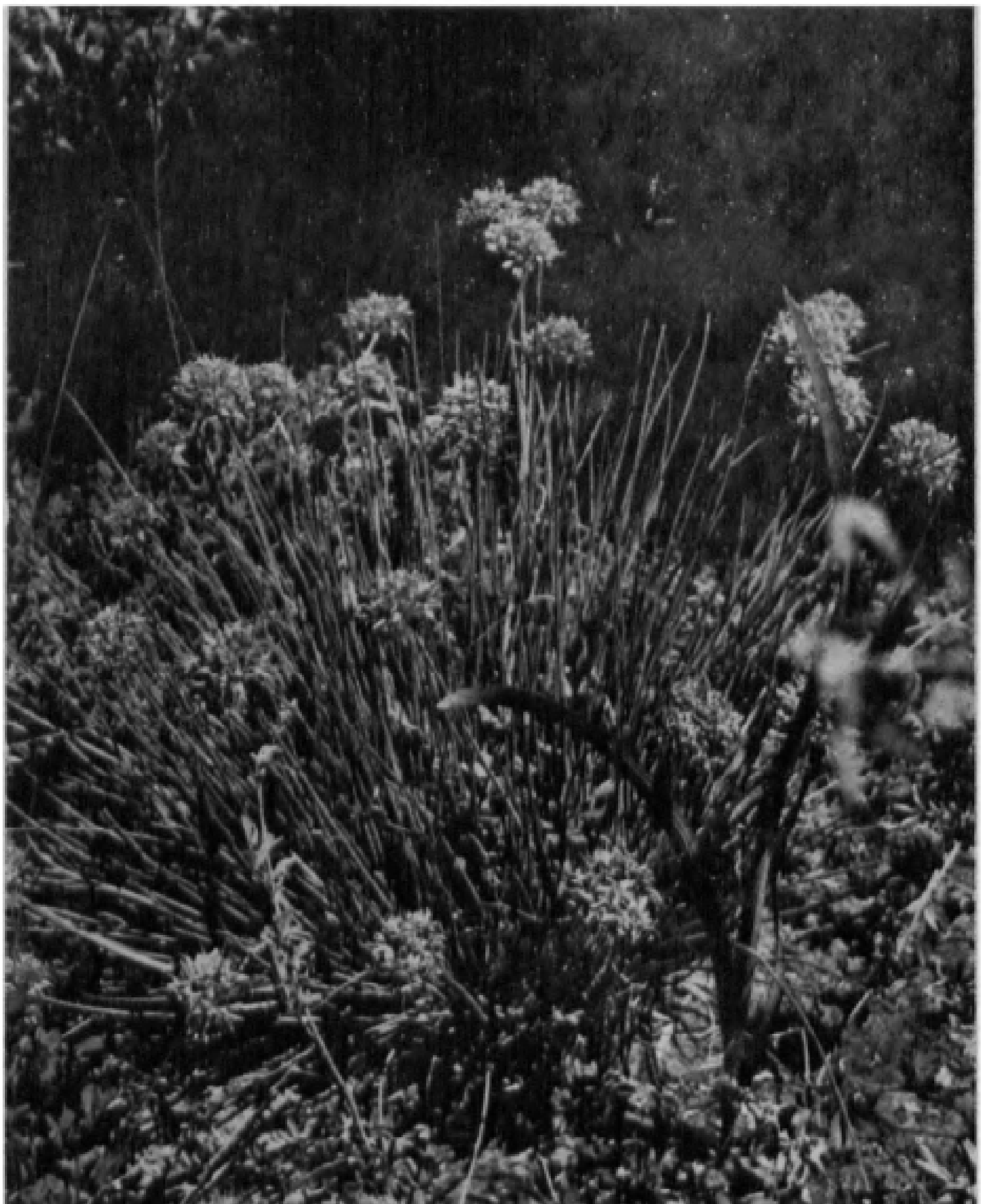

खाने योग्य प्याज की गुलाबी पुष्पों वाली
एक जाति-**आलिअम जाक्वेमोन्टिई**

देखें लेख सं 2

ड्राकोसेफालुम नूटान्स-सुगंधित सफेद पुष्पवाला
एक औषधीय पौधा

देखें लेख सं 2

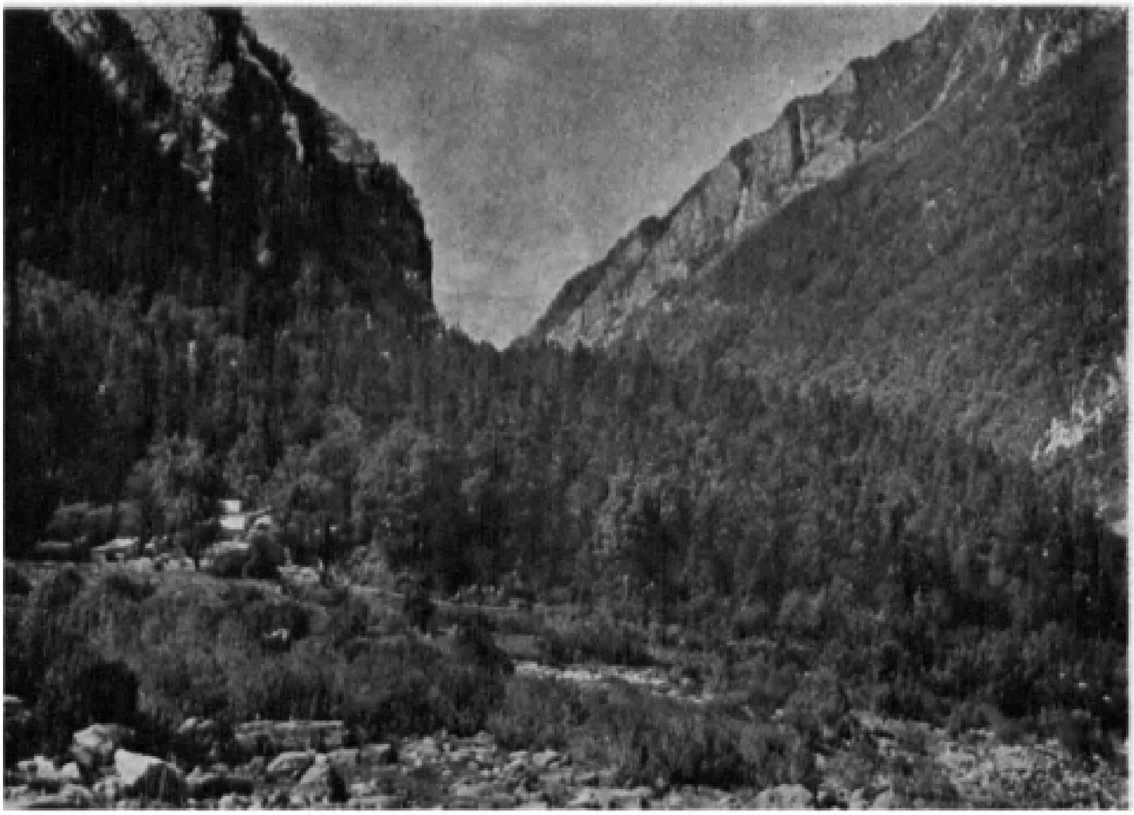

घंघाग्या का बन

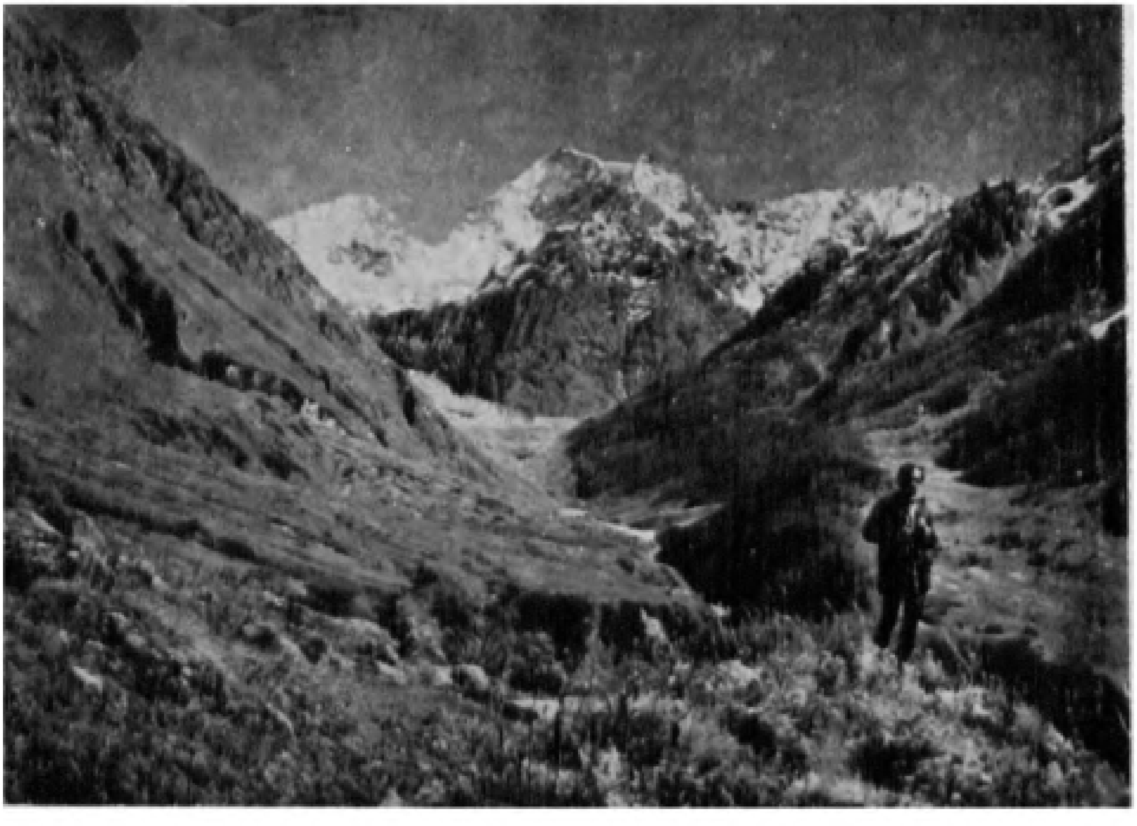

फूलों की घाटी का एक दृश्य (अक्टूबर)

देखें लेख सं 6

दुर्लभ व लुप्त प्राय जड़-परभोगी **बालानो-फोरा इनवोलूक्राटा**

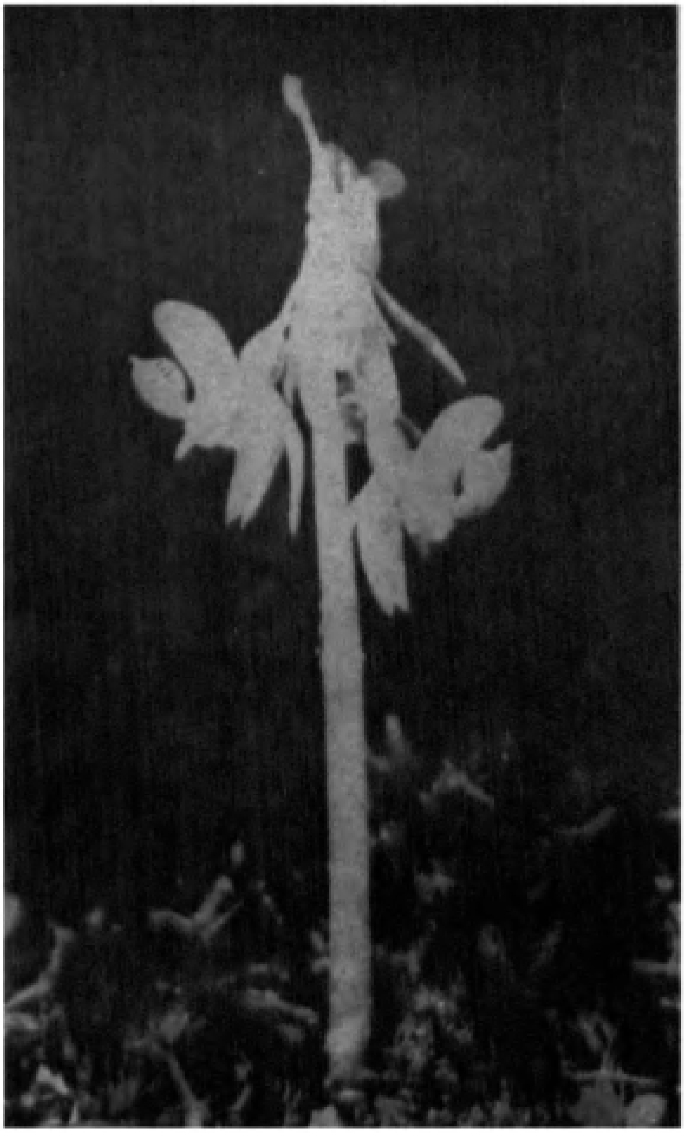

भ्यूंदार घाटी का एक दुर्लभ आर्किड **एपीपोगिउम टूबेरोसुम**

एउकोबिया शर्माए – हाल में पायी गई एक जाति

देखें लेख सं 6

सागोन (**टेक्टोना ग्रांडिस**) : पतझड़ वनों की प्रमुख जाति

स्टेरकुलिया उरेन्स-एक अत्यंत उपयोगी वृक्ष

देखें लेख सं 13

9. (**जर्बेरा गोस्सीपिना**)
   (उत्तम श्रेणी के थैले बनाये जाते हैं)

10. भियुल (**ग्रेविआ ओप्टिवा**)
    (रेशे उपलब्ध होते हैं)

11. बालछड़ (**आर्नेबिआ बेन्थामी**)
    (रंगाई इत्यादि में प्रयोग होते हैं)

12. कुलाई (**पीनुस राक्सर्बघिई**)
    (लीसा से तारपीन का तेल बनाया जाता है)

13. बांज (**कुएरकुस लेउकोट्रीकोफोरा**)
    (कृषि उपकरण बनाने में उपयोग किये जातेहैं)

14. आसीन (**टेर्मिनालिआ अलाटा**)
    (कृषि उपकरण बनाये जाते हैं)

15. टुण (**टूना सीलिआटा**)
    (कोल्हू बनाया जाता है)

16. टिमरु (**ज़ान्थोक्सीलुम अर्माटुम**)
    (छड़ियां व लाठियां बनाई जाती हैं)

(ई) **खाद्य**

क. शाक के रूप में

1. वेसिंगू (**आढाटोडा जेईलानिका**)
2. गुडराइल (**बाउहीनिआ वारिएगाटा**)
3. तैडु (**डिओस्कोरेआ बेलोफिल्ला**)

ख. फल

4. भमोरा (**बेन्थामीडिआ कापीटाटा**)
5. तिमला (**फीकुस आउरीकुलाटा**)
6. बेडु (**फी० पाल्माटा**)

7. अखोड़ (जुग्लान्स रेजिआ)
8. काफल (मीरिका एस्कुलेन्टा)
9. चोलु (प्रूनुस आर्मेनिआका)
10. हिसालु (रूबुस एल्लीप्टिकुस)
11. खजुरी (फेनिक्स हूमिलिस)
12. किनगौड़, चित्रिया (बेरबेरिस की जातियां)

ग. बीज

13. भोटिया बादाम (कोरीलुस कोलुर्ना)
14. कुलाई (पीनुस राक्सबर्घिई)
15. चोलु (प्रूनुस आर्मेनिआका)

घ. मसाले

16. चोरु (आन्जेलिका ग्लाउका)
17. जिम्बु (आल्लिउम गोवानिआनुम)
18. तेजपात (सीन्नामोमुम टमाला)

(ड) औषध

1. वच (आकोरुस कालामुस)
2. मीठू (आकोनीटुम फाल्कोनेरी)
3. किनगौड़ (बेरबेरिस एशिआटिका),
4. मासी (नार्डोस्टाकिस ग्रान्डीफ्लोरा)
5. हत्थाजड़ी (डाक्टीलोर्हीजा हाटागिरेआ)
6. डोलु (र्हेउम टिबेटिकुम)
7. अरचु (र्हे० एमोडी)
8. कडुवी (पिक्रोर्हिज़ा स्क्रोफुलारिआ)
9. टिमरु (जान्थोक्सीलुम अर्माटुम)
10. वनस्पा (विओला पीलोसा)
11. सिमारु (विटेक्स नेगुण्डो)
12. घोला (वूडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा)

13. चिरैत् (स्वेर्टिआ चिरायाता)

(ऊ) **विविध**

क. स्थानीय वैद्य औषध में प्रयोग करते हैं—

1. अजीवक (मालाक्सिस मुस्कीफेरा)
2. ऋषभक (मा० आकुमीनाटा)
3. क्षीर ककोली (फ्रिटील्लारिआ रोयलेई)
4. काकोली (नोमोकारिस ओक्सीपेटाला)

ख. विशेष पूजन में प्रयोग किया जाता है—

1. ब्रह्म कमल (साउस्सुरेआ ओब्वाल्लाटा)

ग. धूप के रूप में

धूप (जूरीनेआ डोलोमिआएआ)

घ. बीज से जलाने का तेल निकालने के लिये—

भेकल (प्रिन्सेपिआ ऊटीलिस)

आभार

मैं प्रोत्साहन के लिए निदेशक महोदय का आभारी हूं।

6. फूलों की घाटी का संरक्षण और पेड़ पौधों के विषय में कुछ विचार

उपेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य एवं
देव राज अग्रवाल

फूलों की घाटी, गढ़वाल हिमालय के प्रमुख पर्यटक स्थलों में से एक है। घाटी अपने सुन्दर व दुर्लभ पेड़ पौधों के कारण दूर-दूर तक प्रसिद्ध है और वनस्पति शास्त्रियों के लिए एक तीर्थ स्थल बन चुकी है। फूलों की घाटी के समीप ही हिमालय का एक अन्य चमत्कार लोकपाल झील है। इस झील के समीप कुछ समय पूर्व निर्मित सिख गुरुद्वारे में भी हजारों व्यक्ति प्रतिवर्ष तीर्थ यात्रा हेतु आते हैं।

सन् 1931 में सर फ्रैंक स्माइथ जब अपने साथियों के साथ कामत चोटी से लौटते समय इस घाटी से गुजरे तो यहां का दृश्य देखकर मंत्रमुग्ध हो गए और उन्होंने इस घाटी को "वैली आफ फ्लावर्स" का नाम दिया एवं 'वैली आफ फ्लावर' नामक एक पुस्तक भी लिखी।

मुख्य बद्रीनाथ धाम मार्ग पर गोविन्दघाट स्थान पर भ्यूंदार नदी अलकनन्दा के साथ मिलती है। यहीं से भ्यूंदार के साथ-साथ घाटी को पैदल मार्ग जाता है। गोविन्दघाट से चढ़ाई चढ़ते हुए जो घना वन है उसमें विभिन्न जातियों के वृक्ष मिश्रित हैं। इनमें से प्रमुख हैं **अल्नुस नेपोलेन्सिस**, **आएस्कुलुस ईन्डिका**, **आसेर वील्लोसुम**, **आसेर आकुमीनाटुम**, **कोर्नुस माक्रोफिल्ला**, **बेटुला अलनोइडेस**, **पीरुस लानाटा** आदि। छोटे पौधों में मुख्यतः **अरीसाएमा**, **जेरानिउम**, **पोलीगोनुम**, **एउफोर्बिआ**, **स्क्रोफुलारिआ**, **सिलेने**, **आक्युइलेजिआ**, **लामिउम** की बहुत सी जातियां व फर्न में **ओनीचिउम**, **डावाल्लिआ** व **पोलीस्टिकुम** आदि की जातियां सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करती हैं। भ्यूंदार के किनारे **सोरबारिआ टोमेन्टोसा**, व **हिप्पोफाए सालिसिफोलिआ**, **फिलाडेल्फुस टोमेन्टोसुस** एक आकर्षक दृश्य प्रस्तुत करते हैं घंघारिआ से कुछ पहले सुन्दर हरा मैदान है जिसमें फूलों का बाहुल्य सभी को मंत्र मुग्ध कर देता है। **र्‌होडोडेंड्रोन** और सरल वर्गीय पौधे जैसे **आबिएस पिन्डरोव** व **टाक्सुस बक्काटा** यहीं से आरम्भ हो जाते हैं।

घंघारिया में ये घने जंगल का रूप धारण कर लेते हैं यहां पर **र्‌होडोडेंड्रोन** की जड़ों पर मिलने वाला **बालानोफोरा** व **बोश्निआकिआ** नामक जड़-पर भोगी बहुत ही विचित्र किन्तु दुर्लभ हैं। घंघारिया क्षेत्र **आस्टेर आल्बेस्सेन्स**, **सिर्काएआस्टेर अग्रेस्टिस**, **इपिपोगिउम टुबेरोसुम**, **लिस्टेरा लोंगीकाउलिस**, **लिटसेआ कन्निंघामिई**, **पोडोफील्लुम हेक्सान्ड्रुम**, **क्रोट्रीकिउम**, **टेर्नाटुम**,

सिप्रीपेडिउम कोर्डिगेरुम आदि बहुत ही दुर्लभ पौधों का घर है। परन्तु तीर्थ यात्रियों व भ्रमण-कारियों द्वारा हस्तक्षेप के कारण इनमें से कुछ पौधे अब प्रायः समाप्त हो गए हैं।

घंघारिया से ही एक रास्ता दाईं तरफ लोकपाल झील को तथा बांई ओर मुख्य फूलों की घाटी को जो यहां से लगभग चार कि० मी० है, जाता है।

मुख्य फूलों की घाटी को जाते हुए घाटी के दक्षिण पूर्व क्षेत्र से भोजपत्र के घने जंगल हैं। फूलों की घाटी का विस्तार उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व की ओर है तथा ऊंचाई लगभग 3352 से 3658 मी० तक है। भ्यूंदार नदी का उद्‌गम एक बड़े हिम खण्ड से होता है जिसके ऊपर खड़े हैं भीमकाय रतवन व गौरी पर्वत, जो घाटी की सुन्दरता को और भी बढ़ा देते हैं। दक्षिण-पूर्व की ओर की ढाल वैसे तो बिल्कुल चट्टानी है, किन्तु उस पर सुन्दर पुष्पों वाले सहस्रों पौधे उगते हैं। नदी के दूसरी ओर की पर्वत माला जो सुन्दर भोजपत्रों से ढकी है, लोक-पाल झील पर टिपड़ाखड़क टीले तक पहुंचती हैं।

घाटी में बहुत से दुर्लभ व सुन्दर पुष्पों वाले पौधे हैं। जिसमें **पोलीगोनुम पोलीस्टाकिउम, ओसमुन्डा क्लेटोनिआना, इम्पाटिएन्स ग्लान्डुलीफेरा, इम्पाटिएन्स जिजान्टेआ, प्रेनान्थेस ब्रूनोनिआना** अधिक मात्रा में दिखाई देते हैं। घाटी के आरम्भ में बकरियों के डेरे **पोलीगोनुम नेपालेन्सिस** से भरे रहते हैं। सैंकड़ों जाति के पुष्पों की बहार जून से अगस्त तक विभिन्न रंगों में परिवर्तित होती रहती है। अन्त में, अक्तूबर में बर्फ गिरने से पूर्व, केवल ठण्ड से जली वनस्पति का एक आवरण सा व कुछ घास एवं **अनाफालिस** जैसे पौधे ही शेष रहते हैं।

सबसे प्रथम खिलने वाले पुष्पों में **कोरीडालिस कश्मीरिआना, अनेमोने नारसिस्सी-फ्लोरा, रानुनकुलुस हिर्टेल्लुस, आलिउम गोवानिआनुम, आलिउम स्ट्राचेयी,** व **थेर्मोप्सिस बारबाटा** अत्यन्त आकर्षक होते हैं।

जब वर्षा ऋतु पूर्ण रूप से आरम्भ होती है, उस समय सबसे अधिक पुष्प खिलते हैं। **इम्पाटिएन्स, अनाफालिस, जेरानिउम, जेन्टिआना, ओरिगानुम, हेराक्लेउम, सेलीनुम, सिआनान्थुस, गाउल्थेरिआ, सिप्रीपेडिउम** आदि की विभिन्न जातियां और पीले व लाल **पोटेन्टिला** के विपुल समारोह में पांव टिकाने हेतु स्थान ढूंढना भी कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त छोटे-छोटे पानी के बहाव में भी **काल्था पालुस्ट्रिस, एपीलोबिउम लाटीफो-लिउम** जैसे पौधों से घाटी के सौन्दर्य में और निखार आ जाता है।

मुख्य फूलों की घाटी के अतिरिक्त लोकपाल झील एवं हेमकुण्ड गुरुद्वारे का क्षेत्र अपनी प्राकृतिक स्थिति एवं अद्‌भुत ऊंचाई के कारण वनस्पति की दृष्टि से और भी अधिक महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में ब्रह्म कमल (**साउस्सुरेआ ओब्वाल्लाटा**), **सा० सिम्पसोनिआना, सा० काएस्पीटोसा, सा० गोस्सिपीफोरा, आन्ड्रोसासे पोइस्सोनी, मेकोनोप्सिस आकुलेआटा,**

एउफोर्बिआ शर्माए, आकोनीटुम विओलासेउम, जूरीनेआ मात्रोसेफाला व कई प्रकार के छोटे **जेन्टिआना** जैसे दुर्लभ पौधे होते हैं। इन समस्त दुर्लभ पौधों के यहां पाए जाने से इस क्षेत्र का सम्पूर्ण भ्यूंदार घाटी में वनस्पति की दृष्टि से सबसे अधिक महत्व है। यहीं पर झील के किनारे बने प्राचीन लक्ष्मण मन्दिर व कुछ समय पूर्व बने सिख गुरुद्वारे की प्रसिद्धि के कारण यहां पर आने वालों की संख्या पिछले कुछ वर्षों में कई गुनी हो गई है।

वैसे तो प्रारम्भ से ही किसी प्रकार की रोकथाम के अभाव में घाटी में आने वालों ने सुन्दर पेड़ पौधों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हानि पहुंचाई है, किन्तु हेमकुण्ड गुरुद्वारे के निर्माण के कारण बढ़ी यात्रियों की संख्या यहां के वातावरण व प्राकृतिक सम्पदा के लिए एक आपत्ति सिद्ध हुई है। ग्रीष्म काल में तो पूरी घाटी एक अत्यन्त घनी जनसंख्या वाला क्षेत्र सा बन जाती है जिसके फलस्वरूप घंघारिया के सुन्दर **आबिएस** जंगल को साफ कर अब यात्रियों के ठहरने की व्यवस्था का विचार किया जा रहा है। इस कारण वहां पर उगने वाले कुछ दुर्लभ पौधों, जिनका पीछे वर्णन किया गया है, को हानि हुई है। जगह-जगह पर बनी दुकानें, उनकी समस्त गन्दगी, साबुन का पानी, बड़ी मात्रा में आए खच्चरों के चलने व उनके चरने से सम्पूर्ण घाटी एक अभूतपूर्व संकट में पड़ गई है। खच्चर वाले स्थान स्थान-स्थान पर रहने के लिए पहाड़ों में स्थान साफ करते हैं। कई लोग तम्बू लगाते हैं। जब से प्राकृतिज्ञों व वनस्पतिज्ञों ने जनसाधारण का ध्यान दुर्लभ पेड़ पौधों की ओर आकर्षित किया है, कुछ पौधे, विशेषकर ब्रह्मकमल और 'ब्ल्यूपौपी' इत्यादि एक आम यात्री, जिसका यात्रा ध्येय केवल धार्मिक ही क्यों न हो, तक के लिए एक विशेष आकर्षण हो गए हैं। इनकी दुर्लभता की बात सुनकर वे इन पौधों को तोड़कर साथ ले जाते हैं। यदि कोई यात्रा-काल के पश्चात, अक्तूबर में हेमकुण्ड जाए तो ब्रह्मकमल के खाली तनें देखकर स्तब्ध रह जाएगा। इसी मानवीय हस्तक्षेप के फलस्वरूप कुछ समय पूर्व तक झील के पास सरलता से मिलने वाला **साउस्सुरेआ गोस्सिपीफोरा** आज वहां से लुप्त ही हो गया है। पिछले कई वर्षों से तो इस विनाश लीला की गति बहुत बढ़ गई है।

वैसे तो हमेशा घाटी छः माह तक बर्फ से ढकी रहती है और ग्रीष्म के छः माह ही बर्फ पिघलने पर विभिन्न पौधे निकलते हैं. इन पौधों का जीवन काल काफी छोटा होता है। ग्रीष्म के आरम्भ से ही वनस्पति चक्र आरम्भ होते हैं और छः महीनों में घाटी विभिन्न प्रकार के पुष्पों से कई रंग बदलती है। पेड़ों के कटान से मिट्टी कटती है और मानव हस्तक्षेप से कई पौधों को बाधा उत्पन्न होती है। इसी कारण पुरानी व नई पुष्प व्यवस्था में कुछ अन्तर आया है। अब कुछ नये पौधों का प्रभुत्व हो गया है। जैसे—**पोलीगोनुम पोलीस्टाकिउम** और **ओसमुण्डा क्लेटोनिआना**। कुछ दुर्लभ पौधे जैसे—**आकोनीटुम फाल्कोनेरी, डाक्टीलोर्हीजा हाटागिरेआ, आल्लिउम स्ट्राचेयी** और **सेलीनुम टेनुईफोलिउम** आदि औषधि में प्रयोग योग्य पौधे पहले की तुलना में अब कम मिलते हैं।

ग्रीष्म काल के आरम्भ से घाटी में अगले हिमपात तक कुछ-कुछ समय बाद जाकर वहां

के पेड़ पौधों का सर्वेक्षण व अध्ययन अवश्य ही रुचिकर रहेगा। पौधों के छोटे जीवन काल एवं प्रभुत्व वाले पौधों का भी आकर्षक विवरण बन सकेगा। इसके अतिरिक्त ये भी जानकारी होगी कि कौन-कौन से पौधे सबसे कम उगते हैं और कौन से सबसे अधिक। ये सब एक बार के भ्रमण से सम्भव नहीं है। इसके बाद कुछ क्षेत्रों को जहां पर कुछ दुर्लभ पौधे हैं, या जिनका प्रभुत्व नहीं है तार बाड़ से बन्द करके उन पौधों के भविष्य को उज्ज्वल बनाया जा सकता है। इसके साथ ही कुछ पौधों को प्रयास करके उचित स्थानों में उगाने से उनको भविष्य के लिए बचाया जा सकता है। पशुओं की चराई को सीमित करने से भी पौधों की सुरक्षा होगी। इस सब प्रयास से हम विभिन्न पौधों के प्रजनन काअ नुमान भी लगा सकते हैं जिससे हमें उनके नियंत्रण के सम्भव तरीके ढूंढने में भी सहायता मिलेगी।

इस घाटी की दो मुख्य विशेषताएं हैं अत्यधिक नमी, जो कि भ्यूंदार के तेज वेग के कारण उड़ने वाले पानी के फलस्वरूप है, व यहां के आसपास की ऊंचाई जिसमें लोकपाल झील मुख्य है। इन विशेषताओं के ही कारण यह घाटी विभिन्न पेड़ पौधों को उगाने के लिए सबसे उत्तम स्थान है। इस कारण सम्पूर्ण भ्यूंदार घाटी को प्राकृतिक जीव मण्डल क्षेत्र बना देने से दुर्लभ पौधों को सुरक्षित और प्राकृतिक वातावरण में उगने का अवसर मिल सकेगा। वैसे मुख्य फूलों की घाटी को पहले से ही राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया जा चुका है, किन्तु सम्पूर्ण भ्यूंदार घाटी के संरक्षण से यहां की सुरक्षा और दृढ़ हो जाएगी। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि इस घाटी के अधिकतर दुर्लभ पौधे मुख्य फूलों की घाटी से पूर्व घंघारिया व लोकपाल झील के क्षेत्र में ही पाये जाते हैं और इस क्षेत्र का अभी संरक्षण नहीं हो सका है।

सम्पूर्ण भ्यूंदार घाटी को जीव मण्डल क्षेत्र बनाने में यहां आने वाले लाखों तीर्थ-यात्रियों की धार्मिक भावना को ध्यान में रखा जायेगा एवं उनको यहां आने की पूरी अनुमति होगी। किन्तु उनको समझाया जाएगा कि इस घाटी के समस्त पेड़ पौधों को संरक्षण प्राप्त हैं जिसके फलस्वरूप उनको हानि पहुंचाना दण्डनीय होगा।

इस प्रकार के जीव मण्डल क्षेत्र के निर्माण से दुर्लभ व लुप्त-प्राय पौधों को बचाने में विशेष सहायता मिलेगी।

आभार

हम निदेशक महोदय, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के प्रोत्साहन हेतु आभार व्यक्त करते हैं।

7 राजस्थान के वन और वनस्पति

विजेन्द्र सिंह

राजस्थान, जिसे राजपूताना कहा जाता था, भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में स्थित है। इस प्रदेश का क्षेत्रफल लगभग 342274 वर्ग किलोमीटर है जो भारत के कुल क्षेत्रफल का लगभग 11 प्रतिशत है। राजस्थान के लगभग दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व कोण तक स्थित अरावली पर्वत की शृंखलायें प्रदेश को स्पष्ट दो भागों में बांटती है। पश्चिम का आधे से अधिक भाग मरुस्थल है तथा पूर्व का शेष भाग पठार, समतल तथा उपजाऊ है। अरावली पर्वत स्वयं भी अत्यंत आकर्षक है। आबू पर्वत की गुरुशिखर चोटी जिसकी ऊंचाई लगभग 1723 मीटर है, उत्तर में हिमालय तथा दक्षिण में नीलिगिरि पर्वतों के मध्य एकमात्र सबसे ऊंची चोटी होने के कारण जहां एक ओर सैलानियों के लिये आकर्षण का केन्द्र है वहीं वनस्पतिज्ञों के लिये भी महत्वपूर्ण है।

राजस्थान की वन संपदा न केवल आज, अपितु भूतकाल से ही आकर्षण का केन्द्र रही है। यहां की विशिष्ट भौगोलिक स्थिति भूगर्भीय संरचना, धरातल, मिट्टी तथा जलवायु आदि इसके प्रमुख कारण हैं। राजस्थान के वन तथा वनस्पति के विस्तृत अध्ययन के लिये प्रदेश को तीन प्राकृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है।

1. मरुस्थलीय क्षेत्र

राजस्थान के पश्चिमी भाग में लगभग 1,96,150 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल में फैला रेगिस्तान शेष भारत से भिन्न है। इसकी मुख्य विशेषताएं है कम वर्षा (150-200 मी०मी०)। अधिक तापमान (47°) से०, तेज हवाएं (70-80 किलोमीटर प्रति घन्टा), तेज धूप, कम आर्द्रता तथा रेतीले मैदानों के बीच स्थिर, अर्धस्थिर तथा अस्थिर रेत के टीले जिनका प्रतिदिन बदलता स्वरूप प्रकृति की कारीगरी का अनुपम उदाहरण है। उक्त वातावरण में उपजी वनस्पति की अपनी विशेषतायें हैं जो अन्यत्र नहीं पायी जाती हैं। मरुस्थलीय क्षेत्र में बड़े पेड़ों की जातियां तथा संख्या बहुत कम है। मुख्य रूप से (बबूल) **अकासिआ नीलोटिका, अ० सेनेगल** (कुमट), **प्रोसोपिस सिनेरारिआ** (खेजरी), **साल्वाडोरा ओलेओइडेस** (पीलू) **टेकोमेल्ला उन्डुलाटा** (रोहिड़ा), **जिज़ीफुस माउरीटिआना** (बोर) आदि पेड़ दूर-दूर तक हैं। झाड़ियों की संख्या अधिक हैं। मुख्य झाड़ियां **काल्लीगोनुम** (फोग), **लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्नीका** (खीप) **कालोट्रोपिस प्रोसेरा** (आक) **लीसीउम बरबारुम** (मोरली), **जिज़ीफुस नुम्मुलारिआ** (थोर) आदि हैं। छोटी जड़ी-बूटियों की संख्या सबसे अधिक होती है तथा वर्षा ऋतु में तो ये भूमि के बड़े क्षेत्र को ढक देती हैं। इनमें विभिन्न प्रकार की घासों के अतिरिक्त

क्लेओमे आर्कीकार्पा (हुलहुल), **जीगोफील्लुम सिम्प्लेक्स** (लाना), **टेपरोसिआ** तथा **इन्डीगोफेरा** आदि मुख्य हैं। ये पेड़-पौधे दूर-दूर होने के कारण सघन वन नहीं बना पाते हैं।

राजस्थान का मरुस्थलीय क्षेत्र अविकसित है। अधिकांश जनसंख्या ग्रामीणों की है जो अशिक्षित हैं तथा कृषि के अभाव में इनका मुख्य धंधा पशुपालन है। इसलिए अधिकांश लोग विभिन्न वस्तुओं जैसे भोजन, ईंधन, चारा आदि के लिए अपने चारों ओर उसी वनस्पति पर निर्भर रहते हैं। इसी कारण मरुस्थलीय क्षेत्र में कुछ पेड़-पौधे जैसे **टैकोमेल्ला** उन्डुलाटा (रोहेड़ा), **सिट्रुल्लुस कोलोसोन्थिस** (तुंबा), **कोम्मीफोरा वाईटिई** (गुगल), **एफेड्रा फोलिआटा** (सुबो फोगरा)), आदि तथा कुछ प्राणियों की जातियां जैसे **कोरिओटिस निग्रीसेप्स** (गोडावण) आदि को खतरा पैदा हो गया है। रेगिस्तानी क्षेत्र में फूल वाले पौधों की कुछ जातियां हैं जो विश्व में अन्य कहीं नहीं पायी जाती। ये हैं—

(1) **सेन्कुस राजस्थानेन्सिस**, (2) सेन्कुस **प्रीएउरिई** उपजाति, **साका**, (3) **कोन्वोवुलुस आउरीकोमोउस प्र० फेरुगिनोसुस**, (4) **कोन्वोल्वुलुस ब्लाट्टेरी**, (5) **फार्स्टेआ माकान्था**, (5) **पुलीकारिआ राजपुतानाए**, (7) **जिजीफुस ट्रुन्काटा**, (8) **आबूटिलोन बीडेन्टाटुम प्र० माजोर** (9) **आबूटिलोन फ्रुटिकोसुम प्र०** कोसीकार्पा (10) अलीसिकार्पुस मोनिलिफेर प्र० **वेनोसा**, (11) **बार्लेरिआ प्रिओनिटिस प्र० डिआकान्था**, (12) **क्लेओमे** गिनान्ड्रा प्र० **नाना**, (13) **पावोनिआ अराबिका** प्र० **ग्लुटीनोसा** तथा प्र० **मुस्सोरीएन्सिस** (14) **इपोमोएआ कारिका प्र० सेमीसेरलाटा**। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि इस क्षेत्र में कोई भौगोलिक रुकावट न होते हुए भी ये पौधे अधिक क्षेत्र में नहीं फैल सके हैं तथा ऐसी स्थिति में इनके भी लुप्त होने का खतरा है। अत: मरुस्थलीय क्षेत्र में प्राकृतिक सन्तुलन बनाए रखने, पर्यावरण की रक्षा तथा लुप्त होते पेड़-पौधों तथा प्राणियों के संरक्षण के लिये राजस्थान सरकार ने जैसलमेर-बाड़मेर जिलों में एक 'राष्ट्रीय मरुउद्यान' की स्थापना की है जो 3000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है तथा न केवल इस क्षेत्र के लिये, अपितु विश्व के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध होगा। इसी प्रकार का एक उद्यान जोधपुर के निकट स्थापित किया गया है जो "सफारी उद्यान" के नाम से प्रसिद्ध है।

जैसलमेर जिले में देवीकोट सड़क पर जैसलमेर से लगभग 18 कि०मी० दूर "आकल वुड फोसिल पार्क" स्थित है। यहां पाये जाने वाले जीवाश्म बताते हैं कि यह क्षेत्र 18-20 करोड़ वर्ष पूर्व सघन समुद्र तटीय वनों से ढका था। इस क्षेत्र से प्राप्त छोटे जीवाश्म भी इस मत को प्रतिपादित करते हैं। इन बहुमूल्य जीवाश्मों को वैज्ञानिक अध्ययन के लिए "आकल वुड फोसिल पार्क" में सुरक्षित किया गया है।

इस प्रकार के उद्यानों का महत्व राजस्थान जैसे राज्य के लिये जहां प्राकृतिक सन्तुलन में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं और भी अधिक है। इसका जीवन्त उदाहरण गंगानगर जिले में देखा जा सकता है जहां यदि एक ओर राजस्थान नहर ने रेगिस्तान को हरा भरा कर

दिया है, दूसरी ओर वहां की प्राकृतिक वनस्पति लुप्त होती जा रही है। निकट भविष्य में इसी प्रकार के परिवर्तन मरुस्थल के शेष भागों में भी होने की आशा है, इसलिये मरु उद्यान या इसी प्रकार के अन्य सुरक्षित क्षेत्र ही भविष्य में भूत की परिस्थिति को सुरक्षित रखने का एकमात्र माध्यम होंगे।

2. अरावली पर्वत

अरावली पर्वत प्रदेश को दो प्राकृतिक क्षेत्रों में बांटता है। अरावली पर्वत गुजरात में चम्पानेर से शुरू होता है तथा राजस्थान राज्य में सिरोही जिले में दक्षिण से प्रवेश करता है। यहां से उत्तर-पूर्व में राज्य के लगभग मध्य से होता हुआ दिल्ली के पास छोटी-छोटी पहाड़ियों के रूप में समाप्त हो जाता है। इसकी लम्बाई राजस्थान राज्य में लगभग 550 कि०मी० है तथा इसकी समुद्र तल से ऊंचाई दक्षिण से उत्तर की तरफ क्रमशः कम होती जाती है। विशेष बात यह है कि जैसे-जैसे ऊंचाई घटती जाती है, वातावरण तथा भूमि में परिवर्तन के कारण वनस्पति भी बदलती जाती है। खेतरी में जहां ऊंचाई 792 मी० है, मुख्य रूप से **अकासिआ लेउकोपलोएआ, अकासिआ सेनेगल, बालानीटेस आएजिप्टिआका, काप्पारिस डेसीडुआ, एउफोबिआ नीवुलिआ, ग्रेविआ टेनाक्स, आढाटोडा जेइलानिका, कालोट्रोपिस प्रोसेरा, क्लेरोडेन्ड्रुम फ्लोमिडिस** आदि पौधे मिलते हैं।

थोड़ा और दक्षिण की दिशा में हारसनाथ (913 मी०) जाने पर लगभग 600 मी० की ऊंचाई तक मिलने वाले पौधे तो लगभग समान ही हैं परन्तु इससे ऊपर **डीक्रोस्टाचिस सिनेरेआ, एउफोर्बिआ नीवुलिआ** (थोर), **ड्रीमेफ्रेट्टा र्होम्बोइडेआ, अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ** (कलधऊ), **अनोगेइस्सुस पेन्डुला** (धाऊ), **बालानीटेस आएजिप्टिका** (हिंगगोट), **प्रोसोपिस सिनेरिआ** (खेजरी), **राईटिआ टोमेन्टोसा** (दूधी) आदि पेड़ प्रधान रूप से मिलते हैं। पाली जिले में बीजापुर (1100 मी०) के पर्वत पर्णपाती वनों से ढके हुए हैं जिनमें **अनोगेइस्सुस** पेन्डुला (धोकला) के पेड़ प्रधान रूप से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त **आएग्ले मार्मेलोस** (बेल), **अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ** (कलधऊ), **बाउहीनिआ रासेमोसा** (कचनार), **बोस्वेल्लिआ** सेर्राटा (सालर), **बुटेआ मोनोस्पेर्मा** (छोला), **कास्सिआ फीस्टुला** (करमाला), **डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलॉन** (तेन्दू), **मीट्रागिना पार्वीफोलिआ** (कलम), **राइटिआ टिन्क्टोरिआ** (दूधी) आदि भी काफी संख्या में में मिलते हैं।

आइये, अब राज्य के दक्षिण-पश्चिमी सिरे पर स्थित आबू पर्वत के वन तथा वनस्पति का भी अवलोकन करें। 1300 मी० की ऊंचाई तक लगभग वही पौधे पाये जाते हैं जिनका वर्णन बीजापुर के वनों में हम कर चुके हैं। परन्तु 1300 मी० से ऊपर पर्णपाती वन अर्द्ध उपोष्ण सदापर्णी वनों में परिवर्तित होते प्रतीत होते हैं, जिनमें मुख्य रूप से **बोस्वेल्लिआ सेर्राटा** (सालर), **कार्बिआ काल्लोसा, कारेबा नुर्वाला, फ्लेकूर्टिआ ईन्डिका, जिरार्डिनिआ जइलानिका, जास्मीनुम हुमीले** (चमेली), **लान्नेआ कोरोमान्डेलिका** (गुरजन), **माल्लोटुस**

फिल्लीपेन्सिस, मान्गीफेरा ईन्डिका (आम), **रोसा ब्रूनोनि, रोसा इनवोलुक्रेटा** (गुलाब), स्टेर्कुलिआ उरेन्स, **सीजीजिउम कूमिनी, कोडिआ कालोसिना, ट्रेमा ओरिएन्टालिस,** सैकड़ों प्रकार के पर्णांग, आदि पाये जाते हैं।

आबू पर्वत पर निम्न पौधे सीमित क्षेत्री हैं जो विश्व में अन्य किसी स्थान पर नहीं पाये जाते। ये हैं—**बोन्नाया ब्राक्टेओइडेस, डिक्लोप्टेरा आबुएन्सिस, ओल्डेनलान्डिया क्लाउसा, स्ट्रोबिलाथेन्स हालबेर्जी होड्रिल्ला पोलिस्पेर्मा** तथा **वेरोनिका अनागालिस** प्र० **ब्राक्टेओइडेस**। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ये पौधे बहुत ही कम संख्या में उपलब्ध हैं तथा ऐसा प्रतीत होता है कि कदाचित कुछ तो इनमें से हमेशा के लिये यहां से समाप्त हो गये हैं। इसका कारण संभवतः आबू पर्वत पर विकास के नाम पर पिछले 25-30 वर्षों में हुए वनों का विनाश है।

अरावली से पूर्व का क्षेत्र

अरावली पर्वत से पूर्व का क्षेत्र समतल अथवा पठार है, जिसमें अरावली की निचली पहाड़ियां जाल-सा बनाती हैं। यहां की वनस्पति के अध्ययन हेतु निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता हैं।

(अ) भोरत पठार

सिरोही जिले का पूर्वी भाग, अधिकांश उदयपुर जिला तथा डूंगरपुर जिला इस क्षेत्र में आते हैं। विशेष उल्लेखनीय बात है कि पर्वतों पर इस क्षेत्र में उगे वन स्पष्टतः तीन क्षेत्रों में वर्गीकृत किये जा सकते हैं। सबसे उपरी क्षेत्र में **बोस्वेल्लिआ** सेर्राटा (सालर) प्रधानतः मिलता है, तथा इसके अन्य सहवासी हैं—अनोगेइस्सुस **लाटीफोलिआ** (धोकला), लान्नेआ **कोरोमान्डेलिका** (गुरजन), **स्टेर्कुलिआ उरेन्स** (कटेन्ग्ली) आदि। मध्य भाग में अनोगेईस्सुस पेन्डुला (धोकला) प्रधान रूप से मिलता है तथा अन्य सहवासी हैं **आल्बीजिआ ओडोराटीस्सिमा** (काली चरस), **डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलोन** (तेन्दू), **होलोप्टेलेआ इन्टेग्रीफोलिआ** (बन्दर की राखी), **राइटिआ टिंक्टोरिआ** (दुधी) आदि। निचले क्षेत्र में **कास्सिआ आउरीकुलाटा** (आवल), अधिक होता है। इसके अतिरिक्त **आन्नोना स्कुआमोसा** (सीताफल) **बुटेआ मोनोस्पेर्मा** (छोला), **डीक्रोस्टाचिस सिनेरेआ** (गोया खैर), **डिओस्पीरॉस कोर्डीफोलिआ** आदि पौधे पाये जाते हैं। क्षुप तथा अधोक्षुप पौधों के वर्गीकरण पर ऊंचाई का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस क्षेत्र की मुख्य झाड़ियों में **काप्पारिस सेपिआरिआ, डीक्रोफिल्लुम ईन्डिकुम, ग्रेविआ फ्लावेस्सेंस, स्पेर्माडिक्टीऑन सुआवेओलेन्स, ब्रुडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा** आदि हैं।

(ब) बनास बेसिन

उदयपुर जिले का पूर्वी भाग चित्तौड़गढ़, अजमेर तथा सवाईमाधोपुर का पश्चिमी भाग, सम्पूर्ण टौंक जयपुर तथा अलवर जिले का दक्षिणी भाग इस क्षेत्र में हैं। इस क्षेत्र

में पहाड़ों की अधिकतम ऊंचाई 582 मीटर है तथा ये मिश्रित पर्णपाती वनों से ढके हैं जिनमें **अनोगेइस्सुस पेन्डुला** (धोकला) के पेड़ प्रधान रूप से पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त **बाउहीनिआ रासेमोसा, बोस्वेल्लिआ सेर्राटा, काप्पारिस सेपिआरिआ, कास्सिआ फीस्टुला, डीकोस्टाचिस सिनेरेआ, डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलोन, लान्नेआ कोरोमान्डेलिका, राइटिआ टोमेन्टोसा** (दुधी) आदि है।

(स) चप्पन पठार

उदयपुर जिले का दक्षिण-पूर्वी भाग, चित्तौड़गढ़ का दक्षिणी भाग तथा बांसवाड़ा जिला चप्पन पठार का निर्माण करते हैं। पहाड़ियों की ऊंचाई 700 मीटर तक है तथा वन मिश्रित पर्णपाती हैं जिनमें **टेक्टोना ग्रान्डिस** (सागवान) के पेड़ मुख्य रूप से पाये जाते हैं। इन क्षेत्रों में भी ऊंचाई का पौधों के वितरण पर कोई विशेष प्रभाव नहीं देखा गया। पहाड़ों के ढलानों पर सघन वन मिलते हैं जिनमें सागवान के अतिरिक्त **अडीना कोर्डीफोलिआ** (हल्दू), **आएग्ले मार्मेलोस** (बेल), **आल्बीजिआ ओडोराटीस्सिमा** (काली चरस), **हिमेनोडिक्टिऑन, एक्सेल्सुम, मधूका, लोंगीफोलिआ** (महुआ), **मित्रागिना पार्वीफोलिआ** (कलम), **टर्मिनालिआ अर्जुना** (अर्जुन), **डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस** (बांस), **राइटिआ टिक्टोरिआ** आदि मुख्य रूप रूप से पाये जाते हैं। झाड़ियों में **निक्टान्थेस आर्बोरट्रिसट्रिस** (हरसिंगार) सबसे अधिक मिलता है।

(द) डेकन पठार

राजस्थान का दक्षिण-पूर्वी भाग जिसमें कोटा, बूंदी तथा झालावाड़ जिले सम्मिलित हैं, डेकन पठार कहलाते हैं। इस क्षेत्र में अरावली तथा विन्ध्याचल पर्वतों की शृंखलायें फैली हुई हैं। पहाड़ों पर उगने वाले वन पर्णपाती हैं जिनमें **अनोगेइस्सुस पेन्डुला** आधार से चोटी तक प्रधान रूप से पाया जाता है। इसके अतिरिक्त **अडीना कोर्डीफोलिआ** (हल्दू), **आएग्ले मार्मेलोस** (बेल), **बोस्वेल्लिआ सेर्राटा** (सालर), **बुकनानिआ लन्जान** (अचार), **कास्सिआ फीस्टुला** (करमाला), **डेन्ड्रोकालमुस स्ट्रिक्टुस** (बॉस) आदि निछले भाग में अधिक पाये जाते हैं। मध्य भाग में **लार्मेरस्ट्रोएमिआ पार्वीफ्लोरा, लान्नेआ कोरोमान्डेलिका, स्टेर्कुलिआ उरेन्स, अकासिआ काटेचू** (कत्था) आदि मुख्य रूप से मिलते हैं।

राजस्थान के कोटा जिले में किशनगढ़ के पास समतल क्षेत्र पर सागवान (**टेक्टोना ग्रान्डिस**) के सघन वन उपलब्ध हैं तथा इसी क्षेत्र में सीतावाड़ी के पास अर्द्ध उपोष्ण सदापर्णी वन वनस्पति की विविधता दर्शाते हैं। इस वन में **अम्पेलोसीस्सुस लाटीफोलिआ, बोम्बाक्स सेइबा** (सैमल), **कारीस्सा कोन्गेस्टा** (करौदा), **सीस्सुस रेपान्डा, काइराटिआ ट्रिफोलिआ, कॉर्डिआ, डिचोटोमा, फीकुस विरेन्स** (पिलखन), **हिप्टागे बेंगालेंसिस** (मधुलता), **इक्सोरा आर्बोरेआ, मान्गीफेरा, ईन्डिका** (आम), **श्लेइशेरा ओलेओसा** (कुसुम), **सीजीजिउम कूमिनी** (जामुन), वान्डा **टेस्सलाटा** आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं।

(इ) विन्ध्याचल की कगार भूमि

ये बनास और चम्बल नदी के बीच का क्षेत्र है जिसमें भरतपुर, धौलपुर तथा सवाई-माधोपुर जिले सम्मिलित हैं, इस क्षेत्र का अधिकतर भाग उपजाऊ तथा कृषि योग्य है। कुछ भाग कन्दरायुक्त तथा बेकार हैं। पेड़ तथा झाड़ियां प्रायः दूर-दूर हैं। सवाईमाधोपुर जिले का अधिकांश भाग मिश्रित पर्णपाती वनों से ढका है। इस क्षेत्र के उल्लेखनीय स्थान केवला देव घाना बर्ड नेशनल पार्क (भरतपुर) तथा सवाईमाधोपुर जिले में 'रणथम्भौर नेशनल पार्क है। घाना नेशनल पार्क लगभग 52 वर्ग कि० मी० क्षेत्र में फैला है तथा इसके अधिकांश भाग में झील है। वनस्पति की अपेक्षा भ्रमणकारी चिड़ियों का जो अफगानिस्तान, तिब्बत, साइबेरिया, चीन आदि से प्रतिवर्ष इस स्थान पर आती हैं, अधिक महत्व है। साइबेरिया का सारस विशेषरूप से उल्लेखनीय है जो साईबेरिया से सीधा भारत में केवल भरतपुर ही आता है। **अडीना कोर्डिफोलिआ, अजाडीराक्टा ईन्डिका** (नीम), **डिओस्पिरॉस मोन्टाना, मिट्रागिना पार्वीफोलिआ** (कलम), **पिथेसेल्लोबिउम डुल्से** (जंगल जलेबी), **फेनिक्स सिल्वेस्ट्रिस** (खजूर), **जिजीफुस माउरीटिआना** (बेर) आदि पेड़ों पर बसी भ्रमणकारी चिड़िया मनोहर दृश्य प्रस्तुत करती हैं। इसी भांति रणथम्भौर वन्य जीव अभयारण्य (बाघ परियोजना) अपनी प्राकृतिक स्थिति, वन्य जीवों की प्रचुर संख्या तथा सघन मिश्रित पर्णपाती वनों के कारण पर्यटकों तथा वैज्ञानिकों के आकर्षण का केन्द्र बनता जा रहा है। परियोजना क्षेत्र में मुख्यतः टाइगर, सांभर, चीतल, नीलगाय, चिंकारा, जंगली सुअर, रीछ, बघेरा, लंगूर आदि के अतिरिक्त सैकड़ों प्रकार के पक्षी स्वच्छंद विचरण करते दिखते हैं।

(ई) उत्तर पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र

यह क्षेत्र अरावली पर्वत की उत्तर-दक्षिण दिशा में फैली लगभग समानान्तर शृंखलाओं से बना है तथा अलवर जिले में है। पहाड़ों पर उगे मिश्रित पर्णपाती वन स्पष्टतः तीन क्षेत्रों में बांटे जा सकते हैं। सबसे ऊपर **बोस्वेलिआ सेर्राटा** (सालर) प्रधान रूप से मिलता है। मध्य क्षेत्र में **अनोगेइसुस पेंडुला** प्रमुख है तथा आधार पर **अकासिआ नीलोटिका** (बबूल), **डीकोस्टाचिस सिनेरेआ, बुटेआ मोनोस्पेर्मा** (पलास) आदि पेड़ विशेष रूप से मिलते हैं। सबसे सघन वन सिरस्का में हैं जहां बाघ परियोजना स्थापित की गई है। इस क्षेत्र में सांभर, चीतल, नीलगाय, चौसिंगा, चिन्कारा, जंगली बिल्ली तथा सूअर, सियार, लगूंर आदि पशु भी स्वतन्त्र रूप से विचरण करते देखे जा सकते हैं।

राजस्थान राज्य की वनस्पति का अध्ययन करते समय ऐसा प्रतीत हुआ कि यहां की वन संपदा बड़ी तेजी से नष्ट हो रही है। अधिकांश पहाड़ियां नंगी हो चुकी हैं। वर्षा के पानी से अत्याधिक कटाव के कारण अच्छी उपजाऊ तथा समतल भूमि बीहड़ लगती है। बांसवाड़ा क्षेत्र जो पहले बांसों के लिये प्रसिद्ध था, अब बांसविहीन हो गया है। अधिकांश स्थानों पर मौलिक वनस्पति नष्ट होती जा रही है तथा पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। इस क्षेत्र की अधिकांश जन संख्या ग्रामीण तथा आदिवासी है जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिये वनस्पति पर निर्भर है।

कृषि योग्य तथा ईंधन के लिये वनों की निरन्तर कटाई के कारण इस क्षेत्र में प्राकृतिक संतुलन समाप्त होता जा रहा है तथा अगर इसी तेजी से पर्यावरण दूषित होता रहा तथा हमारे वन कटते रहे तो शायद वह दिन दूर नहीं जब हम वन संपदा के लिये न केवल तरस जायेंगे अपितु पहले से मौजूद रेगिस्तान को हरा-भरा करने की हमारी योजना चूर हो जायेगी। अतः वनों का विकास और पर्यावरण की रक्षा आज की सबसे अधिक ज्वलंत समस्या एवं आवश्यकता है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर राजस्थान राज्य में कई स्थानों पर अभयारण्य के रूप में सुरक्षित क्षेत्र घोषित किये गये हैं जिससे नष्ट होते जीव तथा वनस्पति को बचाया जा सके। राजस्थान के अन्य अभयारण्य निम्न हैं :—

स्थान	जिला	क्षेत्रफल वर्ग कि० मी०
दरा	कोटा	201
जवाहर सागर	कोटा	100
राष्ट्रीय चम्बल	कोटा	280
कुम्भलगढ़	उदयपुर	500
जैसमन्द	उदयपुर	52
माऊंट आबू	सिरोही	112
सीता माता	चित्तौड़गढ़	500
वन विहार	धौलपुर	59
ताल चप्पर	चुरू	8
रामगढ़ विषधारी	बूंदी	307
जमवा रामगढ़	जयपुर	300
भैंसरोडगढ़	चित्तौड़गढ़	

परन्तु ये अभयारण्य आज के वातावरण में जीव तथा वनस्पति के संरक्षण के लिये समुचित नहीं कहे जा सकते। इसके लिये आवश्यक है जनजागृति। हम सबका परम कर्तव्य है कि नष्ट होती वनस्पति तथा जीवों की रक्षा करें।

8. उत्तर प्रदेश के वन और वनस्पति

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

भारत के सीमान्त प्रदेशों में प्रमुख 23° 52' से 31 18' उत्तर तथा 48° 39' पू० की भौगोलिक सीमाओं के बीच 2,94,413 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तृत एवं 11,08,85,874 जनसंख्या वाला प्रदेश उत्तर प्रदेश अनेक प्रकार के प्राकृतिक सौन्दर्य और अपार प्राकृतिक सम्पदा से परिपूर्ण है। इसके उत्तर में तिब्बत और नेपाल की सीमाओं को छूती हुई हिमालय की पर्वत श्रेणियां तथा दक्षिण में विन्ध्य पर्वत माला तथा दोनों के मध्य गंगा यमुना का विशाल मैदान है। विभिन्न युगों की भिन्न-भिन्न पहाड़ पहाड़ियों के पत्थरों की विविधता के कारण ही इस प्रदेश में विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है। ऊंचाई, अक्षांश और देशान्तरों के अन्तर के कारण, प्रदेश की जलवायु में भी विविधता है। जलवायु एवं मिट्टी की इन्हीं विभिन्नताओं के फलस्वरूप प्रदेश में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियां पाई जाती हैं।

सम्पूर्ण प्रदेश तीन प्राकृतिक भागों में बंटा है। उत्तर में हिमालय क्षेत्र में अनेकों ऊंची-ऊंची चोटियां हैं जो लगभग 7817 मीटर तक ऊंची हैं। इस क्षेत्र में 1500 मीटर की ऊंचाई तक प्रचुर वर्षा होती है। इसके ऊपर जाने पर क्रमशः तापक्रम कम होता जाता है। पर्वतों की चोटियों का क्षेत्र तो पूरे वर्ष बर्फ से ढका रहता है तथा इन्हीं हिमाच्छादित चोटियों से गंगा, यमुना, रामगंगा इत्यादि नदियां निकलती हैं। इस पर्वत श्रेणी के निचले भागों में अत्यधिक नमी होने के कारण जंगल ही जंगल हैं। चारागाह तो लगभग हिमरेखा तक फैले हैं। चकराता, अल्मोड़ा, गढ़वाल, टिहरी-गढ़वाल, पिथौरागढ़, चमोली, उत्तर काशी जिले एवं देहरादून तथा नैनीताल जिलों के कुछ भाग इसी क्षेत्र में आते हैं। प्रदेश का दक्षिणी भाग जिसमें झांसी, जालौन, हमीरपुर, बांदा जिले तथा इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों के कुछ भाग आते हैं, वस्तुतः दकन के पठार का फैलाव है।

यद्यपि उत्तर प्रदेश की जलवायु मुख्यतया उष्ण प्रधान शीतोष्ण कटिबंध है किन्तु समुद्र तल से विभिन्न स्थानों की विभिन्न ऊंचाई के कारण भिन्न-भिन्न स्थानों पर जलवायु भिन्न हो जाती है। घाटियों के अतिरिक्त हिमालय के पूरे क्षेत्र में दिसम्बर और मार्च के बीच में बर्फ गिरती है जिससे सम्पूर्ण क्षेत्र में ठंडक रहती है। सहारनपुर से देवरिया तक का उपपर्वतीय क्षेत्र नम है। नीचे गंगा के मैदानी भाग में तापमान सामान्यतः जाड़ों में 12.5° से लेकर 27.5° सेण्टीग्रेड तक हो जाता है। परन्तु कभी-कभी 3.5° का न्यूनतम एवं 43° सेण्टीग्रेड अधिकतम भी हो जाता है। दक्षिण की पहाड़ियां एवं पठार, बंजर व पथरीली जमीन के कारण गर्मियों में बहुत गर्म एवं जाड़ों में बहुत ठंडी हो जाती है।

उत्तरी पर्वतीय क्षेत्रों को छोड़कर राज्य के प्रमुख भागों में वर्षा का वार्षिक औसत 94 सेण्टीमीटर होता है। सबसे अधिक वर्षा 253.7-269 सेण्टीमीटर नैनीताल, देहरादून और गढ़वाल जिले में होती है। मैदानी भागों में सबसे अधिक वर्षा गोरखपुर (औसतन 184.7 सेण्टीमीटर) में, तथा सबसे कम मथुरा में (54.4 सेण्टीमीटर) होती है।

इस प्रदेश में वनों के अन्तर्गत लगभग 51,300 वर्ग कि० मी० क्षेत्र है जो प्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 17.42 प्रतिशत है जबकि औसत 33.3 प्रतिशत होना चाहिए। एक आंकड़े के अनुसार 1952 से 1973 के बीच में लगभग 2,15,000 हेक्टेअर वन क्षेत्र का ह्रास हुआ है। पहले इस प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में प्राकृतिक वनस्पति बहुत समृद्ध थी किन्तु तीव्र और व्यापक उपयोग के कारण दिन पर दिन इसका ह्रास होता जा रहा है। मथुरा से कदम्ब (**आन्थोसेफालुस कदम्बा**), करील (**कप्पारिस आफिल्ला**) व कृष्णवट (**फीकुस कृष्णाए**) का लोप इसके उदाहरण हैं। मैदानों में इस समय वन बहुत छोटे-छोटे भागों में बचे हैं किन्तु पर्वतीय पट्टियों में मनमाने ढंग से पेड़ों की कटाई के बावजूद अभी भी वनों की व्यापकता संतोषजनक है। मोटे तौर पर प्रदेश की वनस्पति सम्पदा को निम्न 6 श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

उप हिमाद्रि तथा हिमाद्रि वन

प्रदेश के 2900 से 3500 मीटर ऊंचाई के बीच के क्षेत्र में इस श्रेणी की वनस्पतियां पाई जाती हैं। इन वनों में जूनियर की छोटी झाड़ियां; फर (**आबिएस पिन्डरोव**) हनीसकल (**लोनीसेरा** की जाति), **आर्टेमीसिआ**, **बेटुला**, **र्‌होडोडेंड्रोन** तथा बर्च के पेड़ पाये जाते हैं।

हिमालय के नम शीतोष्ण वन

इस प्रकार के वन 1600 से 2900 मीटर ऊंचाई के बीच पाये जाते हैं। इन वनों में 'कोनीफेरस' एवं अन्य जातियों के सदाबहार वृक्ष पाये जाते हैं जिन पर मॉस एवं पर्णांग उगे रहते हैं। ऐसे वनों की महत्त्वपूर्ण वनस्पतियां है। देवदार (**सेड्रस देओदारा**), स्प्रूस (**पीसेआ स्मिथिआना**), सिल्वरफर ओक (**कुएरकुस** की जाति) बीच तथा बर्च (**बेटुला ऊटिलिस**) आदि। इनके अतिरिक्त पाप्लर (**पोपुलुस**), एल्म (**उल्मुस**), **र्‌होडोडेंड्रोन**, चेस्टनट, अखरोट (**जुग्लान्स रेजिआ**) तथा मैपल (**आसेर**) इत्यादि के वृक्ष भी उगते हैं।

उपोष्ण कटिबंधीय चीड़ के वन

निम्न हिमालय के निचले क्षेत्रों में 'नम शीतोष्ण वनों' तथा 'नम उष्ण कटिबंधीय पर्णपाती वनों' के मध्य के इन वनों में चीड़ (**पीनुस**) के वृक्षों का बहुतायत होता है परन्तु साथ ही साथ अन्य वृक्ष भी पाये जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय नम पर्णपाती वन

इस प्रकार के वन तराई के अधिकांश क्षेत्रों में, जहां वार्षिक वर्षा 100-150 सेण्टीमीटर,

औसत तापमान 26-27° सेण्टीग्रेड तथा हवा में नमी 60-80 प्रतिशत होती है, पाये जाते हैं। इन वनों के सबसे ऊपर के स्तर में अधिकांशतः पर्णपाती जाति और उसके निचले भाग में सदा-बहार किस्म के वृक्ष, झाड़ियां, बांस (डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस) के झुरमुट, आरोही पौधे तथा बेंत (कालामुस) आदि होते हैं। महुआ (मधूका लोन्गीफोलिआ प्रभेद लाटीफोलिआ) प्रभेद सेमल (बोम्बाक्स मालाबारिकुम), ढाक (बुटेआ मोनोस्पेर्मा), आमला (एम्ब्लिकाआफ्फीसिनालिस), जामुन (सीजीजिऊम कूमिनी) इत्यादि इन वनों के प्रमुख वृक्ष हैं।

उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती वन

इस प्रकार के वन प्रदेश के पूर्व मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इन वनों में सूर्य की किरणें धरती तक पहुंच पाती हैं। अतः इनमें झाड़ियों एवं घासों का पूर्ण विकास होता है। ऐसे वनों के प्रमुख वृक्ष हैं साल (शोरेआ रोबुस्टा) पलास (बुटेआ मोनोस्पेर्मा), अमलतास (कास्सीआ फीस्टुला) बेल (आएग्ले मार्मेलोस) अंजीर (फीकुस कारिका) आदि। साथ ही साथ नीम (अजाडीराक्टा ईन्डिका), पीपल (फीकुस रेलिजिओसा), शीशम (डाल्बेर्जिआ सिस्सू) आम (माग्गीफेरा ईन्डिका) जामुन (सीजीजिउम कूमिन्नी), महुआ (मधूका लोन्गीफोलिआ प्रभेद लाटीफोलिआ) बबूल (अकासिआ नीलोटिका) और इमली (टामारिन्डुस ईन्डिका) आदि के वृक्ष भी पाये जाते है।

उष्ण कटिबंधीय कंटीली झाड़ियां

प्रदेश के दक्षिणी भाग में इस श्रेणी के वनों का बाहुल्य है। इस क्षेत्र में वर्षा (50-75 से० मी०) तथा हवा में नमी (47 प्रतिशत) की कमी के कारण छोटे-छोटे कंटीले वृक्ष जैसे बबूल, कंटीले लिग्युम्स एवं एउफोर्बिआ की जातियां तथा बरसाती घासें पाई जाती हैं। इन मरूद्भिदी (जीरोफिटिक) वनों के महत्वपूर्ण वृक्ष हैं कत्था (अकासिआ काटेचू) सिरस (आल्बीजिआ), फुलाई (अकासिआ मोरपेस्टा), धामन (ग्रेविआ टीलिआएफोलिआ) रेउनझा (अकासिआ लेउकोफ्लोएआ), थोर तथा नीम (अजाडीराक्टा ईन्डिका) आदि।

उत्तर प्रदेश में वनों के कम क्षेत्रफल के बावजूद इन जंगलों में कितने ही विश्व कीर्तिमान स्थापित करने वाले वृक्ष भी है, उदाहरणार्थ, टेहरी गढ़वाल में 704 वर्ष पुराना देवदार (सेड्रुस देओदारा) चकराता में 327 वर्ष पुराना चीड़ (पीनुस) टोंस प्रखण्ड में 64.9 मीटर ऊंचा एवं 808 से० मी० मोटा देवदार, हल्दवानी में 51.2 मीटर ऊंचा तथा 264 से० मी० मोटा साल वृक्ष (शोरेआ रोबुस्टा), गढ़वाल में 64 मीटर ऊंचा तथा 732 से० मी० मोटा स्प्रूस (पीसेआ स्मिथिआना), 41.4 मीटर ऊंचा 734 से० मीटर मोटा साल, एवं 65.5 मीटर ऊंचा तथा 411 से० मी० मोटा चीड़ (पीनुस राक्सबर्घिई) तथा प्रसिद्ध फूलों की घाटी भी इसी क्षेत्र में है परन्तु यदि वनों का निरन्तर विध्वंस जारी रहा तो क्या इस तरह के कीर्तिमान वाले वृक्ष पुनः पनप पाएंगे ? प्रदेश के मैदानी क्षेत्रों में जहां कभी घने जंगल थे, आज नंगे ऊसर दिखते हैं। इन तथ्यों पर यदि हम अभी ही ध्यान देंगे तो सैकड़ों वर्षों में यह क्षति पूरी हो

पायेगी, क्योंकि वन, मात्र वृक्षों की फसल तो है नहीं। इनके पूर्ण विकास अर्थात् उपरिवन, अधोवन, अधोवृद्धि (झाड़ियां) और भूमि आवरण (घासें, फर्न (पर्णांग), काई, प्रहरिता, (लिवर्ट्स) और कवक इत्यादि के समुचित एवं सन्तुलित विकास को विभिन्न श्रेणियों में सैकड़ों हजारों वर्ष लगते हैं।

देहरादून एवं इलाहाबाद में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के क्षेत्रीय कार्यालयों की स्थापना के पश्चात् प्रदेश की वनस्पतियों का विस्तारपूर्वक सर्वेक्षण संभव हो सका है। इसके फलस्वरूप केन्द्रीय राष्ट्रीय उद्भिजालय हावड़ा, इलाहाबाद तथा देहरादून स्थित उद्भिजालयों (हरबेरिया) में इस क्षेत्र के पौधों के नमूनों का विशाल संग्रह तैयार हो गया है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के इस कार्य में राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ तथा वन अनुसंधान संस्थान देहरादून तथा विभिन्न शिक्षण संस्थानों एवं उनमें स्थित उद्भिजालयों का भी अत्यन्त सराहनीय योगदान है। इन सभी संस्थाओं के संयुक्त प्रयास से देहरादून, नैनीताल, मसूरी, पीलीभीत, खीरी, हमीरपुर, टेहरी-गढ़वाल, बुलन्दशहर, अलीगढ़, बहराईच, लखनऊ, इलाहाबाद, जौनपुर, मिर्जापुर, आजमगढ़, सुल्तानपुर, एवं गोरखपुर आदि जनपदों में पाई जाने वाली समस्त वनस्पतियों (फ्लोरा) का अध्ययन पूर्ण हो चुका है। इनके अतिरिक्त कार्बेट नेशनल पार्क आदि जैसे छोटे परन्तु महत्वपूर्ण स्थानों के साथ ही साथ नंदा देवी जैसी दुर्गम पर्वत चोटियों व आस-पास के क्षेत्र में पाए जाने वाली वनस्पतियों का भी अध्ययन पूरा किया जा चुका है।

वन किसी देश या प्रदेश की अत्यन्त बहुमूल्य प्राकृतिक संपदा है तथा ये अनादिकाल से मानवएवं उसकी सभ्यता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़े रहे हैं। इनसे मानव के लिए मात्र आश्रय, भोजन, वस्त्र, ईंधन, औषधियां इत्यादि अनेक दैनिक जीवन की मूलभूत आवश्यकताएं ही नहीं पूरी होती है वरन मिट्टी के कटाव, बाढ़ इत्यादि को रोककर, वातावरण को सन्तुलित रखकर, वन इस धरती पर हमारे अस्तित्व को बनाए हुए हैं। वस्तुतः वन ही जीवन का आधार हैं। परन्तु आधुनिक सभ्यता के बढ़ते कदम एवं दिन प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या के दबाव से आज वन घटते जा रहे हैं। वृक्षों की अविचारपूर्ण कटाई तथा अन्य प्राकृतवास में अचानक परिवर्तन से मात्र वनों पर ही नहीं सारे परितन्त्र पर प्रभाव पड़ता है। डा० पीटर रोवन के अनुसार पौधों की प्रति लुप्त होती जाति के साथ ही उस पर आश्रित 10 अन्य जीवों की जातियों का भी विनाश हो जाता है। आज यही वन तथा इन पर आश्रित मूक पशु पक्षी अपने अगणित स्वरों में अपनी सुरक्षा एवं बचाव की पुकार कर रहे हैं। हमें इनकी करुण पुकार को मात्र इनके लिए ही नहीं वरन अपने स्वयं के अस्तित्व की रक्षा के लिए भी सुनना होगा।

9. बिहार, उड़ीसा व पश्चिम बंगाल के मैदानी क्षेत्र के वन और वनस्पति

सर्वेश कुमार

बिहार, उड़ीसा व पश्चिम बंगाल के प्रान्त देश के पूर्वी भाग में स्थित हैं। ये तीनों ही प्रान्त एक दूसरे से जुड़े हुए हैं किन्तु भौगोलिक स्थिति एव जलवायु की विभिन्नता के कारण यहां की वनस्पति एक सी नहीं है। यद्यपि मैदानी क्षेत्रों के वन और वनस्पति लगभग समान प्रकार के ही हैं किन्तु पहाड़ी क्षेत्रों व समुद्र तट के निकट की वनस्पति में पर्याप्त भिन्नता है। अतः इन सभी प्रान्तों की वनस्पति का वर्णन एक शीर्षक के अन्तर्गत होते हुए भी पृथक-पृथक भागों में प्रस्तुत करना अधिक उचित रहेगा।

बिहार

बिहार राज्य उत्तर प्रदेश के पूर्व में 23° 48′ तथा 27° 31′ उत्तर से लेकर 83° 21′ तथा 88° 32′ पूर्व में स्थित है। इसका क्षेत्रफल 1,72,000 वर्ग किलोमीटर है जिसका 8,0000 वर्ग किलो मीटर उत्तरी भाग गंगा द्वारा बहाकर लाई गई बालुई मिट्टी से तथा शेष 90,000 वर्ग किलो मीटर दक्षिणी भाग कड़ी चट्टान जैसा है। यह प्रान्त उत्तर में हिमालय की पर्वतश्रेणियों, दक्षिण में उड़ीसा, पूर्व में पश्चिम बंगाल तथा पश्चिम में उत्तर प्रदेश व मध्य प्रदेश के कुछ भागों से जुड़ा हुआ है। गंगा नदी ने पूरे प्रान्त को दो हिस्सों में विभाजित सा कर दिया है। राज्य का मध्यवर्ती क्षेत्र गंगा का मैदान कहलाता है। उत्तरी बिहार व दक्षिण के कुछ भागों में गंगा द्वारा बहाकर लाई गई बालुई मिट्टी 'कछार' है जबकि दक्षिण के छोटा-नागपुर पठारी क्षेत्र की मिट्टी चट्टानी तथा लाल रंग की है। राज्य की जलवायु सामान्य मानसूनी जलवायु है तथा वर्षा का औसत 140 सें० मी० है।

बिहार की वनस्पति के अध्ययन का इतिहास एक शताब्दी से भी कुछ अधिक पुराना है। सर जे० डी० हुकर ने सन् 1848 में पारसनाथ की पहाड़ियों में पौधों के सर्वेक्षण व संग्रह का प्रथम सफल प्रयास किया। इसके कुछ समय बाद ही बाल ने सन् 1869 में मानभूम से पौधों का संग्रह किया तथा इस क्षेत्र की वनस्पति पर एक महत्वपूर्ण विवरण भी तैयार किया। हेन्स (1921-25) ने पुराने सर्वेक्षणों व स्वयं के संग्रह व अध्ययन के आधार पर बिहार एवं उड़ीसा राज्य की वनस्पति का विवरण अपनी एक पुस्तक 'बाटेनी आफ बिहार एन्ड उड़ीसा' में प्रस्तुत किया है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने भी बिहार की वनस्पति के सर्वेक्षण संग्रह व अध्ययन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है व

अनेक पादप वंशों व जातियों को पहली बार प्रान्त से रिकार्ड किया है। इन वैज्ञानिकों में श्रीवास्तव, मुखर्जी, वर्मा, पानिग्रही, घोषाश्री तथा विजय कृष्णा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बिहार राज्य की वनस्पति को मुख्यतया पाँच भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. सदाबहार वन
2. शुष्क पर्णपाती वन
3. कण्टकीय क्षुप वाले वन
4. बेकार पड़ी भूमि पर उगने वाली वनस्पति
5. जलीय वनस्पति

सदाबहार वन पूर्णिया जिले के उत्तरी भाग, चम्पारन की 'सरेयमन झील के पूर्वी भाग तथा दक्षिणी बिहार के हजारीबाग व सिंहभूम जिलों में पाये जाते हैं। इनवनों में सदाबहार वृक्षों का बाहुल्य होता है यद्यपि वनों के बाहरी भागों में कभी-कभी पर्णपाती वृक्ष तथा क्षुप भी उगते हुए दिखाई देते हैं। इन वनों में पाये जाने वाले वृक्षों में **डिलेनिया पेण्टागिना, शोरेआ रोबुस्टा, स्टेरकुलिया हेर्नबीफोलिया, मकारंगा पेल्टाटा, बिस्चोफिआ जावानिका, स्ट्रेब्लुस आस्पेर, एलाएओकार्पुस सेरॉटुस, लिट्सी एआ, सालिसीफोलिआ मीको-मेलुम पूबेस्सेन्स टेर्मीनालिआ टोमेन्टोसा** एवं **फीकुस नेर्वोसा** आदि हैं। इसके अतिरिक्त **ग्नेटुम स्कान्डेन्स उवारिआ हामिल्टोनिई,** एवं **सीक्लोस्टेमोन आस्सामीकुस** आदि सिंहभूम जिले के सारंदा प्रभाग में मिलते हैं। जलाशयों के किनारे **सिज़ीजिउम कूमिनिई** के वृक्ष उगते देखे जा सकते हैं। झाड़ियों में **ग्लोकीडिओन लान्सेओलारिउम, होमोनोइआ रिपारिआ, मेलान्थेसा र्हाम्नोइडेस, प० फ्लेमिन्जिआ स्ट्रिक्टा, कोलेब्रूकेआ ओपोसिटीफोलिआ, कोफेआ बेन्गालेन्सिस** एवं **मुर्राया एक्सोटिका** आदि सामान्यतया पाई जाती है शाकीय एवं आरोही पौधों में **आजेराटुम कोनीज़ोइडेस जुस्टीसिआ बेटोनिका, पोलीगोनुम प्लेबेजुम, सोडा बेटोनिसीको-लिआ, पोडॉफिलुम ईन्डिका, कुरकुलीगो रेकुर्वाटा, एन्टाडा स्कान्डेन्स, बाउहीनिआ वाह्लिई, बुटेआ** एवं **डिओस्कोरेआ** आदि मिलते है। इसके अतिरिक्त आर्किड की विभिन्न **जातियां-वान्डा टेसेल्लाटा, फोलीडोटा आर्टीकुलाटा सिम्बीडिउम,** भी कई वृक्षों पर उगती देखी जा सकती हैं। इन वनों में **टेक्टारिआ, लीगाडिउम** यथा **नेफ्रोलेपिस** आदि पर्णाग भी मिल जाते हैं।

शुष्क पर्णपाती वन अधिकतर दक्षिणी बिहार में पालामऊ, राँची व राजमहल पहाड़ियों पर तथा उत्तरी बिहार के चम्पारन जिले के कुछ भागों में मिलते हैं। साल

(शोरेआ रोबुस्टा) के वृक्ष इन वनो के मुख्य अवयव हैं । अन्य सामान्य वृक्षों में मालोटुस फिलोप्पेन्सिस, स्ट्रेब्लुस आस्पेर, मिश्रागिना पार्वीफोलिआ, टेक्टोना ग्रान्डिस, डिओस्पोरॉस मेलानोक्सीलोन, कोर्डेलिआ स्टीपुलारिस, कास्सीआ फीस्टुला, एवं स्पोन्डीआस पीन्नाटा आदि पाये जाते हैं । इन वनों मे कोलेब्रूकेआ ओपोसिटीफोलिआ, काल्लीकार्पा माक्रोफिल्ला, मीमोसा रूबीकाउलिस, हेलीक्टेरेस ईसोरा, फ्लेमिन्जिआ चप्पार, निक्टान्थेस ऑर्बोरट्रिस्टिस, सिम्प्लोकास रासेमोसा एवं आन्टीडेस्मा डिआन्ड्रुम आदि झाड़ियाँ भी मिलती हैं ।

कण्टकीय क्षुप वाले वन मुख्यत: भागलपुर व गया जिलों में मिलते हैं । काँटों वाली छोटी-छोटी झाड़ियाँ जो भूमि पर सघन वनों का निर्माण नही कर पातीं इनका मुख्य लक्षण हैं । इनमें पाये जाने वाले पादपों में अकासिआ कोन्सिन्ना, साएसलपीनिआ बोन्डुक, जिजीफुस माउरिटीआना, काप्पारिस सेपिआरिआ, फ्लेकूर्टिआ रामोन्टची एवं आएग्ले मार्मेलोस आदि मुख्य है । अन्य छोटी-२ झाड़ियो में एकेकान्टोपुस स्काबेर· बार्लेरिआ क्रिस्टाटा, सीडा आकुटा, आन्ड्रोग्राफीस पानीकुलाटा आदि मिलती है ।

बेकार पड़ी भूमि पर उगने वाली वनस्पति में कास्सीआ टोरा, का॰ ओक्सीडेन्टालिस, सीडा र्‌होम्बीफोलिआ, डोडोनाएआ विस्कोसा, कालोट्रोपिस जिगान्टेआ, विटेक्स नेगुण्डो, आर्गेमोने मेक्सिकाना एवं स्टाचीटाफेटा ईन्डिका आदि पौधे सामान्यतया दिखाई पड़ जाते हैं पालामऊ व राँची जिलों में वन विभाग की ओर से 'ग्रामीण विकास कार्यक्रम' के अन्तर्गत अगावे सीसालाना नामक रेशे प्रदान करने वाले पौधे भी लगवाये जा रहे हैं जिससे कि स्थानीय निवासियों की रोजगार की व्यवस्था की जा सके ।

बिहार राज्य की झीलों, पोखरों व अन्य जलाशयों में नीम्फाएआ के अतिरिक्त हीड्रिल्ला वेर्टीसिल्लाटा, मार्सेलिआ मिनूटा, एवं लिम्नेनिआ भनागालिस, एइकोर्निआ क्रास्सीपेस क्रास्सीपेप आदि जलीय पौधे उगते हुए देखे जा सकते हैं । नालन्दा जिले की 'पावापुरी झील' यहाँ का एक प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है । जिनमें उगते हुए कमल झील की सुन्दरता को और भी बढ़ा देते हैं ।

उड़ीसा

उड़ीसा राज्य बिहार के दक्षिण में 17°49° तथा 22°34' उत्तर से लेकर 81°27' तथा 87°29' पूर्व तक फैला हुआ है । प्रान्त का कुल क्षेत्रफल 1,55,707 वर्ग किलामीटर है जिसके लगभग 43 प्रतिशत भाग में वन है । इस प्रान्त के मैदानी भाग की वनस्पति बिहार से काफी मिलती जुलती है व कई वैज्ञानिकों ने दोनों ही प्रान्तों की वनस्पति का एक साथ ही अध्ययन भी किया है किन्तु इसके पूर्वी भाग में समुद्र होने के कारण तथा जलवायु व मिट्टी के अन्तर के कारण वनस्पति में भिन्नता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है । यहाँ केवल भिन्न वनस्पति वाले क्षेत्रों का ही वर्णन किया जा रहा है ।

उड़ीसा की वनस्पति का सर्वप्रथम विस्तृत विवरण हेन्स द्वारा रचित पुस्तक "बॉटेनी ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा" में मिलता है। मूनी ने सन् 1950 में एक पूरक पत्र मेंहेन्स द्वारा उद्धृत की गई पादप जातियों के अतिरिक्त अन्य पादप वंशों व जातियों का उल्लेख किया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन के बाद पानिग्रही एवं उनके सहयोगियों ने सन् 1961 में उड़ीसा प्रान्त के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा किया व वनस्पति के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जिसके परिणाम स्वरूप 838 ऐसी पादप जातियों के बारे में पता चला जिनका हिन्स तथा मूनी के लेखों में कोई उल्लेख नहीं है। बाद के वैज्ञानिकों में राव, चौधरी, नारायनस्वामी, सक्सेना, कपूर, मिश्रा व दुबे आदि के नाम उल्लेखनीय हैं जिन्होंने उड़ीसा प्रान्त की वनस्पति के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान किया है।

उड़ीसा में पाये जाने वाले वनों को निम्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. उत्तरी उष्णकटिबन्धीय अर्द्ध सदाबहार वन
2. उत्तरी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन
3. दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन
4. दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय नम पर्णपाती वन
5. उत्तरी उष्णकटिबन्धीय नम पर्णपाती वन

उपरोक्त सभी प्रकार के वनों का वर्णन पहले किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त समुद्री किनारे पर स्थित होने के कारण विभिन्न समुद्री वनस्पतियां व साल के वन भी यहां मिलते हैं। समुद्रतटीय वनस्पति में फेनिक्स सिल्वेस्ट्रिस, बोरासुस फ्लाबेल्लीफेर, कोकोस नुसीफ़ेरा, पाण्डानुस टेक्टोरिउस एवं ओपुंटिया की जातियां आदि मिलती हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी को रोके रखने में सुक्षमकुछ पादप जातियां जैसे इपोमोएआ बेसकाप्राए, स्पिनीफेक्स स्क्वार्रोसुस, सीपेरस आरेनारिउस आदि भी पाई जाती हैं।

वेला-वन, बैतरनी नदी के किनारे से लेकर तल्लंग नहर तक मिलते हैं। इनमें कुछ विशिष्ट वृक्ष एक्सकोएकारिआ अगाल्लोचा, अकान्थुस इलीसिफोलिउस आदि हैं। र्‌हीज़ोफोरा मुक्रोनाटा की स्टिल्ट जड़ें महानदी के मुहाने में फैली हुई देखी जा सकती हैं। पाम व नारियल की सघन वृद्धि चक्रवात के दबाव को सहन करने में पूर्णतया सक्षम प्रतीत होती हैं। मेन्ग्रोव वनस्पति में फेनिक्स पालुडोसा, आकोस्टीकुम आउरेउम र्‌हीज़ोफोरा मुक्रोनाटा, सेरिओप्स टाक्सबर्घिआना ब्रुगुइएरा कोन्जुगाटा, हेरीटिएरा मीनोर आदि मुख्यतयामिलती हैं।

पश्चिमी बंगाल का मैदानी क्षेत्र

भौगोलिक स्थिति के आधार पर प० बंगाल राज्य को दो मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1) हिमालय का पर्वतीय क्षेत्र
2) मैदानी क्षेत्र

मैदानी क्षेत्र उत्तर में पश्चिम दीनाजपुर से लेकर दक्षिण में सुन्दरबन तक फैला हुआ है प्रेन (1903) ने वनस्पति की दृष्टि से मैदानी क्षेत्रों को चार भागों में वर्गीकृत किया (क) पश्चिम बंगाल मुख्य जो कि भागीरथी-हुगली नदी तथा छोटा नागपुर पठार क्षेत्र के मध्य स्थित है। (ख) गंगा से जुड़ा हुआ उत्तरी बंगाल का कुछ हिस्सा (ग) गंगा के पूर्व में स्थित केन्द्रीय बंगाल (ग) सुन्दरबन का पश्चिमी भाग।

पश्चिम बंगाल की वनस्पति अध्ययन की शुरुआत कलकत्ता में एशियटिक सोसाइटी तथा शिवपुर बॉटनिक गार्डन की स्थापना से ही मानी जा सकती है। विलियम राक्सबर्घ ने सर्वप्रथम सन् 1814 में हॉर्टस बेन्गालेन्सिस' में कलकत्ता वनस्पति उद्यान की लगभग 3500 पादप जातियों का उल्लेख किया। वॉइग्ट ने 1845 में सीरामपुर तथा कलकत्ता के उद्यानों में मिलने वाले पादपों का विवरण प्रस्तुत किया। किन्तु बंगाल की वनस्पति का विस्तृत अध्ययन सर जे०डी हुकर (1845) तथा प्रेन (1903-1905) के प्रकाशनों से ही परिलक्षित होता हैं। बाद के वैज्ञानिकों में बेन्थल, मजूमदार, मिश्रा, बैनेट, चौधरी, दास, सन्याल, सेन, गुहाबक्शी, बसाक, मलिक आदि ने पश्चिम बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों की वनस्पति का सर्वेक्षण, संग्रह व अध्ययन करने में उल्लेखनीय योगदान किया है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक पश्चिम बंगाल के मैदानी क्षेत्र में काष्ठीय वनों की भरमार थी। ये वन प० दीनाजपुर व माल्दा जिलों में तथा 'सुन्दरबन व छोटानागपुर पठार क्षेत्र में आसानी से देखे जा सकते थे। किन्तु पिछले सौ वर्षों का इतिहास वनों के विनाश की कहानी का इतिहास कहा जा सकता है। वर्तमान में कुल मैदानी क्षेत्र के केवल 11 प्रतिशत भाग में वन रह गये हैं। इनमें से बीरभूम में 3 प्रतिशत बांकुरा में 2 प्रतिशत तथा सुन्दरबन में 31 प्रतिशत क्षेत्र में वन मिलते हैं। पश्चिम बंगाल के मैदानी क्षेत्र में पुष्पी पौधों के 150 कुलों के अन्तर्गत 750 वंश तथा 1450 जातियाँ अब तक रिकार्ड की गई हैं।

हुकर ने सन् 1904 में यहाँ की वनस्पति को दो क्षेत्रों में वर्गीकृत किया 1)बंगाल प्रमुख 2)सुन्दरबन। पश्चिम बंगाल के वनों को निम्न चार वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

अ) समुद्रतटीय एवं दलदल भूमि में पाये जाने वाले वन।

ब) उत्तरी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन।

स) उष्णकटिबन्धीय मौसमी दलदल में उगने वाले वन।

द) शुष्क पर्णपाती वन।

समुद्रतटीय एवं दलदल भूमि में पाये जाने वाले वन सुन्दरबन क्षेत्र के वन ही हैं। लवण जमा होने की मात्रा में अन्तर होने के कारण सुन्दरबन के पूर्वी हिस्से की वनस्पति की वृद्धि पश्चिमी क्षेत्र की अपेक्षा तीव्रता से होती है। बनर्जी ने सन् 1964 में इस क्षेत्र में दो प्रकार के वनों का विवरण दिया। एक तो वे जो लवणीय जल में उगते हैं जिन्हें हेरीटिएरा प्रकार के वन कहते है व दूसरे निम्न मेन्ग्रोव प्रकार के जो सामान्यतथा 'चर' के मेन्ग्रोवों से सम्बद्ध रहते हैं। चैम्पियन एवं सेठ ने सन् 1968 मे निम्न छः प्रकार के वन इस श्रेणी में रखे। (1) समुद्रतटीय वन जो कि समुद्र के किनारे निर्मित रेत के टीबों पर उगते हैं (2) मेन्ग्रोव क्षुप युक्त वन (3) मेन्ग्रोव वन (4) हेरीटिएरा एवं लवणीय जल में उगने वाले मिश्रित वन (5) लवणीय जल में उगने वाले मिश्रित वन (6) दलदल में उगने वाले पाम मेन्ग्रोव वनों की मुख्य जातियों में **र्हीजोफोरा, सेरीऑप्स, जीलोकार्पस, ब्रूगइएरा सोन्नेराटिआ, आएजीसेरास, आवीसेन्निआ, हेरीटिएरा एवं नीपा** आदि हैं। लवणीय जल मिश्रित **हेरीटिएरा** के वन कभी-कभी 20 मीटर तक ऊंचे तथा अपेक्षाकृत अधिक सघन होते हैं। इनके ऊपरी वितान में मुख्यत: **हेरीटिएरा फोमेस, एक्सकोएकारिआ अगाल्लोचा, सेरीऑप्स डेकान्ड्रा, जीलोकार्पस गान्जेटिकुम** आदि पाये जाते हैं। मध्यम ऊंचाई के सदाबार मेन्ग्रोवों में **कान्डेलिआ कन्डाल, आवीसेन्निआ अल्बा, सेरिऑप्स टगाल, जीलोकार्पस गान्जेटिकुम** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मेन्ग्रोव क्षुप या लवणीय जल के उगने वाले वन बहुत कम ऊंचाई के होते हैं एवं पश्चिमी सुन्दरबन के एक बड़े भू-भाग पर उगते देखे जा सकते हैं। लवणीय जल मिश्रित वन लवणीय जल के अतिक्रमण के कारण कम ही दिखाई पड़ते हैं। पामों में तना विहीन पाम **नीपा फ्रूटीकान्स** तथा **फेनिक्स पालूडोसा** आदि प्रमुख हैं। पश्चिमी सुन्दरबन में **मीरिओस्टाचिआ, जोइसिआ माट्रेला, पास्पालुम डिस्टीकुम** तथा **पोर्टेरेसिआ कोआर्क्टाटा** आदि घासें उगती हैं।

नदियों द्वारा लाई गई तथा ज्वार-भाटे के समय बहकर आई मिट्टी से सुन्दरबन में द्वीपों का निर्माण होता रहता है। इस प्रकार बने द्वीपों पर सबसे पहले **लौसिआ हेक्सान्ड्रा, पोर्टेरेसिआ कोआर्क्टाटा** तथा **सेसीविउम पोर्टुलाकास्ट्रुम** आदि उगते है। इसके बाद **आवीसेन्निआ आल्बा, आ० मारीना, आ० आफ्फीसीनालिस, सोन्नेराटिआ अपेटला आएजीसेरास कोर्निकुलाटुम** आदि वृक्षों की जातियां उगती हैं। मिट्टी के स्थिरीकरण के बाद **सेरिऑप्स डेकान्ड्रा, एक्सकोएकारिआ अगाल्लोचा** व कहीं कहीं **ब्रूगइएरा जिम्नोर्हीजा, जीलोकार्पस गान्जेटिकुम** आदि पौधे अपना स्थान बना लेते हैं।

उत्तरी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन मुख्यत: पश्चिमी मिदनापुर, पुरुलिया, बांकुरा, बर्धमान व बीरभूम जिलों में मिलते हैं। साल के इन वनों में **अडीना, कोर्डीफोलिआ बोस्वेल्लिआ सेर्राटा, बुकनानिआ लन्झान, बूटेआ मोनोस्पेर्मा, क्लोरोक्सीलोन स्वीटेनिआ, डालबेर्जिआ, डियोस्पीरॉस मेलानोक्सीलोन, गारुगा पीन्नाटा, ग्मेलिना आर्बोरिआ लागेरस्ट्रोएमिआ पार्वीफ्लोरा, माल्लोटस-फिलीप्पेन्सिस, मधूका लोन्गीफोलिआ, सेमेकार्पस अनाकार्डिउम, टेर्मिनालिआ बेलाटा, टे० अर्जुना, टे० बेल्लीरीका, टे० चेबूला** आदि हैं।

वनों में किनारों पर व वृक्षों के नीचे उगने वाली अन्य वनस्पतियों में ब्रीडेलिया स्कुआमोसा, कोम्ब्रेटम रॉक्सबर्घाई, क्लेइस्टान्थुस कोल्लीनुस, होलारेह्ना आन्टीडिसेन्टीरिका, इन्डीगोफ़ेरा कारसीओइडेस, ओकना ओब्टुसाटा, मोलाक्स स्कान्डेन्स, मुरको डियाफ़्टोकोसा, जीरोम्फ़िस स्पिनोसा एवं जिजीफ़ुस आदि प्रमुख हैं। अपेक्षाकृत शुष्क स्थानों पर आरिस्टि ा सेटासेआ, डेस्मोस्टाचिया बीपिन्नाटा, एउलालिओप्सिस बीनाटा, इकेलोब्लोमा ग्रानुला रस, हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस, सेटारिआ टोमेन्टोसा एवं एराग्रोस्टिस आदि घासें उगती हैं।

रन्ध्र युक्त अपक्षरित भूमि, शुष्क जलवायु एवं कम वर्षा होने के कारण ये वन अधिक सघन नहीं बन पाते। माल्दा व प॰ दीनाजपुर जिलों में अधिक शुष्क जलवायु के कारण खाल ी मैदान ही अधिक दिखाई पड़ते है।

उष्णकटिबन्धीय मौसमी दलदल में उगने वाले वनों में गंगा की निचली घाटियों के कई दलदल युक्त क्षेत्र आते हैं। इन वनों की विशेषता यह है कि ये करीब दो तीन माह तक बाढ़ के जल में डूबे रहते है व बाद में पुनरुत्पादित होते हैं। जल अवरुद्ध क्षेत्रों में बारिन्गटोनिआ इस प्रकार की वनस्पति का एक अच्छा उदाहरण हैं। शुष्क पर्णपाती क्षुप वाले वनों में होलारहेना क्लेइस्टान्थुस, कारीस्सा, कोम्ब्रेटुम, फ्लेकूर्टिआ एवं जेरोम्फिस आदि क्षुप मुख्यतः मिलते हैं। ये वातावरण के विभिन्न कारकों के संचयी प्रभाव द्वारा शुष्क पर्णपाती साल के वनों से ही उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त वनों के अतिरिक्त गाँवों तथा कस्बों में अन्य कई प्रकार के वृक्ष समूहों में उगते हुए देखे जा सकते हैं। फोनिक्स सिल्वेस्ट्रिस, बोरास्सुस फ्लाबेल्लीफ़ेर एवं कोकॉस नूसीफ़ेरा आदि इनके उदाहरण हैं।

आभार

मैं डॉ॰ सुधांशु कुमार जैन, निदेशक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का आभारी हूं जिनके सुझाव व मार्ग दर्शन से यह लेख लिखा जा सका है। साथ ही डा॰ बसाक, डा॰ गुहाबक्शी, डा॰ सक्सेना व श्री बिजय कृष्णा के प्रकाशित लेखों से ली गई सहायता के लिए उपरोक्त सभी महानुभावों का भी आभार व्यक्त करता हूं।

10. सिक्किम के रोचक पौधे

विजय कृष्ण

सिक्किम भौगोलिक दृष्टिकोण से 27° 10' 28° 5' उत्तरी अक्षांश तथा 88° 30' 89° पूर्वी देशान्तर के बीच स्थित है। इस प्रान्त के उत्तरी भाग में तिब्बत, पश्चिम में नेपाल, पूर्व की ओर भूटान तथा तिब्बत का कुछ अंश, जिसे चुम्बी घाटी कहते हैं एवं दक्षिण में दार्जिलिंग (पश्चिम बंगाल) स्थित है। इस प्रान्त की प्राकृतिक छटा अपूर्व है। उत्तर की ओर हिमाच्छादित कंचनजंघा जिसके उत्तर पूर्व की ओर बढ़ती श्रृंखला में नाथुला, जेलपला उल्लेखनीय हैं।

सिक्किम के पौधों के विषय में सर्वप्रथम प्रसिद्ध वनस्पतिज्ञ हुकर ने लिखा। उन्होंने 1848 तथा 1849 ई० में विभिन्न स्थानों से पौधों का संग्रह किया और उनके विषय में लिखा। तत्पश्चात् भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के अनेक व्यक्तियों ने यहां के पौधों पर शोध कार्य किया है। किन्तु इस प्रकार छिटपुट ढंग से किए गए शोध कार्य इस राज्य की विस्तृत वनस्पति के ऊपर सम्पूर्ण प्रकाश नहीं डाल सके हैं। इस कारण भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का एक परिमंडल 28 दिसम्बर 1979 में गंगटोक में स्थापित किया गया।

यह प्रान्त चारों तरफ से वनों से घिरा हुआ है और इसके अन्तर्गत उष्ण (ट्रापिकल) से लेकर हिमाद्रि (एल्पाइन) भाग के लगभग सभी पौधे पाये जाते हैं। यही कारण है कि सभी प्रकार की वनस्पतियों की उत्पत्ति का सिक्किम आकर्षक स्थल रहा है। यहां की पहाड़ी घाटियों की विभिन्न ऊंचाइयां और जलवायु उनकी उत्पत्ति में सहायक रहे हैं।

सिक्किम में मुख्यतः दो ही ऋतु होती हैं वर्षा तथा शीत। यहाँ गर्मी बिल्कुल नहीं पड़ती। मौसम विशेषज्ञों के अनुसार 1982 ई० के गर्मी तथा वर्षा के आंकड़े निम्नलिखित हैं :—

क) कुल वर्षा 2803.8 मिली मीटर

ख) औसतन वर्षा 233.7 मिली मीटर

ग) अधिकतम तापमान 26.8° सेन्टीग्रेड

घ) न्यूनतम तापमान 0.7° सेटीग्रेड

सिक्किम की प्राकृतिक छटा बहुत ही भव्य है। ईश्वर ने यहाँ वनस्पतियों तथा वन्यप्राणियों का सामंजस्य बहुत ही सुन्दर ढंग से किया है। वैसे तो पौधों की बहुत सी जातियाँ यहाँ पाई जाती हैं किन्तु सबका वर्णन करना यहां सम्भव नहीं। इसी कारण कुछ विशेष रोचक पौधों का वर्णन ही इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहाड़ों के निचले स्तर में जिसकी ऊंचाई 900 मीटर तक ही है, पाये जाने वाले कुछ वृक्ष हैं — **शोरेआ रोबुस्टा, टेक्टोना ग्रांडिस, बोम्बॉक्स सेइबा, अडीना कोर्डिफोलिआ, डालबेर्जिआ, सिस्सू,** इन पेड़ों की लकड़ी काफी कीमती होती हैं और फर्नीचर बनाने में काम आती हैं। एक दूसरा वृक्ष **गीनोकार्डिआ ओडोराटा** पाया जाता है, जिसका फल पकने पर पीला होता है। इस फल के बीज से 'चालमूंगरा' तेल निकाला जाता है, जो कुष्ठ रोग और चर्मरोगों की चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। यह तेल विदेशों में भी निर्यात होता है। इस वृक्ष का और भी अधिक से अधिक रोपण करवाना आवश्यक है।

इससे यदि थोड़ी और ऊंचाई पर जाएं तो वहां की वनस्पति बिल्कुल अलग तरह की है। इसी ऊंचाई पर मुख्यत: बड़े-2 सुन्दर वृक्ष पाए जाते हैं, जिनमें कुछ विशेष वृक्षों का उल्लेख करना आवश्यक है। जैसे **स्कीमा वालिचिई, कास्टोनोप्सिस इन्डिका, एक्सबुकलांडिआ पोपुलनेआ, आल्नुस** नेपालेंसिस, **क्रिप्टोमेरिआ** जापोनिका इत्यादि।

छोटे वृक्षों में **माहोनिआ आकान्थोफोलिया** का स्थान उल्लेखनीय है। इसके पीले रंग का पुष्प विन्यास दिखते नहीं बनता है।

कागज आधुनिक युग की देन है। पौराणिक युग में ग्रंथ भोजपत्रों पर लिखे जाते थे। यह **बेटुला आल्नोइडेस** नामक वृक्ष की छाल से प्राप्त होता था। यह वृक्ष भी बहुतायत में यहां पाया जाता है। सांप के फन जैसे निकले पौधे भी बड़ी मात्रा में यहाँ पाये जाते हैं, जैसे **आरीसाएमा टोर्टुओसुम**। इसका फूल बड़ा ही आकर्षक होता है।

जैसे-जैसे ऊंचे जाएं पर्वतीय सौन्दर्य अपूर्व होता जाता है। 2500 मीटर से ऊपर रंग बिरंगे **र्‍होडोडेन्ड्रोन** की छटा शुरु होती है। जैसे **र्‍हो॰ काम्पबेलिआए, र्‍हो॰ आर्बोरेउम, र्‍हो॰ होड्गसोनिई** इत्यादि।

यहीं पर **मेकोनोप्सिस** की अन्य जातियां भी पाई जाती हैं, जिनके आकर्षक रंगों के पुष्प मन को मोह लेते हैं। अप्रैल से लेकर जुलाई महीने तक इन फूलों के खिलने का मौसम रहता है। इनके साथ **प्रिमुला** की कुछ जातियाँ एवं **आर्किड्स** प्रकृति की सुन्दरता में चार चांद लगा देते हैं।

इससे अधिक ऊंचाई पर बर्फीली घाटियों पर छटा भिन्न नजर आती है। इन इलाकों में छोटे छोटे र्‍होडोडेन्ड्रोन, र्‍हेउम नोबिले तथा साउस्सुरेआ गोस्सिपोफोरा

पाये जाते हैं, जिनके बर्फ के नीचे से झाँकते हुए फूल बड़े ही सुन्दर दिखते हैं। हिमाच्छादित पर्वतों पर बहुमूल्य औषधि के भी छोटे-२ पौधे बहुतायत में पाये जाते हैं, जिनकी विदेशों में काफी मांग है और ये वहाँ महगे बिकते भी हैं। जैसे नार्डोस्टाकिस जटामान्सी, पिक्रोरिह्जा कुरोआ तथा ग्राकोनीटुम की जातियां इत्यादि।

जहाँ तक वनस्पति के सौंदर्य का सम्बन्ध है, उत्तर-पूर्वी हिमालय के अन्तर्गत सिक्किम का एक विशेष स्थान है। करीब करीब सभी ऋतुओं में यहाँ के वन फूलों से शोभित रहते हैं। यहाँ के बर्फीले पर्वत नगरों के कोलाहल से दूर, वृक्षों लताओं, जड़ी बूटियों, फल फूलों के परिधान से सुशोभित वन के धारक हैं एवं सरिताओं और निर्झरों से अलंकृत हैं ये हिम पर्वत। इन वनों ने देश को अमरत्व, बादलों से अमृत की वर्षा, विशुद्ध पर्यावरण, भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि तथा मानसिक शान्ति के लिये अपूर्व प्राकृतिक सौन्दर्य दिया है।

11. अरुणाचल के वन और वनस्पति

चरणजीत लाल मल्होत्रा

अरुणांचल प्रदेश, जो कि पहले उत्तर पूर्व सीमा (नेफा) प्रान्त कहलाता था, उत्तर पूर्वी क्षेत्र का सबसे बड़ा राज्य है। यह पांच जिलों में विभाजित है जिनके नाम है कॉमेन्ग, सुबान्सिरी, सियांग, लोहित और तिरप। इस प्रदेश के उत्तर में चीन, पूर्व में बर्मा, दक्षिण में असम व नागालैंड तथा सुदूर पश्चिम में भूटान हैं।

यह प्रदेश अनेक प्रकार की वनस्पतियों से समृद्ध है। अनेक कठिनाइयों विशेषकर यातायात की कमी के कारण अभी भी, यहां पाई जाने वाली वनस्पतियों का पूरा अध्ययन नहीं हुआ है तथा विवरण उपलब्ध नहीं है और इसी कारण इस प्रदेश की ओर वनस्पतिज्ञों का ध्यान आकृष्ट हुआ है।

अरुणाचल में पौधो की लगभग 3000 जातिया पाई जाती हैं जिनमें कई उपयोगी हैं। यहां की वनस्पति को चार प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

1. उष्णकटिबन्धीय सदाबहार या अर्द्ध सदाबहार वन।
2. उपोष्णकटिबन्धीय वन।
3. शंकुधारी वन एवं
4. उपहिमाद्रि या हिमाद्रि वनस्पति।

1. उष्णकटिबन्धीय सदाबहार या अर्द्ध सदाबहार वन

ये तराई से लेकर 1000 मीटर की ऊंचाई तक पाए जाते हैं। इन वनों में मुख्यतः डिल्लेनिआसी, आनोनासी, डीप्टेरोकार्पासी, मीर्टासी, मीरिस्टिकासी, प्राएरीकासी प्रादि कुलों के पौधे पाए जाते हैं। अधिकतर वृक्ष चौड़ी पत्ती वाले एवं काफी ऊंचे होते हैं। इस प्रकार के वनों के शीर्ष वितान में **आल्टिंजिआ एक्सेल्सा आमूरा वार्बियाना बोम्बाक्स सेइबा, काल्लीकार्पा आर्बोरेआ, कास्टानोप्सिस ईण्डिका, चुकरासिया टाबुलारिस, सीन्नामोमुम सेसिकोडाफने, डीलेनिआ ईण्डिका, डीप्टेरोकार्पुस प्रासीलिस, डुआबंगा सोन्नेराटिओइडेस, डीसोक्सीलुम प्रोसेरुम, लागेरस्ट्रोएमिआ स्पेसिओसा, माग्नोलिआ काम्पबेल्लिई, प्टेरोस्पेर्मुम आसेरीफोलिउम, कुएरकुस ग्लाउका टेर्मिनालिआ चेबुला, टे० मीरिओकार्पा एवं टेट्रामेलेस नूडीफ्लोरा** पाये जाते हैं।

मध्य वितान में छोटे वृक्ष एवं क्षुप होते हैं। इनमें **आबोमा आगुस्टा, आ० उन्डुलाटा, बाउहीनिआ, पुरपुरेआ बोहुगेरिआ, माक्रोफिल्ला बो० प्लाटीफिल्ला,**

बुडलेजा एशिआटिका, क्लेरोडेन्ड्रूम ग्लान्डुलोसुम, क्ले० सेराटम, क्ले० वेनोसुम, कोपफ्रेआ बंगालेंसिस, फीकुस हिस्पिडा, इल्लीसिउम मनीपुरेंस, मीचेलिआ काल्टसोपा, मीक्रोमेलुम, मीनुट्टुम मुस्साएंडा राक्सबर्घाई, ओक्सी स्पोरा पानीकुलाटा, सोलानुम टोर्वुम, सीनीजिउम प्सेउडोफामोंसुम एवं **कालामुस लेप्टोस्पाडिक्स** भी इन्हीं वनों में दलदलों में पाये जाते हैं। **आंजिओप्टेरिस एवेक्टा** (लार्ज फर्न) एवं **सीआथेआ** (ट्री फर्न) की जातियां **पांडानुस फुरकाटुस** के सान्निध्य में उगती हुई पाई जाती हैं। जंगली केला, **मूसा बुलिबसिआना** इस प्रकार के वनों में मिलता है। **आकीरान्थेस बीडेन्टाटा**, आल्टेर्नान्थेरा सेसीलिस, कोमेलिना पालूडोसा, **मुरडानिआ नुडीफ्लोरा, डीरिजिआ अमारान्थोइडेस, इम्पाटिएंस पालूडोसा, इ. पोरेक्टा, इ. राडिआटा, ओक्सालिस कोर्नीकुलाटा, पोलीगोनुम बारबाटुम पो० सेरुलाटुम** तथा **एस्प्लेनिउम, एक्युइसेटुम** एवं **सेलाजीनेल्ला** की जातियाँ आदि है।

इन वनों में कुछ उपरिरोही पौधे भी पाये जाते हैं जैसे—**बुल्बोफील्लुम' सोएलोगिने, सिम्बीडिउम, डेंड्रोबिउम, एरिआ, ओबेरोनिआ** एवं **फ्रोलिडोटा** की जातियां। **जेस्नारिआसी** एवं **जिजीबेरासी** कुलों के पौधे भी विभिन्न पेड़ों पर आश्रय लेते हुए पाये जाते हैं। यहां जमीन पर उगने वाले आर्किडों की कुछ जातियां भी पाई जाती हैं जिनमें **हाबेनारिआ, लीपारिस, माल्याक्सिस, फाइउस** एवं **गुडयेरा** की जातियाँ मुख्य हैं। नम स्थानों पर कहीं-कहीं **बालानोफोरा डिओइका** नामक **मूल** परजीवी भी पाया जाता है। एरिकासी कुल के कुछ पौधे भी वनों में दिखाई देते हैं।

2. उपोष्णकटिबन्धीय वन

ऐसे वन 100 से 2000 मी० की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। इनमें मुख्यतः **आक्टीनोडाफने ओबोवाटा, आल्नुस नेपालेंसिस, बाउहीनिआ वारिएगाटा बुएटनेरिआ आस्पेरा, काल्लीकार्पा आर्बोरेआ, एवोडिआ फ्राक्सीनिफोलिआ, फीकुस गास्पेरीनिआना, गार्सीनिआ आकुमिनाटा, गीनोकार्डिआ ओडोराटा, कोडिआ कालोसिना, मागनोलिआ प्टेरोकार्पा, प्रूनुस नेपालेंसिस, कुएरकस्य ग्लाउका, साउराउइआ पुण्डुआना, स्टाकीउरुस** और **स्टेर्कुलिआ इन्डिका** आदि आते हैं। क्षुपों में **आगापेटेस सिक्किमेंसिस आर्टेमीसिआ नीलगिरिका, बेरबेरिस वालिचिआना, कामेलिआ काडुका, कोटोनेआस्टेर बासील्लारिस, माहोनिआ आकान्थीफोलिआ, प्लेक्ट्रान्थुस टेर्निफोलिउस, सोलानुम वेर्बास्कीफोलिउम, सोफोरा आकुमिनाटा विबुर्नुम फोएटिडुम** एवं **वि० मूल्लाहा** अधिकता से पाये जाते हैं। आरोही पौधों में **क्लेमाटिस आकुमिनाटा, होलबोएल्लिआ, लाटीफोलिआ, टीनोस्पोरा मालाबारिका, आक्टीनोडिआ काल्लोसा, डिओस्कोरेआ पेन्टाफिल्ला, टोड्डालिआ एशिआटिका** व **लीगोडिउम** मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त **अनाफालिस अडनाटा, अ. अरानेओसा, काम्पानुला कोलोराटा, कार्डामीन हिर्सुटा, सीनोग्लोस्सुम ग्लोकीडिआटुम**

फ्रागारिआ ईन्डिका, प्लान्टागो माजोर आदि शाक भी इन वनों की छाया में पाये जाते है।

3. शंकुधारी वन

इस प्रकार के वन उष्णकटिबन्धीय सदाबहार या अर्ध सदाबहार वनों की भांति घने नहीं होते। ये अपेक्षाकृत खुले और स्पष्ट रूप से विभाजित लगते हैं। इन वनों में मुख्य रूप से पीनासी एरिकासी एवं माग्नोलिआसी कुलों के कुछ वृक्ष पाये जाते हैं। सदाबहार ओक (1800 से 2600 मी० के वनों में कास्टानोप्सिस ईन्डिका सबसे अधिक होता है। दूसरे साधारणत: पायें जाने वाले वृक्षों में आसेर हूकेरी, आ० ओब्लोंन्गुम, आ० पेक्टिनाटुम व सिम्प्लोकास स्पीकाटा हैं। र्‌होडोडेंड्रान कोनीफर मिश्रित वनों में लीओनिआ ओवालीफोलिआ, माग्नोलिआ कैम्पबिलई क्वेर्कुस लाभिलीसा र्‌होडोडेंड्रान आर्बोरिउम, र्‌हो० लानाटुम व र्‌हो० बाइटिई पाये जाते हैं। 2600 मी० की ऊंचाई से आगे गाउल्थेरिआ फ्राग्रा॰टीस्सिमा, र्‌होडोडेंड्रोन की विभिन्न जातियां एवं टाक्सुस बक्काटा पाये जाते हैं। शंकु वनों के उत्तरी और पूर्वी ढलानों पर आबिएस वेब्बिआना कूप्रेस्सुस टारुलोसा एवं त्सुगा डुमोसा मिलते हैं। जेरबेरा, पोलीगोनुम मौल्ले, हमेला हेस्टाटुस, उर्टिका पार्वीफ्लोरा, वेबस्कुम थाप्सुस एवं विओला पाट्रिनिई आदि शाकीय पौधे भी यहां उगते हैं।

4. उपहिमाद्रि या हिमाद्री वनस्पति

लगभग 3300 मी० से 4000 मी. की ऊंचाई तक आबिएस वेब्बिआना, कूप्रेस्सुस टोरुलोसा, जूनीपेरुस, रेकुर्वा, लारिक्स ग्रिफिफथिआना, लारिक्स टाक्सुस बक्काटा त्सुगा डुमोसा एवं र्‌होडोन्ड्रॉन की जातियां पाई जाती हैं। क्षुपों में अधिकतर बेरबेरिस एशियाटिका, बे० वालीचिआना, फोटीनिआ नोटोनिआना, गाउल्थेरिआ फ्राग्रान्टीस्सिमा आदि होते हैं। 4000 मी. से 5500 मी० की ऊंचाई पर वृक्षों का स्थान क्षुप व शाक ले लेते हैं जिनमें अधिकतर र्‌होडोडेंड्रान, प्रिमुला, पोलीगोनुम, साक्सीफ्रागा, साउस्सुरेआ आदि कीजातियां हैं।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यह प्रदेश, वनस्पति की विभिन्न जातियों का भण्डार है और इनमें आंकिड, पर्णांग तथा अनेक आर्थिक महत्व के पौधे हैं।

दुर्लभ एवं लुप्त प्राय पौधों में आबिएस डेलाबायी, आक्वीलारिआ अगल्लोचा, आगापेटिस सिमिलिस, आल्चोजिया गाम्लई, बालानोफोरा डिमोइका, काम्पीलोट्रॉपिस पिकथिई, पापिओपेडीलुम फ़ारिएआनुम, र्‌होडोड्रान संतापाउई। इन सभी के संरक्षण के यथा सम्भव उपाए किए जा रहे हैं।

अभी तक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, शिलांग से लगभग 35 सर्वेक्षण दल अरुणाचल प्रदेश का वानस्पतिक सर्वेक्षण कर चुके हैं और अनेक संयुक्त वैज्ञानिक सर्वेक्षण अभियानों में भी विभाग के वनस्पतिज्ञों ने भाग लिया है जिससे मौलिक अन्वेषणों के लिए बहुमूल्य आंकड़े मिले हैं। भविष्य में प्रदेश का व्यवस्थित सर्वेक्षण हो सके इसीलिए 1978 में प्रदेश की राजधानी ईटानगर में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का एक फील्ड स्टेशन भी स्थापित किया गया है।

12. मध्यप्रदेश के वन और वनस्पति

दिनेश मोहन वर्मा

भारत के साल व सागवन की सम्पदा का सर्वोत्तम उदाहरण मध्य प्रदेश है। यहां देश के लगभग 22.8 प्रतिशत वन पाये जाते हैं। बस्तर की विश्व-विख्यात जन-जातियां भी यहीं रहती हैं। 44,284,000 हेक्टेयर के इस क्षेत्र में विंध्य,सतपुड़ा व मैकाल की पर्वत मालायें और उनकी शाखायें, महादेव, भनेर, सिहावा, अटंग, बस्तर, तथा अनेक और भी छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं। यहाँ विश्व की सबसे पुरानी क्रम की चट्टानें (आर्केयन तथा धारावार सीरीज की) चूना, मादका, लावा व अन्य भी रंग-बिरंगे पत्थर प्रचुर मात्रा में हैं। पन्ना की हीरे-पन्ने की खानों और जबलपुर की संगमरमर की पहाड़ियों के विषय में तो सभी जानते हैं। इसी प्रदेश में मालवा व मैनपाट के पठारी क्षेत्र, बुन्देलखण्ड, बघेलखंड व छत्तीसगढ़ के मैदानी और चम्बल, सोन, नर्मदा व कांगेर की घाटियां भी हैं सागर-तल से 160 मी० से लेकर यहाँ धूपगढ़ की 1350 मी० ऊंची पहाड़ियां हैं। उत्तर-पश्चिम में लगभग 50 से० मी० से दक्षिण-पूर्व में लगभग 200 से० मी तक वर्षा होती है। चम्बल, धसान, बेतवा, केन, सोन, नर्मदा, महानदी, शिवनाथ व इन्द्रावती मध्य प्रदेश की प्रमुख नदियां हैं।

इन्हीं विभिन्न वातावरणों में मध्य-प्रदेश के लगभग 38 प्रतिशत क्षेत्र (16,835,000 हेक्टेयर) मे विभिन्न प्रकार के वन भी पाये जाते हैं जिनमें मुख्य हैं उष्ण-कटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन और उष्ण कटिबंधीय नम पर्णपाती वन। कहीं-कहीं पर जैसे पंचमढ़ी व बस्तर क्षेत्र में, उष्ण-कटिबंधीय नम अर्ध-सदाबहार वन भी पाये जाते हैं। इन प्रमुख वन-वर्गों का और भी वैज्ञानिक वर्गीकरण किया गया है। इस वर्गीकरण में वनों के मुख्य-मुख्य वृक्षों का प्रमुख स्थान है और अधिकांश वनों को इन्हीं के नाम से जाना जाता है।

मध्य प्रदेश में सबसे प्रसिद्ध हैं साल (शोरेआ रोबुस्टा) के वन। ये प्रदेश के दक्षिणी व पूर्वी जिलों में पाये जाते हैं। पचमढ़ी, दक्षिण रायपुर व बस्तर के साल वन विशेष घने और अच्छी किस्म के हैं। इन वनों में यदि साल की मात्रा 60 प्रतिशत से कम होती है तो इन्हें साल-मिश्रित वन कहा जाता है। साल के वनों में दूसरे मुख्य वृक्ष हैं हर्रा (टर्मिनालिआ चेबुला), बहेड़ा (टे० बेल्लीरिका) साजा (टे० अलाटा) बड़ंग (कीडिआ कालीसिना), चार (बुकनानिआ लन्जान), आंवला (एम्बिलका ऑफ्फीसिनालिस), बीजा (प्टेरोकार्पुस मार्सुपिउम), तेंदू (डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलोन)। पादर (स्टेरेओस्पेर्मुम सुआवेओलेन्स), धोबन (डालबेर्जिआ पानीकुलाटा), कुसुम [श्लेईचेरा ओलेओसा], धावड़ा [अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ], मेडमा (लान्नेआ कोरोमान्डेलिका) मेहुआ (मधूकालोन्गीफोलिआ प्रभेद लाटीफोलिआ), सलई (बोसवेल्लिआ सेर्राटा), सेन्हा या

लेंडिया (लागेरस्ट्रोएमिआ पार्वीफ्लोरा), कर्रा (क्लेइस्टान्थस कोल्लिनुस), मिरी (क्लोरोक्सीलोन स्वीएटेनिआ), व कचना (बाउहीनिआ) आदि की जातियां। इन वनों में अनेक प्रकार की लतायें व बेलें भी होती हैं जिनमें लालबेल (वेन्टिलागो डेन्टिकुलाटा), माहुल (बाउहीनिआ वाह्लिई) भपेग या मलकमनी (सेलास्ट्रुस पानीकुलाटुस), पटमो (मील्लेटिआ आउरिकुलाटा) व डिओस्कोरेआ उल्लेखनीय हैं। कहुआ (टर्मिनालिआ अर्जुना) नदी-नालों के किनारे मिलता है। इन वनों के छोटे पौधों में छिंद (फेनिक्स चकाउलिस), वन-हल्दी (कुरकुमा) की जातियाँ, वन-अदरक (जिन्जीबेर) की जातियां और अन्य कई प्रकार के आकर्षक पौधे भी मिलते हैं।

इन्हीं साल-क्षेत्रों में, व अन्य उत्तर-पश्चिम क्षेत्रों में भी (जहा साल नहीं होता), सागवन (टेक्टोना ग्रान्डिस) काफी मात्रा में पाया जाता है। इनमें अधिकतर वृक्ष तो वन-विभाग के लगाये हुये हैं परन्तु कुछ स्थानों पर ये अपने आप भी उगते हैं। ये सागवन के वन कहलाते हैं।

साल और सागवन के वनों को दो भागों में विभाजित किया गया है। जहाँ वर्षा व हरियाली अधिक है उन्हें उष्ण-कटिबन्धीय निम पर्णपाती साल या सागवन वन कहते हैं और जहां वर्षा व हरियाली कम है उन्हें उष्ण-कटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती साल या सागवन कहते हैं।

मध्य प्रदेश के कुछ मध्य व उत्तर-पश्चिम क्षेत्रों में जहाँ वर्षा कुछ कम होती है या किन्ही और कारणों से जहाँ का वातावरण कुछ भिन्न है वहाँ उष्ण-कटिबंधीय शुष्क पर्णपाती मिश्रित वन पाये जाते हैं। इन वनों के प्रमुख पेड़ हैं सेन्हा (लाबेरट्रोएमिआ पार्वीफ्लोरा) तेंदू (डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलोन), धावड़ा (अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ), बेर-बाटियाँ (जिज़ीफुस) की जातियां, जंगली फालसा (ग्रेविआ) की जातियां, सिंदूरी (माल्लोटुस फ़ीलीप्पेन्सिस), लसोड़ा (कोर्डिआ ओब्लीकुआ), खैर (अकासिआ काटेचू) व अकासिआ की और भी जातियां, बेल (आएग्ले मार्मेलोस), दूधी (होलार्हेना आन्टीडीसेन्टेरिका), गिडेल (स्टेर्कुलिआ उरेंस) केकड़ (गारुगा पीन्नाटा) हरसिंगार (नीक्टान्थुस आर्बोरट्रिस्टिस), मेडगा (लान्नेआ कोरोमान्डेलिका), अमलताम (कास्सिआ फ़ीस्टुला), मरोड़फली (हेलीक्टेरेस) व कचनार (बाउहीनिआ) की जातियां।

मध्य प्रदेश के सबसे शुष्क उत्तरी-पश्चिमी किनारे के क्षेत्रों में कुछ छोटे कटीले प्रकार के दूर-दूर उगे व बुरी तरह से काटे गये जंगल दिखते हैं। जिनको क्षुप वन कहते हैं। सबसे अधिक वनों का विनाश शायद इसी क्षेत्र में हुआ है जो अब यथार्थ में वन कहलाने योग्य भी नहीं रहे हैं। इनमें बेर (ज़िज़ीफुस), बबूल (अकासिआ), जंगली फालसा (ग्रेविआ) की जातियां, काली धवड़ा अनोगेइस्सुस पेन्डुला, (पर्लकॉर्टिया ईन्डिका), करील (कापारिस) की जातियां व कुछ पलास (बुटेआ मोनोस्पर्मा) के पेड़ ही मुख्य हैं। कहीं कहीं पर तो काला धावड़ा और पलास के पेड़ इतने अधिक और नीचे तक कटे हैं कि न जानने वाला यह सोच भी नहीं सकता कि ये सुन्दर व ऊंचे वृक्ष होते हैं।

मध्य प्रदेश के ताल-तलैयों में भी कभी कभी अति आकर्षक जलीय पौधे होते हैं। इनमें हल्के गुलाबी रंग के कमल (नेलुम्बो नूसीफेरा) व सफेद, लाल व नीले फूलों वाली कुमुदनी (नीम्फाएआ) की जातियाँ आदि प्रमुख हैं।

इन वनों के भीतर केवल ऊपर दिये गये 40-50 नाम के ही पेड़-पौधे नहीं होते। इन्हीं वनों में हजारों जातियों के और भी पेड़-पौधे पाये जाते हैं। ये क्या है? किस वातावरण में होते हैं? क्या ये कभी मनुष्य के लिये उपयोगी थे, हैं, या हो सकते हैं? यह सभी प्रश्न एक जिज्ञासा का विषय हैं और आज का जागरूक समाज इनका उत्तर चाहता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि एक ही पौधे को देश-विदेश के विभिन्न भागों में अलग-अलग नाम से जाना जाता हो या फिर एक ही नाम से अलग-अलग पौधे को जाना जाता हो? जी हाँ, यह सच है और इन्हीं कारणों से वैज्ञानिकों ने हर पेड़-पौधे को एक वैज्ञानिक नाम दिया है जिसे 'बोटेनिकल नेम' कहते है, जो उपरोक्त पेड़-पौधो के लिये दिये गये हैं। परन्तु यह नाम कौन बतायेगा और इनके विषय में कौन लिखेगा? क्या कुछ पेड़-पौधे वनों से लुप्त तो नहीं हो रहे हैं या फिर कुछ नये पौधे विदेशो से तो नहीं आ गये हैं, और उनका यहां की वनस्पति पर क्या प्रभाव हो रहा है?

मुख्यत: इन्हीं सब जिज्ञासाओं की पृष्ठभूमि में भारत सरकार ने भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की स्थापना की। इस विभाग के केन्द्रीय क्षेत्र, इलाहाबाद से मध्य प्रदेश और पूर्वी उत्तर प्रदेश की वनसम्पदा का सर्वेक्षण 1962 से हो रहा है। मध्य प्रदेश के अभी तक के सर्वेक्षण से अनुमान लगाया जाता है कि भारत में पाई जाने वाली लगभग 15000 संवृत बीजी जातियों में से मध्यप्रदेश में लगभग 4000 जातियाँ पाई जाती है। यहाँ के वैज्ञानिक हर मौसम में अलग - अलग स्थानों पर जाकर पेड़ पौधों का (फल-फूल समेत) संग्रह करते हैं और वहीं पर जन-जतियों और ग्रामीणों से इनकी उपयोगिता आदि के विषय में बात करते हैं। इसी के साथ ही पौधों के अपने वातावरण व फल—फूल पत्ती आदि के विषय में अपने अनुभव व टिप्पणियां लिखते हैं। पेड़--पौधों के इन प्रतिरुपो को सुखाकर टिप्पणियां आदि लिखने के बाद, इलाहाबाद के पादपालय (हर्बेरियम) में रखा गया है जिससे जो भी कभी चाहे तो उसकी जाँच कर सकता है और उससे लाभ उठा सकता है आज तक केवल मध्य प्रदेश से ही इलाहाबाद के पादपालय में लगभग 40,000 ऐसे प्रतिरूप जमा हो चुके हैं। इनमें से कुछ देश-विदेश के दूसरे पादपालयों में भी भजे गये हैं।

मध्य प्रदेश में इस प्रकार का सर्वेक्षण दमोह, सतना, सीधी, सरगुजा, बिलासपुर, रायगढ़, रायपुर, दुर्ग व राजनन्दगांव जिलों में पूरा हो चुका है तथा छतरपुर शहडोल, मांडला, बालाघाट, होशंगाबाद व बस्तर आदि जिलों में किया जा रहा है।

इस प्रदेश के वनों, वनस्पति-कार्य, पेड़-पौधों व उनकी नई जातियों आदि विषयों पर कई लेख विभागीय 'बुलेटिन ऑफ दि बोटेनिकल सर्वे ऑफ इन्डिया' तथा और दूसरी शोध-पत्रिकाओं में छापे जा चुके है। पंचमढ़ी व बोरी (होशंगाबाद) व

रायपुर, दुर्ग और राजनन्दगांव जिलों और कान्हा राष्ट्रीय उद्यान के पेड़—पौधों के विषय में पुस्तकें (फ्लोरा) छपने हेतु तैयार हो चुकी हैं व ऐसे ही और भी कई कार्यक्रम चल रहे हैं।

अन्य स्थानों की तरह मध्य प्रदेश में भी वनों पर मनुष्य का दबाव रहा है। बढ़ती जन-संख्या की लकड़ी की आवश्यकता और रहने का स्थान, खेती के लिये अधिक भूमि, नये कारखाने, सड़कें, जलाशय आदि बनना, गांवों में चरागाहों की कमी और जानवरों का वनों में चरना आदि ऐसे अनेक कारण हैं जिनसे वनों का विनाश बहुत वेग से हुआ है। इसी प्रकार एक कारण और भी है। नासमझी या थोड़े से फल-फूल (जैसे महुआ के फूल या साल के बीज) जमा करने के लिये, थोड़ी खेती या रास्ते के लिये वन काट देना या उसमें आग लगा देना एक मामूली बात है। वर्षों से साधारण व्यक्ति ने यह कभी नहीं सोचा कि यदि वन काट रहे हैं तो कुछ वृक्ष लगाना उससे भी अधिक आवश्यक है। मनुष्य को घर व खेती के लिये लकड़ी, खाने के लिये फल-फूल दवाइयों इत्यादि के अलावा ये वन प्रकृति का सतुलन बनाये रखते है, मिट्टी का कटाव, रोकते हैं, वायु को शुद्ध करते हैं और पानी बरसाने में सहयोगी हैं। यदि आगे कुछ दशकों में मनुष्य को जीवित रहना है तो इन वनों को बचाना ही होगा। पिछले 10-15 वर्षों में वन-संरक्षण के प्रति सरकार जागरुक हुई है और धीरे-धीरे इससे लाभ होने की आशा है। परन्तु इस काम मे जनसाधारण की जागरुकता और उसका सहयोग अधिक आवश्यक है। जंगलों के अंदर दूर-दूर तक कानून की व्यवस्था मुश्किल हो जाती है और फिर राष्ट्र-सेवा या जन-सेवा कानून से नहीं मनुष्य की प्रवृत्ति से होती है।

13. गुजरात के वन और वनस्पति

महेश चन्द्र जयन्ती लाल कोठारी

वन और वनस्पति पृथ्वी की शोभा व आभूषण है। जीवन दाता वर्षा का निमंत्रण है। दूषित पर्यावरण का नाशक है। प्रकृति के रक्षक एवं प्राणीमात्र का पोषक है। शायद इसलिए ही भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति को देवता का स्थान दिया गया है। अक्षय वट वृक्ष, पीपल और घर-घर में होती हुई तुलसी पूजा, हमारे मन में पौधों के प्रति प्रेम व भक्ति भावना की सूचक है।

गुजरात के वन और वनस्पति के बारे में आज तक अनेक शोध-लेख एवं किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रान्तीय भाषा गुजराती में सन् 1910 और 1926 में क्रमश: बरडा डूंगर की वनस्पति के बारे में और कच्छ की वनस्पति और उनकी उपयोगिता के बारे में सर्व प्रथम पुस्तक लिखने वाले कच्छ के श्री जयकृष्ण इन्द्रजी ठाकर थे। इसी प्रकार सम्पूर्ण गुजरात के वन और वनस्पति के बारे में सन् 1978 में प्रकाशित शाह की 'फ्लोरा आफ गुजरात स्टेट' प्रथम पुस्तक है जिसमें वनस्पति के 155 कुलों के 791 वंश और 1800 जातियों के वैज्ञानिक एवं स्थानिक नाम, वर्णन, प्राप्ति स्थान सम्बन्धी विवरण दिये गये हैं। अन्य पुस्तकों में 'फ्लोरा आफ पावागढ़' (चवान और ओझा 1966), 'फारेस्ट फ्लोरा आफ गुजरात स्टेट' (पटेल 1971) और 'चेकलिस्ट आफ सौराष्ट्र' (सन्तापाउ और जनार्दनन, 1966) उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त डांग जिले और कच्छ की वनस्पति के बारे में जैन, शाह, सूर्यनारायण, पुरी, देशपांडे, कनोडिया राव आदि ने शोध लेख प्रकाशित किये हैं।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा सन् 1981 में प्रकाशित 'रेकोर्डस आफ बोटेनिकल सर्वे आफ इण्डिया के 21वें खण्ड में राघवन, बधवा, अन्सारी और राव कृत विद्वत्तापूर्ण लेख 'ए चेकलिस्ट आफ दी प्लांटस आफ गुजरात' में 155 कुलों में समन्वित 861 वंश, 1964 जातियाँ और 87 विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों की सूची, गुजरात की नई वनस्पति, नये अभिलेखों आदि की टिप्पणी एवं शोध-कार्यों का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। पर्यावरण विभाग द्वारा 1983 में प्रकाशित जैन एवं शास्त्री की सम्पूर्ण भारत के संकट ग्रस्त पौधों से सम्बन्धित पुस्तिका 'मटीरियल्स फार ए कैटलाग आफ थ्रेटेण्ड प्लांटस आफ इण्डिया' 'में गुजरात और राजस्थान' प्रदेश के संकट-ग्रस्त पौधों की जानकारी कोठारी और हजरा कृत लेख में दी गई हैं।

वनस्पतियों एवं शोधकर्ताओं द्वारा गुजरात के विभिन्न भागों से इकट्ठे किये गये नमूने पुणे, बम्बई, वल्लभ विद्यानगर, बड़ौदा, अहमदाबाद स्थित विभिन्न पादपालयों में संग्रहित हैं।

नैसर्गिक भू-रचना, वर्षा, तापमान और जलवायु

भारतवर्ष के पश्चिमी किनारे स्थित गुजरात राज्य, उत्तर में 20° और 25° अक्षांश के बीच एवं पूर्व में 68° और 75° रेखांश के बीच 195984 वर्ग किलोमीटर भौगोलिक क्षेत्रफल वाला एक विशिष्ट भू-भाग है। जिसमें उत्तर-पश्चिम बाजू पर कच्छ की दलदली एवं पर्वतीय विस्तार वाली मरु-भूमि, पश्चिम बाजू पर प्रख्यात गिरनार, बरडा और शेत्रुन्जी की पर्वतमाला युक्त सौराष्ट्र और पूर्व भाग में साबरमती, मही, नर्मदा तापी, सरस्वती आदि नदियां, नदी तट और घाटी है। दक्षिण-पूर्व भाग सह्याद्रि की पर्वत शृंखला से ढका है।

वर्षा : दक्षिण गुजरात के सूरत डांग और वलसाड जिले में सबसे ज्यादा (औसत—1258 से 2205 मि.मी.) और कच्छ में सबसे कम (औसत—420 मि.मी.) वर्षा होती है।

तापमान : अधिकतम तापमान राज्य के सभी भागों में भिन्न है जैसे—दक्षिण में 37.8 सेन्टीग्रेड, जबकि मध्य और उत्तर में 44.4 सेन्टीग्रेड है।

जलवायु : बारिश की कमी के कारण कच्छ-सौराष्ट्र क्षेत्र में सूखा है। राज्य के अन्य भागों में अच्छी बारिश से जलवायु आनन्दप्रद है।

वन और वनस्पति

उपरोक्त प्राकृतिक परिस्थिति के कारण गुजरात में मुख्यतया चार प्रकार के वन मिलते हैं :—

1. **उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वन** : इस प्रकार के वनों में दिसम्बर और फरवरी मई के बीच पत्ते झड़ते हैं। वृक्षों में साग (**टेक्टोना ग्रान्डिस**), हेद (**अडीना कोर्डीफोलिया**), खेर (**अकासिया कुन्डा**) कदम्ब (**मित्रागिना पार्वीफोलिया**,) पलास (**बुटेया मोनोस्पेर्मा**), लता में—तोरन वेल (**जीजिफुस रुगोसा**), चिलार (**अकासिया पीन्नाटा**)।

प्राप्ति : वलसाड, डांग और सूरत 12/

2. **शुष्क पतझड़ वन** : इसके दो उप प्रकार हैं :—

   (क) **साग युक्त वन**—राजपीपला, छोटा उदयपुर (तदेपुर)' पंचमहल और साबरकांठा;

   (ख) **साग विहीन वन**—बनास कांठा और राजकोट।

3. **क्षुपवन (स्क्रब वन** —यहां मुख्यतः स्थाई, मरुनिवासी और कंटकीय वनस्पति मिलती है जैसे—केरडो (**काप्पारिस डेसीडुआ**) शमी (**प्रोसोपिस सीनेरारिआ**,)

बेर (जिझीफ़ुस नुम्मुलारिआ । जलोद्-भिद (हाईड्रोफाइट), मैदानी प्रदेश के स्थायी तालाब व खातक में पानी में उगने वाली वनस्पति मिलती है। जैसे—हौड्रिल्ला, व लिसनारिया, कमल (नेलम्बो नूसीफ़ेरा), जल-शखला (पिस्टिआ स्ट्राटिओइटेस) मार्सीलिया, शैवाल (स्पाइरोगायरा, वोलवोक्स, कारा)। नदी तट के पौधे: निरगुंडी (विटेक्स नेगुन्डो), चादरी (होमोनोइया रिपारिया) मोरिक्स।

प्राप्ति : वलसाड से काठियावाड़ और कच्छ।

4. वायुशिफ (मेनग्रोव) वन : समुद्र के किनारे अम्लीय, पंक युक्त या रेतीली भूमि में भिन्न प्रकार के पौधे मिलते हैं जैसे—तिवार (आवीसेन्निआ मारीना), करोड़ (र्‌हीझोफोरा मूक्रोनाटा), पीलुडी (साल्वाडोरा पेर्सिका)। खडक युक्त समुद्र तट ओखा में दरियाई तृण—अल्वा, सरगास्सुम, कलेडोफोरा रेत युक्त समुद्र के किनारे ऐवं कच्छ की रणसीमा पर शुरु कासुआरिना इक्वीसेटीफोलिया) और प्रोसोपिस जुलीफ्लारा के मानव द्वारा लगाये वन भी मिलते हैं।

आर्थिक व औषधीपयोगी पौधे : पोषण एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी विविध पौधे पाये जाते हैं। खाद्य—धान, दालें, सब्जियां एवं फल राज्य में उगाये जाते हैं। जैसे—ग्वार सिंग (सीआमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा) अरबी (कोलोकासिआ एस्कुलेन्टा), कुमुदिनी (नीम्फोइः न्डका) शैवाल—अल्वा (प्रोटीन); मशरूम-अगारिफस (खाने में, औषध में मसाला—धनिया (कोरिआन्ड्रम साटिवम), राई (बार जुन्‍श्रा), तेल करन्ज (पोन्गामिआ पीन्नाटा) मुंगफली (अराकिस हीपोजेआ) रोसा—घास (सीम्बोपोगॉन मार्टिनिई), रेशा—सावर बोम्बाक्स सेइबा), शण (कोटालारीया जुन्सेआ), नारियल (कोकोस नूसीफेरा), लकड़ी—साग (टेक्टोना ग्रान्डिस), सीसम (डालबेर्जिआ सिस्सू) कासिआ फीस्टुला जंगली उपज—रंग (गरमाडो—कास्सिया फीस्टुला), गोंद—रेभोन, बावूल आकासिआ नीलोटिका)। औषध में इन्द्रजव होलारहेना आन्टीडिसेन्टेरिका हिडा (टर्मिनालिया चिठुला), बेहड़ा (टर्मिनालिआ बेल्लीरिका), आंवला गोखरु (ट्रिबुलुस)

संरक्षण

बढ़ती हुई आबादी के कारण पुनर्वास हेतु प्राकृतिक वनों को काटा जा रहा है। गुजरात में घने जंगल प्रमुखत: डांग में बचे हैं। पौधों के प्राकृतिक निवास स्थान नष्ट होने से वे संकट-ग्रस्त, दुर्लभ या लुप्त प्राय हो रहे हैं। अन्य कारणों में—

1. वनों में रास्ता बनाना (गिरनार, सापूतारा), प्रवासी व उनकी सुविधा के लिए समुद्र के किनारे (ओखा, द्वारिका) एवं अन्य भागों में किये गये विकास ने पौधों को क्षति पहुंचाई है, जैसे सीपेरुस द्वारकेन्सिस।

2. तूफान, तापी, नर्मदा नदी में बाढ़ आदि से पौधे संकट ग्रस्त हुए है जैसे— ब्लुमेआ बोवेई, टेक्रोसिया जामनगरेन्सिस ।

3. पौधों के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार ने भी वनस्पति को संकट ग्रस्त बनाया है । जैसे—मुकुल (कोम्मीफोरा वाइटिई), आर्किड जाति ।

4. बांध का निर्माण, उकईडेम की जल विद्युत परियोजना ।

5. औद्योगीकरण (अहमदाबाद), तेल-शुद्धि करण (अंकलेश्वर), वनों को काट कर शहर बनाना ।

6. शोधकर्त्ताओं द्वारा वानस्पतिक अध्ययन के लिए पौधों को क्षति पहुंचाना जैसे रावण ताड़ (हीफाएने ईन्डिका) ।

वन— वनस्पति की सुरक्षा हेतु सरकार द्वारा वृक्षारोपण का कार्यक्रम जोर-शोर से चल रहा है । पौधों एव जन्तुओं के संरक्षण एवं संवर्धन हेतु भारत में 44 राष्ट्रीय उद्यानों और 207 अभयारण्यों की स्थापना की गई है । गुजरात में 2 राष्ट्रीय उद्यान (जूनागढ़, भावनगर) और 5 अभयारण्य (अहमदाबाद, सुरेन्दर नगर, बनासकंठा, बलसाड, कच्छ की खाड़ी) है । इसमें गिर के शेर और कच्छ के जंगली गधे प्रसिद्ध हैं । अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पौधों के व्यापार पर अंकुश एवं संरक्षण के लिए 'कन्जर्वेशन ऑन इन्टरनेशनल ट्रेड इन इन्डेंजर्ड स्पीशीज ऑफ वाइल्ड फौना एण्ड फ्लोरा' एवं इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्जर्वेशन आफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज' की स्थापना हुई है । प्रतिविषी (आकोनीटम) और आर्किड जैसी वनस्पति के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगाया गया है । भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण द्वारा भी इसी दृष्टि से 'प्रोजेक्ट आन स्टडी सर्वे एण्ड कन्जर्वेशन आफ इन्डेंजर्ड स्पीसीज आफ फ्लोरा' एवं 'मैन एण्ड बायोस्फीयर' परियोजनाएं चल रही हैं । भारत के जागरुक नागरिक की दृष्टि से हमारा भी नैतिक कर्त्तव्य है कि जो वन, वन-सम्पदा हमारी प्राथमिक जरुरत (रोटी कपड़ा और मकान) पूरी करती है उसका संरक्षण, संवर्धन एवं जतन करें ।

आभार

मैं परियोजना फण्ड के लिए अथोरिटी आफ यु० एस० फिश एण्ड वाइल्ड लाइफ सर्विस, वाशिंगटन डी. सी का आभारी हूं । परियोजना के मुख्य संयोजक डा० सुधांशु कुमार जैन और परियोजना के समन्वयक श्री म० रामकृष्ण शास्त्री का सुविधा के लिए तथा डॉ० प्रभात कुमार हजरा, परियोजना अधिकारी का प्रोत्साहन एवं उपयोगी सुझावों के लिए आभारी हूं ।

14. कर्नाटक के वन और वनस्पति

नेत्र पाल सिंह

कर्नाटक राज्य 11° 36′ और 18° 25′ उत्तर तथा 74° 10′ और 78° 35′ पूर्व में स्थित है। इसका कुल क्षेत्रफल 1,92,204 वर्ग किलोमीटर है जो कि 19 जिलों में बटा हुआ है। इस राज्य के उत्तर में महाराष्ट्र, पूरब में आंध्र प्रदेश, दक्षिण में तमिलनाडु, दक्षिण-पश्चिम में केरल, उत्तर-पश्चिम में गोआ तथा पश्चिम में अरब सागर है। पश्चिमी घाट समुद्र तट से कम से कम 8 तथा ज्यादा से ज्यादा 40 किलोमीटर दूर है। कुछ छोटे-2 टापू भी उत्तर व दक्षिण कैनरा जिलों के तट की ओर हैं। इस राज्य के वनों का कुल क्षेत्रफल 35,365 वर्ग कि० मी० है जो कि राज्य के कुल क्षेत्रफल का 18.4% है जबकि आदर्श अनुपात 33.33% कहा गया है।

कर्नाटक राज्य की वनस्पति पर अभी तक कोई ग्रन्थ नहीं छपा है। हुकर पहले वनस्पतिज्ञ थे जिन्होंने यहाँ के कुछ पौधों का अपने ग्रंथ में उल्लेख किया। कुक व टैल्बोट ने उत्तर कैनरा, बेलगांव, धारवाड़ व बीजापुर जिलों के बारे में तथा गैम्बल न दक्षिणी भाग की वनस्पति के बारे में लिखा। राजी (1977) ने यहाँ की वनस्पति पर काफी साहित्य का सृजन किया। जिसे भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के राघवन एवं सिंह तथा राघवन एवं देशपांडे ने और बढ़ाया है।

चार जिलों की वनस्पति पर पुस्तकें छप चुकी हैं जिनमें है—बंगलौर (रामास्वामी व राजी), हसन (सल्दान्हा व निकोलसन), मैसूर (राव व राजी) तथा चिकमंगलूर (योगनरसिम्हन) इत्यादि। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने भी बहुत कार्य किया है जिनमें दक्षिण कैनरा जिले की वनस्पति (अरोरा इत्यादि) और कर्नाटक राज्य के घास कुल पर सिंह इत्यादि के किये गये कार्य सराहनीय हैं। पी०एच०डी उपाधि के लिए दो शोध प्रबंध भी इस राज्य की वनस्पति पर लिखे गये हैं—शिमोगा जिले की वनस्पति (राघवन) तथा पूर्वी कर्नाटक की वनस्पति (सिंह)। हाल ही में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने कर्नाटक राज्य की वनस्पति का विश्लेषण भी प्रकाशित किया है।

इस राज्य की वनस्पति उष्णकटिबन्धीय आर्द्र सदाबहार वनों से लेकर झाड़ियों के वनों तक विभिन्न प्रकार की है। उष्णकटिबन्धीय आर्द्र सदाबहार वन 600—1000 मीटर की ऊंचाई पर दक्षिण—पश्चिमी घाट में पाये जाते हैं। यहां की वनस्पति में इन्डो-मलाया क्षेत्र के कुछ तत्व भी पाये जाते हैं। उत्तर कैनरा से दक्षिण की ओर सदाबहार या अर्धसदाबहार वनों के अवयव और उनका घनत्व भी वर्षा की बहुतायत के साथ भिन्न होता जाता है। यहां 1200—1800 मीटर की ऊंचाई पर पहाड़ी चोटियों के पास बौने व

गठीले प्रकार के पेड़ पाये जाते हैं। इन पेड़ों के चारों ओर घास के मैदान होते हैं। चूंकि घाटियाँ तेज वायु से बची रहती हैं, वहां की वनस्पति बहुत अच्छी होती है जिसे 'शोला' कहते हैं। यहां की पहाड़ी चोटियों की वनस्पति तमिलनाडु की नीलगिरि व पलनी पहाड़ियों से दो तरह से भिन्न होती है—एक तो यहां ऊंचाई कम है दूसरे शीतोष्ण जाति की वनस्पति की कमी है। कर्नाटक की वनस्पति में पौधों की काफी जातियां सीमित क्षेत्री हैं। यहां की वनस्पति को वर्षा के आधार पर निम्न रूप से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. **सदाहरित पट्टी** : यह पट्टी करीब 10—55 कि० मी० चौड़ी है और यहां वर्ष की सबसे ज्यादा औसत वर्षा होती है जो कि 150 से० मी० से ऊपर है। इसको दो भागों में बांटा जा सकता है :

(अ) **आर्द्र सदाबहार पट्टी**—पश्चिमी घाट के साथ की तंग पट्टी पहाड़ों, खड्डों व घाटियों तक फैली हुई है। यहां की चोटियों पर सिर्फ घास के मैदानों के बीच छोटे-छोटे पेड़ पाये जाते है, और घाटियों में अच्छी वनस्पति होती है। करीब 1000 मीटर के ऊपर की चोटियों पर जो पौधे पाये जाते हैं वह समशीतोष्ण जलवायु वाले प्रदेशों के समान होते हैं। इसमें पायेजाने वाले मुख्य पेड़ हैं—**डीप्टेरोकार्पुस ईण्डिकुस, कालोफोइल्लुम अलाटुम, होपेआ वाइटिआना, हो० पार्वीफ्लोरा, ओलेआ डीओइका, लोफोपेटालुम वाइटिआनुम, पोलीआल्थीआ कोएफेआइडेस, मांगीफेरा ईण्डिका, आर्टोकार्पुस हिर्सूटुस** इत्यादि। बूटियां यहाँ बहुत कम पाई जाती हैं। पेड़ बहुत ऊंचे, 30 मी० या इससे भी अधिक होते हैं जिनकी आधार मूल आश्रित व फूली हुई दिखाई देती हैं। यहां बहुत बड़ी-२ बेलें होती हैं। चैम्पियन व सेठ के अनुसार यहां के वन दक्षिणी उष्णकटिबन्धी आर्द्र सदाबहार वन और दक्षिणी उष्णकटिबन्धी अर्द्ध व सदाबहार वन कहलाते हैं।

(ब) **सदाबहार व पर्णपाती वनों की मिश्रित पट्टी**—यहां सदाबहार वृक्षों के साथ पर्णपातीवृक्ष भी पाये जाते है जैसे कि **टर्मिनालिआ पानीकुलाटा, डिओस्पीरोस** की जातियां **लागेरस्ट्रोएमिआ मीक्रोकार्पा, एलाएओकार्पुस सेराटुस मालोटुस फिलीपेन्सिस व इक्सोरा आर्बोरेआ** इत्यादि। जैसे-२ ऊंचाई व वर्षा कम होती जाती है बेंत के स्थान पर बाँस मिलने लगते है।

2. **पर्णपाती वन** :—ये वन करीब 75—150 से० मी० वर्षा वाले क्षेत्र में मिलते हैं। ये सदाबहार वनों के पहले करीब 30 से 50 किलोमीटर तक चौड़ी पट्टी के रूप में मिलते हैं। चैम्पियन और सेठ के अनुसार इस पट्टी के वन दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय आर्द्र पर्णपाती वन कहलाते हैं। इनमें सागवान के अलावा **ग्रेविआ टीलिआएफोलिआ, लागेरस्ट्रोएमिआ मीक्रोकार्पा, डिल्लेनिआ पेन्टागिना, कीडिआ कालीसिना, टर्मिनालिआ** की कई जातियां, **अडीना कोर्डीफोलिआ, प्टेरोकार्पुस मार्सूपिउम, जोलिआ ओलोकार्पा व बोम्बाक्स सेइबा** इत्यादि वृक्ष मिलते हैं।

3. **शुष्क पर्णपाती वृक्षों व झाड़ियों की पट्टी** – यह पर्णपाती वनों की पट्टी के पूर्व बाकी बचे हुए क्षेत्र में होती है। यहाँ वर्षा 35—75 से० मी तक होती है। इसमें दो प्रकार की वनस्पति मिलती है। प्रथम प्रकार में पतझड़ी जातियों के साथ साथ शुष्क जलवायु की जातियां व बाँस पाये जाते हैं। यहां की कुछ किस्में हैं सागवान **बोसवेल्लिआ सेराटा**, आनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ, स्टेर्कुलिआ अरेन्स, अकासिआ चुन्द्रा, **क्लोरोक्सीलम रेलीजिओसुम, डालबेर्जिआ लाटीफोलिआ**, लान्नेआ **कोरोमान्डेलिका, टेर्मिनेलिआ** की जातियां, **बुकनानिआ** लन्जान, सोयामीडा फ़ेब्रीफ़ुगा, आलबीजिआ अमारा, **कास्सिआ फीसटुला**, चन्दन व ग्मालीना आर्बोरिआ इत्यादि। चैम्पियन व सेठ ने इनको दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय शुष्क पर्णपाती वन और दक्षिणी उष्णकटिबन्धीय कटीले व झाड़ियों के वन कहा है। दूसरी शुष्क पट्टी होती है। यहाँ **हार्डविकिआ बीनाटा** मुख्य रूप से पाये जाते हैं। कुछ अन्य वृक्ष है **अकासिआ** की जातियां, बेबपत्र, **एउफोर्बिआ नीवुलिआ फ़लकर्टिआ ईण्डिका, डीकोस्टाचीस सिनेरेआ ज़िज़ीफ़ुस** की जातियां, **काप्पारिस** व **कान्थिउम** की जातियां और **ज़िरोम्फ़ीस स्पिनोसा** इत्यादि। इससे भी खराब भूमि पर छोटी-२ झाड़ियां होती है। जैसे कि– **एउफ़ोर्बिआ** की अनेक जातियां, **डोडोनाएआ बिस्कोसा** व **कास्सिआ आउरीकुलाटा** इत्यादि।

वनस्पति विश्लेषण—कर्नाटक राज्य में कुल मिलाकर विभिन्न वनस्पतियों की 3924 जातियां, उप-जातियां व प्रभेद हैं। जिनके 1323 वंश और 199 कुल हैं। इनमें से आवृतबीजी पौधों में 2888 द्विबीजपत्री जातियां हैं, जिनके 1022 वंश और 161 कुल हैं तथा 1034 एक बीजपत्रीय जातियां जिनके 211 वंश और 36 कुल हैं। अनावृत बीजी पौधों की 2 जातियां भी यहां मिलती है।

राज्य की वनस्पति का सबसे बड़ा कुल घासकुल है। इसमें 115 वंश और 365 जातियां है।

सीमित क्षेत्री, लुप्त एवं लुप्त प्राय: वनस्पति — हिमालय क्षेत्र को छोड़कर सबसे ज्यादा सीमित क्षेत्री वनस्पति दक्षिण भारत में ही पाई जाती है जो कि ज्यादातर पश्चिमी घाट में केन्द्रित है। यहाँ की वनस्पति व वनों को मनुष्य के तात्कालिक लाभ के लिए लगातार काटा जा रहा है। जिससे कि वनों का क्षेत्र कम होता जा रहा है और बहुत सी वनस्पतियां या तो लुप्त हो चुकी है या होने वाली हैं। उदाहरण के लिए **हुब्बार्डिआ हेप्टानेउरोन, बिस्कुम मीसोरेन्स** तो लुप्त हो ही गयी है। कुछ जातियां जैसे **काराल्लुमा ट्रकाटोकोरोनाटा, सीनोग्लोसुम रिचीएई, सेडकास आंगुस्टीसिमा, लेपीडागाथिस क्लावाटा** व **ओइएन्थुस डिस्कोफ्लोइस** बहुत असें से एकत्रित नहीं की गयी है। अत: लुप्त प्राय हैं। कुछ जातियां जैसे सेरोपेजिआ फाण्टा-**टीका, जिम्नेमा कुस्पीडाटुम, ओइएन्थुस** व **रोटाला स्ट्रिकीआई** इत्यादि बहुत लम्बे अरसे के बाद दोबारा एकत्रित की गई है। इस राज्य में 1950 के बाद से करीब 2 वंश व 36 जातियों की नई खोज की जा चुकी है जिससे कि पता लगता है कि हमारी इस राज्य की

वनस्पति की जानकारी लगातार बढ़ती जा रही है । इसीलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि जो जातियां लुप्त हो रही हैं उनके बचाव व संरक्षण के तरीके अपनायें जायें ।

आभार

लेखक डा० सु० कु० जैन, निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग हावड़ा का अत्यन्त आभारी है जिन्होंने ये लेख लिखने का सुझाव देकर यह अवसर प्रदान किया तथा प्रदत्त सुविधाओं के लिए डा० अ०द० शर्मा, उप निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण पुणे का भी आभार व्यक्त करता है ।

15. तमिलनाडु के वन और वनस्पति

ब्रह्म दत्त शर्मा

तमिलनाडु भारतीय प्रायद्वीप के पूर्वी भाग के दक्षिण में 8°5′ और 13°′ 35′ उत्तर तथा 76°15′ एवं 80°20′ पूर्व के बीच स्थित है। इसके उत्तर में कर्नाटक तथा आन्ध्रप्रदेश, पूर्व में बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में हिन्द महासागर, दक्षिण पश्चिम में अरब सागर तथा पश्चिम में केरल स्थित हैं। तमिलनाडु का क्षेत्र 1,30,069 वर्ग कि० मी० है। इसका समुद्र तट 990 कि० मी० हैं। रामेश्वरम् तथा मनार द्वीप समूह भी इसके ही भाग हैं।

राज्य को प्रमुख रुप से दो प्राकृतिक भागों में बांटा जा सकता है,—

1. पूर्वी समुद्री तट के मैदान—यह एक चौड़ी पट्टी है जो समुद्र के साथ-साथ बंगाल की खाड़ी से धीरे-२ उभरती जाती है। इस भाग को चार उपभागों में बांटा जा सकता है—कोरोमन्डल मैदान, कावेरी डेल्टा के बलोड मैदान, दक्षिणी शुष्क मैदान और धर्मपुरी सेलम, उत्तरी आरकोट तथा मदुराई जिलों के भीतरी मैदान।

2. पर्वतीय पश्चिमी भाग—इस भाग में कोयम्बतूर, मदूराई, नीलगिरी, धर्मपुरी एवं सेलम, जिले शामिल हैं। पूर्वी घाट आन्ध्र प्रदेश से तमिलनाडु में होते हुए दक्षिण में नीलगिरि से जा मिलता है। पश्चिमी घाट जिसे सह्याद्रि के नाम से भी पुकारा जाता है राज्य के पूरे पश्चिम भाग में 80 से 160 किलो मीटर की चौड़ाई में फैला हुआ है। पश्चिमी घाट में उष्णकटिबन्धीय सदाबहार, अर्धसदाबहार, पर्णपाती वन तथा उच्चकटिबंधीय घास के मैदान हैं। घाटियों में तथा अन्य स्थानों पर कृषि भूमि तथा मानव बस्तियां हैं कन्याकुमारी जिले से उत्तर की ओर पहाड़ियों की ऊंचाई बढ़ती जाती है। नीलगिरि में डोडाबेटा नामक स्थान पर पर्वत की ऊंचाई 2,637 मीटर हो जाती है। पूर्वी तथा पश्चिमी घाटों के संगम पर स्थित पठार को नीलगिरि पठार कहते हैं। पश्चिमी घाट में एक 25 कि० मी० लम्बी दरार है जिसे पालघाट दर्रा कहते हैं। यह केरल तथा तमिलनाडु में खुला मार्ग बनाता है।

पर्वतीय चोटियों को छोड़कर तमिलनाडु का वातावरण साधारणतया गर्म एवं शुष्क है। यहां समान्य उत्तर पूर्वी एवं दक्षिणी-पश्चिमी मानसून होता है और इनसे प्रतिवर्ष 649 से 1910 मि० मी० वर्षा होती है। समुद्रतटीय तथा भीतरी क्षेत्रों की वर्षा की मात्रा में बहुत अंतर हैं।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के पुनर्गठन तथा दक्षिणी क्षेत्र की स्थापना (10 अक्टूबर 1955) के बाद वन व वनस्पति शोध को नई दिशा मिली। उन क्षेत्रों में जहां सर्वेक्षण या

तो हुआ नहीं था या कम हुआ था विशेष ध्यान दिया गया। सन् 1960 और 1982 के बीच इस क्षेत्र से तीन नये वंश तथा अड़तीस नई जातियां और बहुत से नये पौधों का प्रकाशन हुआ। लगभग 250 शोधपत्र तथा 3 पुस्तकें प्रकाशित हुई। लुप्त प्राय जातियों की ओर विशेष ध्यान दिया गया। हाल ही में तमिलनाडु के वनस्पति विश्लेषण पर एक पुस्तक[1] भी छपी है। जलवायु ऊंचाई तथा भूमि की विभिन्नता के कारण तमिलनाडु के वन और वनस्पति भी विभिन्न प्रकार के हैं। इन्हें मुख्यतया चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है समुद्रतटीय वनस्पति, द्वीपों पर पाई जाने वाली वनस्पति, मैदानी क्षेत्र की वनस्पति तथा पर्वतीय वनस्पति।

1. **समुद्रतटीय वनस्पति** तमिलनाडु का पूर्वी तटवर्तीय क्षेत्र उत्तर में पुलीकट झील से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पश्चिमी तट, कन्याकुमारी से पवार तक फैला हुआ है।

समुद्रतटीय वनस्पति में मुख्यत: **सीपेरस आरेनारिउस, गिसेकिआ फार्नासिओइडेस कालाटोपिस जिजान्टेआ, कारीस्सा स्पिनारुम, सोस्सुस क्युआड्रान्गुलरिस, क्लेरोडेन्ड्रुम इनेर्मे, बोरास्सुस फ्लाबेल्लीफेर, कालोफील्लुम इनोफील्लुम, मीम्सूसाप्स एलेन्गी, पान्डानुस** आदि मिलते हैं।

यहां पर कत्थई तथा हरे रंग के शैवाल भी मिलते हैं। समुद्री आवृत बीजियों में **सीमोडोसेआ रोटुन्डाटा, क्लोरिस बार्बाटा, फील्लान्थुस मडेरास्पाटेन्सिस, अरिस्टोलोकिया ब्राक्टेआटा, पॉलीकारपाएआ कोरिम्बोसा, सापन्डुस एमार्गीनाटुस, हालोपीलुम मूक्रोनाटुम** तथा **स्पोरोबोलुस ट्रेमुलुस** इत्यादि।

नदियां तथा समुद्र के संगम के आस-पास मिलने वाली वनस्पति को मुहानों पर मिलने वाली वनस्पति कहा जाता है। शिम्पर ने इन्हें 'कच्छ वनस्पति' नाम दिया है। चैंम्पियन तथा सेठ ने इन्हें 'ज्वार दलदल वन' कहा है। इस वनस्पति में **सेरिआप्स डेकान्ड्रा, राइज़ोफोरा आपीकुलाटा, बारिन्डटोनिआ रासेमोसा, डेरिस ट्रीफोलिआटा, सोन्नेराटिआ अपेटला,** आदि जातियां मिलती हैं।

तिरुनलवेल्ली के उत्तर की ओर तटवर्तीय क्षेत्रों मे तटवर्तीय क्षेत्रों में तटवर्तीय उष्ण-कटिबंधीय शुष्क सदाबहार वन पाये जाते हैं। इनमें वृक्षों की उंचाई 9-12 मीटर तक होती है। इसमें साधारणतया **अटालान्टिआ मोनोफील्ला, एहरेटिआ आस्पेरा, मुकूना आट्रोपुर्पुरेआ** इत्यादि जातियों के पौधे पाये जाते हैं **विस्कुम ओरिएन्टालिस** जैसे पराश्रयी पौधे तथा **वान्डा' टेस्सेल्लाटा** जैसे आर्किड भी मिलते हैं।

2. **द्वीपों पर पाई जाने वाली वनस्पति**-कैलादाई, शिंगले, हरे, चर्च तथा रामेश्वरम द्वीप की वनस्पति वलयक वनस्पति जैसी होती हैं। इन पर मुख्यतया **कोर्डिआ सुबकोर्डाटा,**

---

1. नायर एन. सी. व ए. एन. हेनरी 1983. **फ्लोरा आफ तमिलनाडु-इन्डिया एनालिसिस,** कोयम्बतूर।

हालोपीरम मुक्रोनाटुम, सूरिआना मारीटिमा, स्पिनीफेक्स लीट्टोरेउस इत्यादि जातियां पाई जाती हैं।

बड़े द्वीपों की वनस्पति में **इपोमोएआ पेसकाप्राए, हेसबिउम पोर्टुलाकास्ट्रम, स्काएवोला प्लूमिएरी, बोरास्सुस फ्लाबेल्लीफेर,** कालोट्रोपिस प्रोसरा, **डोडोनाएआ विस्कोसा, पांडानुस, थेसपेसिआ पोपुल्नेआ,** इत्यादि मिलती हैं। दलदली भागों में **आट्रीप्लेक्स, एरेमोपोगान, सालिकोर्निआ, आवीसेन्निआ,** आदि वंशों की जातियां मिलती हैं। **ब्रुगुइएरा, सेरिआप्स, पेम्फिस,** तथा **रहीजोफोरा** वंशों की वनस्पतियां भी पाई जाती हैं।

3. **मैदानी क्षेत्र की वनस्पति** यह पहाड़ियों की ढालों, मैदानी भाग तथा पथरीले तटवर्तीय क्षेत्र में पाई जाती हैं। इन्हें साधारणतया 'झाड़दार वन' कहा जाता है। ये जंगल चेंगलपुट, उत्तरी-दक्षिणी आरकोट, पुडडुकोटाई, तिरुचिरापल्ली, तिरुनलवेल्ली तथा सेलम एवं कोयम्बटूर जिलों में पाये जाते हैं। इन जंगलों में वृक्षों की ऊंचाई अक्सर 10 मी० से अधिक नहीं होती तथा पेड़ पौधे अक्सर कंटीले होते हैं। अधिकतर पौधे तथा लतायें मरुद्भिदी होती हैं। यहां पर **अकासिआ चुन्द्रा, अ० नीलोटिका** उपजाति **ईन्डिका, आल्बीजिआ** अमारा, डालबेर्जिआ स्पिनोसा, **लीमोनिआ असीडिस्सिमा तथा जिजीफुस ओएनोप्लिआ** आदि वृक्ष पाये जाते हैं। झाड़ियां अक्सर भटकीले स्वभाव की होती हैं। इनमें कुछ के नाम हैं–**कडाबा फ्रूटीकोसा, काप्पारिस जेइलानिका, कारीस्सा कारन्डास्टा, फ्लैकूर्टिआ ईन्डिका** आदि। लताओं में **कार्डिओस्पेर्मुम सेरीपेजिआ,** सीसाम्पेलोस पारेइरा इत्यादि मिलती हैं। वर्षा ऋतु में **आप्लूडा मूटिका, आरिस्टिडा सेटासेआ, ब्लुमेआ, सिम्बोपोगान** तथा **ग्लीनुस** आदि वंशों के पौधे मिलते हैं।

4. **पर्वतीय वनस्पति** इसको मुख्यत: छ: भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। 1. **शुष्क पर्णपाती वन**–इनमें वृक्ष जातियां अधिकतम पतझड़ी होती हैं। इनके नीचे घने पौधे उगे होते हैं। उपरिरोही तथा फर्न जातियां कम मिलती हैं। इन वनों में मुख्यत: **आल्बीजिआ अमारा, आनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ, शोरेआ राक्सबर्घिई** आदि मिलते हैं. **डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस** आदि बांस की जातियां मिलती हैं। झाड़ियों में अधिकतम **अकासिआ** की जातियां **डोडोनाएआ विस्कोसा, इक्सोरा आर्बोरेआ** आदि मिलती हैं। लताओं में **बाउहीनिया वाहलिई कोम्ब्रेटुम, हिप्टागे बेन्गालेन्सिस** आदि मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त **आरुन्डीनेला बुल्बोस्टीलिस सीम्बोपोगान ग्लीनुस थेमेडा** तथा **ट्रीबुलुस** वंशों के पौधे भी मिलते हैं।

2. **दक्षिणी भारतीय आर्द्र पर्णपाती वन**–इन वनों के वृक्ष पतझड़ी तथा बहुत ऊंचे होते हैं। नीचे के भागों में कभी-कभी सदाबहार पौधे भी मिलते हैं जिससे कि इनके सदा-बहार वन होने का भ्रम भी हो जाता है। यहां उपरिरही पौधे कम मिलते हैं। यहां अधिकतर **बोम्बाक्स सेइबा, डिल्लेनिआ पेन्टागिना, ग्रेविआ, लागरस्ट्रोएमिआ, मिट्रागिना पार्वीफोलिआ, जिजीफुस क्सीलोपीरुस, बाम्बूसा अरुन्डीनासेआ** तथा **सीकास सीर्सिनालिस** आदि मिलते हैं। झाड़ियां में **हेलीक्टेरेस इक्सोरा** अधिक मिलता है।

3. **अर्द्ध सदाबहार वन** : इस प्रकार के वन पहाड़ियों एवं पर्वतों की ढलानों पर मिलते हैं। इन वनों में उपरिरोही आर्किड अधिक होते हैं। परन्तु शैवाक तथा मॉस अधिक संख्या में नहीं मिलते। यहां लतायें तथा बेंत अधिकतम होते हैं। इन वनों में **आर्टोकार्पुस हेटेरोफील्लुस, होपेआ पार्वीफ्लोरा, आक्टीनोडाफ्ने, अग्लाइआ, बिस्चोफिआ ट्रीफोलिआटा** तथा **सिम्प्लोकॉस** आदि मिलते हैं। झाड़ियों में **ग्लीकोसमिस, इक्सोरा** तथा **स्ट्रोबिलान्थेस** लताओं में **एन्टाडा, कालीकोप्टेरिस, डिओस्कोरेआ** आदि होती हैं। बांस भी अधिक संख्या में होते हैं।

4. **आर्द्र सदाबहार वन** :—इस प्रकार के वन जलवायु की चरम अवस्था को प्रदर्शित करते है। ये वन मुख्यतः अन्नामलाई, कन्या कुमारी तथा तिरुनलवेली पहाड़ियों में पाये जाते हैं। यहाँ पर कुछ जातियों के वृक्षों की ऊंचाई 45 मी० या इससे भी अधिक होती है। उपरिरोही आर्किड एरीयड्स, फर्न, मॉस, तथा शैवाक अधिक संख्या में मिलते हैं। जल स्रोतों के पास **कालामुस, पान्डानुस,** तथा पाम मिलते हैं। यहाँ कुछ वृक्ष जैसे **अग्लाइआ, कालोफोल्लुम अपेटालुम, मान्गीफेरा ईन्डिका, आक्टिनोडाफ्ने, एलाए-ओकार्पुस** पाये जाते हैं। **ट्रीफर्न, सीआथेआ,** भी कभी कभार जलस्रोतों के पास मिलता है। आर्किडों में **सोएलोगिने, डेन्ड्रोबिउम, ओबेरोनिआ, फोलिडोटा,** वंशों की जातियाँ भी मिलती हैं।

5. **शोलाओं पर पाये जाने वाले वन** :—यह वन अन्नामलाई, नीलगिरि, तथा पलनी आदि में 1000 मी० की ऊंचाई से ऊपर की पहाड़ियों की आर्द्र घाटियों में पाये जाते हैं। यहाँ के वृक्ष ऊंचाई में 12 मी० से कम, छोटे तने गोल आकार के उपरी भाग वाले तथा सदा बहार होते है। तने व टहनियाँ उपरिरोही मॉस तथा शैवाकों से लदी होती है। इन वनों की बाहरी सीमाओं पर प्रकाश की अधिक आवश्यकता वाले वृक्ष तथा झाड़ियाँ हैं। पर ये कभी भी शोलाओं की भीतरी सीमाओं में नहीं जाते। शोलाओं के प्रमुख वृक्ष हैं—**मीकोट्रोपिस, इलेक्स डेन्टीकुलाटा, इ० व्हाइटीआना, सीजीजिउम, वाक्सीनीउम, वीबेरनुम** आदि। शोला की बाहरी सीमाओं पर **फोटीनिआ इन्टेग्रीफोलिआ, र्‌होडोडेन्ड्रोन नीलगिरिकुम,** तथा **टर्नस्ट्रोमेआ, जापोनिका** पाये जाते हैं।

6. **घास स्थल** :-ये दो प्रकार के होते हैं। निम्नस्तरीय घास स्थल जो 1000 मी० तक की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। इनमें मुख्य घास **अरुन्डिनेला सीलिआटा कीसीपोगान, ओरिएन्टालिस, सीम्बोपोगान, कोलोराटुस, एराग्रास्टिस एउलालिआ, इस्चाएमुम** और **थेमेडा** की जातियाँ होती हैं। इनमें **मुरडुलेआ** तथा **फेनिक्स** वंशों के वृक्ष होते हैं। झाड़ियों में **हेलिक्टेरिस पुरपुरास्सेंस** तथा **उवारिआ** और छोटे पौधों में **बिओफीटम कोटालारिआ, सीआनोटिस, रिह्न्कोसिआ** आदि वंशों के पौधे मिलते हैं। आर्किड्स में **हाबेनारिआ** तथा **पेक्टेइलिस जीआन्डेआ** मिलते हैं।

2. **उच्च स्तरीय घास स्थल** : इसमें घास, बूटियाँ तथा झाड़ियों के भिन्न अनुपात का मिश्रण होता है और पर्वतों की शिखाओं पर मिलती है। इसमें मुख्य घास **आरुन्डिनेल्ला पुरपुरेआ ब्रोमुस, रामोसुस कीसोपोगान, जेइलानिकुस, डीकान्थिउम, इस्डोक्लोआ, इसाक्ने**

बोर्निओइम तथा **ट्रीपोगोन ब्रोमोइडस** पायी जाती हैं। घास की इन जातियों के साथ-साथ **अरारकालिस, इलूमेव्या, काम्पानुला, ड्रोसेरा, लाक्टुका ओलबेकिया, ऊट्रीकुलारिया, विओला** तथा **वेर्नोनिया** वंशों की जातियां भी पाई जाती हैं।

शोलाओं और उच्च स्तरीय घास स्थल के बारे में अनेक विचारधाराएं प्रचलित हैं। शोलाओं को जीवित जीवाणु वन भी कहा जाता है। प्राचीन काल में ये वन इस क्षेत्र में प्रधान थे। परन्तु जलवायु के परिवर्तन एवं मानव के प्रकृति में हस्तक्षेप के कारण आज जिन स्थानों में ये पाये जाते हैं, वे बहुत कम हैं। इन वनों को इन स्थानों के बाहर उत्पत्ति असम्भव है। यदि किसी कारण वश ये नष्ट हो गये तो हमेशा के लिए इस भूमि से लुप्त हो जायेंगे।

जलीय तथा उपजलीय वनस्पति— झीलों, तालों, जलाशयों तथा दलदली भूमि पर भी अपनी एक निश्चित किस्म की वनस्पति होती है। इनमें से कुछ मुख्य वनस्पतिय **अपोनोजेटोन, सेराटोफोल्लुम, मोनोकोरिया, नेलुम्बो** आदि की जातियाँ हैं। जलीय पर्णांगों में **अजोला, सेरायेप्टेरिस, आइसोएटेस** आदि होते हैं।

विदेशी तत्व—प्रोसोपीस चिलेन्सिस, लाण्टाना कामारा, उपजाति **आकुलेआटा** तथा **पारकिन्सोनिआ** आदि विदेशी पौधे तमिलनाडु में सर्वत्र फैल गये हैं। इनके अतिरिक्त **पार्थेनिउम हिस्टेरोफोरस, मिकानिआ** आदि इस क्षेत्र में फैलते जा रहे हैं।

'जीन पूल' संरक्षण तथा पर्यावरण—ऊपर दिये गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि तमिलनाडु के वन तथा वनस्पति जीवन सम्पन्न तथा विविध हैं, वैज्ञानिकों का अनुमान है कि तमिलनाडु में पेड़ पौधों की लगभग 7,000 जातियां उपलब्ध हैं। वर्तमान युग में जिन अनाज, दालों, सब्जियों व फल आदि का हम सेवन करते हैं वे सब जंगली जातियों से ही उत्पन्न हुए हैं। काफी समय तक ये नई जातियां स्वादिष्ट, पौष्टिक, रोगरहित तथा अधिक उत्पादन वाली फसलें देती हैं, परन्तु इनकी लगातार खेती होने के कारण कुछ समय पश्चात् ये जातियां कमजोर तथा रोगग्रस्त हो सकती हैं। ऐसी परिस्थिति में इनको फिर से प्रबल करने के लिए तथा रोग प्रतिरोधी उपजातियां तैयार करने के लिए जंगली जातियों की सहायता ली जाती है। भारत के अनेक भागों में ऐसे स्रोत हैं—जैसे तमिलनाडु में गन्ने की जंगली जातियां। सरकार अब इस उद्देश्य से जीन 'सेन्क्युरीज' की स्थापना कर रही है तथा उन क्षेत्रों में जहां कृषि के लिए उपयुक्त जातियों के स्वजाति सम्बन्धी पाये जाते हैं, के संरक्षण का प्रबन्ध किया जा रहा है।

आज केवल तमिलनाडु का 16% भाग ही जंगलों से ढका है जबकि यह लगभग 33% होना चाहिए। ऐसा व्यापार के लिए अधिक पौधे काटे जाने के कारण, झूम कृषि आदि के कारण वनस्पतियों पर बढ़ते दबाव के कारण हुआ है। जन्तुओं तथा पेड़ पौधों की बहुत सी जातियां लुप्त हो चुकी हैं या उनके लुप्त होने का भय है। इनकी रक्षा के लिए भारत सरकार ने देश के अनेक भागों में अभयारण्य, राष्ट्रीय उद्यान तथा बायोस्फियर रिजर्व्स की स्थापना की है। तमिलनाडु में इस समय छः अभयारण्य तथा एक राष्ट्रीय उद्यान है।

16. अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह के वन और वनस्पति

रमेश चन्द्र श्रीवास्तव

अतुलनीय वनस्पति संपदा से धनी "अंडमान-निकोबार" द्वीप-पुंज भारत के कोरोमंडल कोस्ट से लगभग 1,176 कि० मी० दूरी पर बंगाल की खाड़ी में ६° एवं 14° उत्तर तथा 92° एवं 94° पू० की भौगोलिक सीमाओं के बीच स्थित है। इस द्वीप-पुंज में कुल द्वीपों की संख्या 319 है तथा समस्त धरातल का क्षेत्रफल 829000 हैक्टेयर है इस द्वीप-पुंज के उत्तरी छोर पर स्थित "लैंडफाल द्वीप" वर्मा के "केप निग्रेयिस" से 190 कि० मी० दूर है तथा दक्षिणी छोर पर स्थित "ग्रेटनिकोबार-द्वीप सुमात्रा के "बांदा ईह" से 150 कि० मी० दूर है। उत्तर में "लैंडफाल द्वीप" से लेकर दक्षिणी छोर पर स्थित "लिटिल अंडमान" तक 464 कि० मी० की लम्बाई एवं औसतन 24 कि० मी० की चौड़ाई में विस्तृत अंडमान द्वीप समूह के सम्पूर्ण धरातल का क्षेत्रफल 6340 वर्ग कि० मी० है। इसके 291 द्वीपों में प्रमुख है: 'उत्तरी' 'मध्य' 'दक्षिणी' तथा "लिटिल" अंडमान द्वीप तथा अंडमान सागर में स्थित ज्वालामुखीय द्वीप-बैरन एवं नारकोण्डम। इसकी तुलना में निकोबार द्वीप समूह में मात्र 28 द्वीप हैं जो उत्तर में "कारनिकोबार" से दक्षिण में "ग्रेटनिकोबार" तक 293 कि० मी० लम्बे, 57 कि० मी० चौड़े तथा 1953 वर्ग कि० मी० के क्षेत्र में विस्तृत है। इन दोनों द्वीप समूहों को विभाजित करता हुआ एक 155 कि० मी० चौड़ा तथा 10° अक्षांश पर स्थित समुद्री-जल मार्ग है जिसे "टेन डिग्री चैनल" कहते हैं। अछूती वनस्पति संपदा के साथ ही साथ यह द्वीप-पुंज प्रसिद्ध है इसके बीहड़ वनों में बसने वाली आदिवासी जनजातियों के लिए जिनमें से मात्र "निकोबारी" जनजाति को छोड़कर बाकी सभी के मात्र कुछ सदस्य (24-250 लोग) ही इस धरती पर हैं। अंडमान समूह के प्रथम-वासियों (नेग्रोतों) में मध्य एवं दक्षिणी भाग में बसने वाली जनजातियां 'जरवास' जिसके मात्र 250 सदस्य जीवित हैं, तथा उत्तरी भाग में पाई जाने वाली 'सेण्टोने लिस' जिसके लगभग 100 सदस्य जीवित हैं अत्यन्त खूंखार तथा एकाकी जीवन यापन करने वाली हैं। इनकी तुलना में "लिटिल" अंडमान में पाई जाने वाली मात्र 112 सदस्यों वाली "ओंगे" जनजाति तथा कभी पूरे अंडमान पर छाई हुई "अंडमानी" जनजाति जिसके मात्र 24 सदस्य जीवित हैं, काफी हद तक सीधी तथा मित्रतापूर्ण हैं।

निकोबार द्वीप समूह में पाई जाने वाली दो जनजातियों में से 'निकोबारी' तो आधुनिक सभ्यता के काफी निकट तथा संख्या में भी पर्याप्त है (18000) जबकि "शोम्पन" नामक जनजाति मात्र ६२ सदस्यों की है। ये लोग अभी भी "ग्रेटनिकोबार" के सुदूर कोनों में पड़े रहते हैं।

यद्यपि ये सभी आदिवासी इन द्वीपों पर हजारों वर्षों से रहते हैं परन्तु अभी भी खेती आदि नहीं करते। ये अपने भोजन आदि के लिए प्रकृति पर ही आश्रित रहते हैं।

इनका मुख्य कार्य जंगल से केवड़े के फल, विभिन्न प्रकार के कंद मूल, केला, शहद इत्यादि एकत्रित करना, मछली तथा सूअर का शिकार करना है।

इस द्वीप-पुंज का संपूर्ण भू-भाग पहाड़ी हैं। इसकी 720 मीटर ऊंची "सैडिल पीक" (अंडमान) एवं 670 मी० ऊंची "थुइलर" (निकोबार) चोटियां उच्चतम शिखरों में हैं।

इन द्वीपों की जलवायु सामान्य रूप से "उष्णकटिबंधीय गर्म-नम श्रेणी की है। यहां साधारणतया तापक्रम 22° से 32° सेण्टीग्रेड के मध्य होता है। औसत सापेक्ष आर्द्रता 82% प्रतिशत तथा वार्षिक वर्षा 300-380 सेण्टी मीटर तक होती है। उष्णकटिबंधीय नम जलवायु के कारण इन द्वीपों पर प्रचुर सघन वनस्पतियां पाई जाती हैं और यही कारण है कि इन द्वीपों का लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र (7,46,000 हैक्टेअर) उष्णकटिबंधीय सदाबहार या उपसदाबहार वनों से ढका है। इन 319 द्वीपों में से मानव का प्रवेश अभी तक मात्र 38 द्वीपों तक ही हो पाया है अतः अन्य द्वीपों का "फ्लोरा" अभी भी अछूता एवं अज्ञात है। इन द्वीपों पर पाए जाने वाले वनों पर ऊंचाई का कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखता है। केवल 720 मीटर ऊंची "सैडिल-पीक" पर कुछ उप उष्णकटिबंधीय वनस्पतियां भी देखने को मिलती हैं।

इन द्वीपों में प्राप्य वन और वनस्पतियों को मुख्यतया दो वर्गों में रखा जा सकता है। (1) समुद्रतटीय क्षेत्र (लिटोरल जोन) में पाए जाने वाले वन एवं वनस्पति तथा (2) अंतः स्थलीय क्षेत्र मे पाये जाने वाले वन।

लिटोरल जोन में तीन प्रकार की वनस्पतियां पाई जाती है वायुशिफ वन (मैंग्रूव वन) वेला-वन (टाइडल फोरस्ट) तथा पुलिन-वन (बीच फॉर्मेसन्स)।

समुद्रतट का वह क्षेत्र जहां पौधों की जड़ें अधिकतर समुद्रीजल से ढकी मिट्टी में होती है, मैंग्रूव वनों (चित्र-1) का क्षेत्र होता है। इन द्वीपों में लगभग 15 प्रतिशत (250000 एकड़) क्षेत्र ऐसे ही वनों से आच्छादित हैं। इनमें उगने वाली मुख्य वनस्पतियां हैं : **रहीजोफोरा मूक्रोनाटा, ब्रूगुइएरा जिम्नोरहीजा, सोन्नेराटिआ** एवं **आवीसेन्निआ** की जातियां।

दूसरी श्रेणी के वन जिन्हें वेला-वन (टाइडल फारेस्ट) कहते हैं समुद्र-तटीय मेखला की बलुई मिट्टी में पाये जाते हैं। यह क्षेत्र प्रायः ऊंची लहरों से डूबता रहता है। इस क्षेत्र में नमी तो पर्याप्त मात्रा में होती है परन्तु 'मैंग्रव वनों' की अपेक्षा लवणता कम होती है। इन वनों में उगने वाली मुख्य वनस्पतियां है : **हेरीटिएरा लिट्टोरालिस, बारिन्ग्येनिआ, रासेमोसा, एक्सकोएकारिआ, अगालोच्चा, फेनिक्स, पालूडोसा** आदि।

समुद्र-तटीय क्षेत्र में पाए जाने वाले तीसरे प्रकार के पुलिन-वनों (बीच फार्मेसन्स चित्र-2) में प्रमुख वनस्पतियां हैं: गुलाबी फूलों वाली वल्लरी (क्रीपर **इपोमोएआ** पेसकाप्राए जो समुद्र के अग्रभाग की तरफ घनी चटाई के रूप में उगी रहती हैं। इसके पीछे उगती है **स्काएवोला** तथा **पान्डानुस** (केवड़ा) की जातियां। इन सब के पीछे विकास होता है **पोंगामिआ, पीन्नाटा, हेरनान्डिआ, पेल्टाटा** तथा **बॉरिन्गटोनिआ** की जातियों सदृश छोटे-छोटे वृक्षों का।

अतः स्थलीय क्षेत्रों में मुख्यतया सघन 'सदाबहार वन', चारगाह एवं कहीं-कहीं जलीय वनस्पतियाँ पाई जाती हैं।

सदाबहार वन : इस प्रकार के वन उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहां की मिट्टी में नमी रोकने की क्षमता बहुत अधिक होती है। इन वनों में विभिन्न प्रकार के विशाल वृक्ष पाए जाते हैं जिन पर अनेक आरोही एवं उपरिरोही पादप लदे होते हैं। अंडमान में पाए जाने वाले इस श्रेणी के वनों में **डिप्टेरोकार्पुस** (गुर्जन), **प्लेनकोनिआ** तथा सबसे ऊपरी मंजिल तक पहुंचते हैं परन्तु निकोबार क्षेत्र में "गुर्जन" कभी नहीं मिलते वरन **आर्टोकार्पुस**, कालोफोल्लुम एवं **टर्मिनालिआ** इत्यादि वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। इन वनों की दूसरी मंजिल का निर्माण करते हैं **गार्सीनिआ क्सान्थोचीमुस गा० अन्डमानिका गा० स्पेसिओसा, बुकनानिआ ड्रिमोकार्पुस मीरिस्टका अन्डमानिका** इत्यादि वृक्ष। इनके नीचे और भी कम ऊंचाई वाले वृक्षों में मुख्य है **आनेक्सागोरिआ** जिसके साथ-साथ **आनसिस्ट्रोक्लाडुस एक्सटेन्सुस, ग्नेटुम स्कान्डेन्स,** सार्कोस्टोमा **वाल्लिचिई कालामुस पालुस्ट्रिस डीनोक्लोआ अन्डामानिका** तथा अन्य अनेक लताएं भी बहुतायत से पाई जाती है। कहीं-कहीं पर **आन्थोसेफालुस कदंबा** (कदंब) भी देखा जाता है।

पर्णपाती वन : इस श्रेणी के वन जिनमें शुष्क मौसम में पत्तियां थोड़े समय के लिए गिर पड़ती है, मुख्यतया पहाड़ियों पर पाये जाते हैं जहाँ की मिट्टी को रोकने की क्षमता बहुत ही कम होती है। परन्तु ऐसे वन मात्र अंडमान द्वीप समूह में ही पाए जाते हैं। ऐसे वनों के मुख्य वृक्ष हैं, **प्टेरोकार्पुस डलबर्जिओइडेस** (एक उपयोगी वृक्ष जो अंडमान द्वीप समूह के अतिरिक्त और कहीं नहीं पाया जाता है) **कानारिउम आल्बीजिआ लेब्बेक लान्नेआ कोरोमन्डेलिका टर्मिनालिआ बीअलाटा, टे० मान्निई बोम्बाक्स इन्सिग्ने लागेरस्ट्रोएमिआ हीपोलेउका, स्टेरकुलिआ, काम्पानुलाटा, चुकासिआ टाबुलारिस** आदि। इन प्रमुख वृक्षों, जो कि पर्णपाती वनों को सबसे ऊपरी मंजिल बनाते हैं, के नीचे द्वितीय मंजिल वाले वृक्ष है : **स्टेर्कुलिआ विल्लोसा गारुगा** पीन्नाटा **सेमेकार्पुस कुर्जिई से० प्रेनिई** एव **जान्थोक्सीलुम बुडरुंगा अलसोडिआ बेंगालेन्सिस कान्थिउम पासिलिपेस लीनोसिएरा पार्किन्सोनिई इक्सोरा ग्रान्डीफ्लोरा कालामुस अन्डामानिकुस आकासिआ पीनान्टा** इत्यादि प्रमुख लतायें पायी जाती है।

अंडमान द्वीप समूह के विभिन्न क्षेत्रों में तथा कहीं-कही निकोबार द्वीप समूह में भी अच्छे चरागाह (ग्रासलैंड) पाए जाते हैं जिनमें **इम्पेराटा सीलिन्ड्रिका, क्लोरिस बार्बाटा, थेमेडा, हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस** आदि घासें मुख्य रूप से पाई जाती हैं। इन घास के मैदानों की उत्पत्ति प्राकृतिक वनों के विध्वंस के बाद हुई है।

अंतस्थलीय क्षेत्र में जहाँ कहीं भी छोटे-बड़े गड्ढे, तालाब या धान के खेत होते हैं उनमें प्रायः **इपोगोएआ आकुआटिका** (करेमुआ) **नीम्फाएआ** (कुमुदिनी) **सेराटोप्टेरिस हीड्रिल्ला**, **लेम्ना** या **हीग्रोफिला** की जातियाँ तथा '**नीइटेला**' 'कारा' इत्यादि '**शैवाल**' उग आते हैं।

भूगर्भीय प्रमाणों के अनुसार ये द्वीप समूह वस्तुतः बर्मा के आराकम योमा से 'लिटिल अंडमान' तक तथा 'सुमात्रा' से कार निकोबार तक फैली पर्वत मालाओं की चोटियाँ है जिनका अधिकांश भाग आज समुद्र में डूब चुका है। इस भूगर्भीय इतिहास का इन द्वीपों पर पाए जाने वाली वनस्पतियों से गहरा संबंध है। अंडमान का 'फ्लोरा' बर्मा एवं थाईलैंड से मिलता जुलता है जबकि निकोबारीय 'फ्लोरा' सुमात्रा एवं मलाया के 'फ्लोरा' से अधिक समानता रखता है।

विगत हजारों वर्षों से ये द्वीप समुद्री विलगाव के कारण अलग-अलग से पड़े हुए हैं जिसके कारण यह क्षेत्र 'सीमित क्षेत्री' पौधों में बहुत धनी है। विभिन्न ब्रिटिश वैज्ञानिकों एवं शौकिया वैज्ञानिकों के प्रशंसनीय प्रयासों के आधार पर अभी तक जिन-जिन द्वीपों का वनस्पतिक सर्वेक्षण हो पाया है उनमें लगभग 220 ऐसी दुर्लभ जातियां ज्ञात हो पाई हैं जो मात्र इन द्वीपों के अन्यत्र कहीं भी नहीं पाई जाती हैं। इनमें मात्र 130 जातियां ही भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों द्वारा खोजी जा सकीं। शेष 90 जातियाँ या तो समाप्त हो चुकीं हैं या समाप्तोन्मुख हैं। यूं तो भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की 1955 में पुर्नस्थापना के बाद 1959 से ही इन द्वीपों पर प्राप्य वनस्पतियों की खोज प्रारम्भ हो गई थी परन्तु 1972 में पोर्टब्लेयर में क्षेत्रीय कार्यालय की स्थापना के बाद और अधिक प्रगति हुई जिसके फलस्वरूप मात्र 11 वर्षों के अंतराल में 85 द्वीपों का वनस्पतीय सर्वेक्षण पूरा कर लिया गया। इन सर्वेक्षणों के दौरान सर्वे के वैज्ञानिकों को 30 पौधों की जातियाँ ज्ञात हुई जो विश्व के लिए नई हैं। इनके अतिरिक्त 150 जातियां ऐसी मिली जो अब तक हमारे देश में ज्ञात नहीं थी। वनस्पतिज्ञों के अनुमान के अनुसार इन द्वीपों पर आवृत-बीजी पौधों की लगभग 2200 जातियाँ पाई जाने की संभावना हैं।

यहां की वनस्पति की सम्पन्नता को देखते हुए 1978 से 1981 के बीच 'ग्रेटनिकोबार' द्वीप की वनस्पतियों एवं यहां पर बसने वाली 'शोम्पन' जनजातियों के दैनिक जीवन में वनस्पतियों के विभिन्न प्रकार के उपयोगों के बारे में गहन अध्ययन मैन ऐन्ड बायोस्फेयर प्रोग्राम के अंतर्गत "सर्वेक्षण" के वैज्ञानिकों द्वारा किया गया। इस अध्ययन के दौरान आवृतबीजियों की 700 जातियां तथा टेरिडो-फाइट्स की 96 जातियों का अध्ययन किया गया। तथा पौधों के अनेक ऐसे उपयोगों का ज्ञान हुआ जो अभी तक ज्ञात नहीं थे। इन द्वीपों की वनस्पति की सीमित क्षेत्रीयता तथा अन्य क्षेत्रों की वनस्पति से पर्याप्त भिन्नता होने के कारण इसका महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। इसके संरक्षण का दायित्व हम सबका नैतिक कर्तव्य है।

आभार

लेखक डा० नम्बियाथ पुठानपुराइल बालाकृष्णन, उपनिदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण मध्य क्षेत्र, इलाहाबाद का आभारी है, जिन्होंने इस लेख से संबंधित अनेक जानकारियाँ दी तथा चित्र उपलब्ध कराए।

17. भारत के अनावृत बीजी पादप

प्रेम चन्द्र श्रीवास्तव

अपने अति आकर्षक पर्ण समूह और गरिमामय रूपाकार के कारण अनावृत बीजी वृक्षों को उपवनों की शोभा के महत्वपूर्ण अंग के रूप में मान्यता दी जाती रही है। तुलनात्मक दृष्टि से आवृतबीजियों की अपेक्षा कम लाभप्रद होते हुए भी इनकी आर्थिक उपयोगिता असंदिग्ध है। प्रस्तुत लेख में भारत में अनावृतबीजी पादपों के वितरण और उनके आर्थिक महत्व की संक्षिप्त विवेचना की गई है।

अनावृत बीजी पौधों का जन्म इस धरती पर आज से लगभग 265 मिलियन वर्ष पूर्व उत्तरपैलियोजोइक काल में हुआ था। अपनी लम्बी विकास यात्रा में इनकी अनेक जातियां कालकवलित हो गई और अनेक परिवर्तित या अपरिवर्तित रूप में आज भी विश्व के सुरम्य वनों में सुरक्षित है। वर्तमान समय में विश्व में जीवित अनावृतबीजी पादपों के 70 वंश और 725 जातियों का उल्लेख मिलता है। एम० बी० रायजादा और के० सी० साहनी के अनुसार इनके 16 वंश और 53 जातियां भारत में पाई जाती हैं। प्रसिद्ध वनस्पति विज्ञानी पंचानन माहेश्वरी केवल 14 वंशों को ही मान्यता प्रदान करते हैं।

हिमालय की बर्फीली जलवायु वाले क्षेत्रों में इनके घने वन पाये जाते हैं। अनावृत बीजियों के 4 प्रमुख गण हैं—**साइकेडेल्स**, **कानीफरेल्स**, **एफीड्रेल्स** और नीटेल्स।

इनमें साइकेडेल्स गण के वृक्ष भारत में अनेक स्थानों में प्राकृतिक रूप से उगने के साथ ही साथ अलंकरण के लिए भी लगाये जाते हैं। **सीकास** इस गण का प्रतिनिधि पौधा है। भारत में इसकी 4 जातियां पाई जाती हैं। **सी० बेडोमिई** आन्ध्र प्रदेश के शुष्क कुडप्पा पहाड़ी क्षेत्रों में प्रचुरता से उपलब्ध है। दक्षिणी भारत के शुष्क पतझड़ी वनों में **सी० सीसिनालिस** का आधिक्य है। पश्चिमी भारत में **सी० पेक्टिनाटा** और अण्डमान एवं निकोबार द्वीपों में **सीकास रूम्फिई** के सघन वन मिलते हैं और **सी० पेक्टिनाटा** की मुलायम कोंपलों का प्रयोग असम की जनजातियां खाने के लिए करती है। दक्षिण भारत में **सी० सीसिनालिस** की पत्तियों से चटाइयां भी बुनी जाती हैं। **सीकास रूम्फिई** के पकाये हुए फल अण्डमान के निवासियों में खाद्य के रूप में बहुत लोकप्रिय हैं। **सीरेवोलुटा** यूं तो जापान का मूल निवासी है किन्तु भारत में इसे उपवनों में सज्जा को आकर्षक बनाने के लिए लगाया जाता है। इसका केवल मादा पौधा ही पाया जाता है। सी. **सीसिनालिस** के तने और बीजों के मण्ड (स्टार्च) से साबूदाने का निर्माण होता है। **सीकास रूम्फिई** से उपलब्ध राल (रेजिन) घावों पर औषधि के रूप में प्रयुक्त होता है।

कोनीफरेल्स गण के 11 ऐसे वंश हैं जिनमें से **पोडोकार्पस** को छोड़कर अन्य सभी हिमालय के क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनमें से कुछ तो पूर्वी एवं पश्चिमी हिमालय के क्षेत्रों में दूर-दूर तक फैले हैं जबकि कुछ दूसरे विशेष प्रकार के स्थानों में ही सीमित रहते हैं। **पीनुस राक्सबर्घिई** समुद्र की सतह से 1000 मीटर ऊपर उगता है जबकि **पी० वालिचिआना, सेड्रुस देओदारा और आबिएस पिन्डरोव** के वन 2500 मीटर की ऊंचाई पर पाये जाते हैं। **आबिएस** की 4 जातियां भारत में मिलती हैं—दो पूर्वी और दो पश्चिमी हिमालय की पहाड़ियों पर। इनकी लकड़ी स्लीपर या चट्टी बनाने के काम आती है और 2600 से लेकर 3400 मीटर की ऊंचाई तक पश्चिमी और मध्य हिमालय तथा नेपाल की ओर तक फैले पाये गये हैं। **आबिएस डेलावायी** नामक 20 मीटर तक लम्बे वृक्ष 2750 मीटर से 3350 मीटर की ऊंचाई पर पीरी की ढालों पर उगते हैं। **आबिएस** की लकड़ी हल्की होने के कारण वायुयान और ग्लाइडरों के निर्माण में भी उपयोगी है। **आबिएस डेन्सा और त्सुगा डुमोसा** दार्जलिंग में 2750-3350 मीटर की ऊंचाई पर उगता है। **सेड्रुस डेओदारा** ही मात्र ऐसा वृक्ष है जो पश्चिमी हिमालय में 1200-3300 मीटर ऊंचे स्थलों पर उगता है। विशाल आकार वाले इन वृक्षों में 700 वर्षों तक जीवित रह सकने की क्षमता होती है। इसकी लकड़ी बहुत बढ़िया किस्म की होती है क्योंकि इसकी लकड़ी पर दीमकों और कवकों का कोई प्रभाव नहीं होता। यह इमारती लकड़ी के रूप में भारत में सर्वत्र उपयोगी है। यही नहीं, इसकी लकड़ी से अनेक प्रकार की औषधियाँ भी प्राप्त की जाती हैं। यह मूत्रवर्धक और पाचक होने के साथ श्वास, मूत्ररोगों, बवासीर और गठिया में लाभदायक होता है। **कूप्रेस्सुस टोरुलोसा** भी **सेड्रुस देओदारा** के साथ उगता है। यह हरियाणा के छम्ब से लेकर नेफा के 1800-2800 मीटर आका पर्वत श्रेणियों पर पाया जाता है। **कूप्रेस्सुस टोरुलोसा** के ऊंचे सुरम्य वन चूना-पत्थर वाले शुष्क पर्वतों पर पाये जाते हैं। **कूप्रेस्सुस सेम्पेर्वीरेन्स और कूप्रेस्सुस फूनेब्रिस** भारतीय उपवनों में शोभाकारक झाड़ियों के रूप में लगाये जाते हैं। **कूप्रेस्सुस सेम्पेर्वीरेन्स** की पत्तियों से निकले तेल में कृमिनाशक गुण विद्यमान होते हैं।

सेफालोटाक्सुस मान्निई और सेफालोटाक्सुस ग्रिफिथिई पूर्वी हिमालय में छोटे वृक्षों के रूप में पाये जाते हैं। **जूनीपेरुस** की भारत में 6 जातियाँ पूर्वी एवं पश्चिमी हिमालय की घाटियों में छोटे वृक्षों या झाड़ियों के रूप मे उगती पायी जाती है। इनकी टहनियाँ आमतौर से मन्दिरों में सुगन्धित धूप देने के लिए जलाई जाती हैं। ये 2900-4900 मीटर की ऊंचाई पर पाई जाती है। **लारिक्स ग्रिफिथिआना** अकेला ऐसा पतझड़ी कोनीफर है जो सिक्किम, तिब्बत, भूटान, मिश्मी पर्वत पर साधारणतया 3000 मीटर की ऊंचाई पर उगता है। कभी-कभी यह **पी वालिचिआना** या **आबिएस** और **त्सुगा** के साथ मिश्रित रूप से भी उगता है।

पीसेआ स्मिथिआना पश्चिमी हिमालय में **आबिएस पिन्डरोव** के साथ उगता है

और इसके वृक्षों की ऊंचाई 60 मीटर तक होती है। इसकी लकड़ी काष्ठ उद्योग में और विशेष रूप से रेलवे लाइनों को जोड़ने वाली काष्ठ पट्टिकाओं (स्लीपर) के रूप में प्रयुक्त होती है।

भारत में पीनुस की 5 जातियां पाई जाती हैं। ये सभी हिमालय की पर्वत श्रेणियों पर प्रचुरता से उगकर उसे सुखद हरीतिमा प्रदान करती है। इनमें **पी. राक्सबर्घिई, पी० जेरार्डिआना** और **पी० वालिचिआना** हिमालय की पश्चिमी पर्वत श्रृंखलाओं की विभिन्न ऊंचाइयों पर तथा **पी० इन्सुलारिस** और **पी० आरमान्डी** पूर्वी हिमालय क्षेत्र में बहुलता से पाई जाने वाली जातियाँ है। 'चीड़ के जनप्रचलित नाम से पहचाना जाने वाला **पी० राक्सबर्घिई** समुद्र तल से 700-1000 मीटर की ऊंचाई पर पाया जाने वाला वृक्ष है। काष्ठ उद्योग में, विशेषतया इमारती लकड़ी के तौर पर चीड़ की लकड़ी का उपयोग सामान्यतया सर्वत्र होता है। इससे प्राप्त किए जाने वाले तारपीन के तेल और रेजिन के कारण भी इस जाति विशेष का आर्थिक महत्व बहुत है। चीड़ द्वारा प्राप्त राल (रेजिन) का उपयोग औषधीय रूप में क्षुधावर्धक और पाचक तथा फोड़े फुन्सियों पर 'पुलटिस' के लिए भी किया जाता है। **पी. वालिचिआना** जाति के वृक्ष अपेक्षाकृत अधिक ऊंचाई पर और दूर-दूर तक उगते हैं। इनसे भी रेजिन निकाला जाता है तथा इन वृक्षों द्वारा प्राप्त होने वाली लकड़ी गुण में **पी. राक्सबर्घिई** की अपेक्षा अधिक अच्छी है। हिमाचल प्रदेश के किल्बा और रामपुर बुशार नामक स्थान से लेकर किश्तवार घाटी तक **पीनुस** की दूसरी जाति **पी. जेरार्डिआना** के विस्तृत वन हैं। यह वृक्ष उपरोक्त दो जातियों की अपेक्षा निचले स्तर पर समुद्र तल से मात्र 300-500 मीटर की ऊंचाई में ही उगते हैं। इनके बीज चिलगोजा के नाम से पौष्टिक सूखे मेवे के रूप में खूब पसन्द किये जाते हैं। इन बीजों से निकाले गये तेल का उपयोग घावों और फोड़ों पर मलहम के रूप में होता है। एक अन्य जाति **पीनुस इन्सुलारिस** खासिया और चिटगांग (चटगांव) पहाड़ियों की उपज है और इनकी लकड़ी और पत्तियों से प्राप्त तेल के अतिरिक्त यह उस ऊंचे और निर्जन प्रदेश के निवासियों के लिए ईंधन के काम भी आता है।

पोडोकार्पुस की भारत में दो जातियां पाई जाती है। **पी. नीरीफोलिया** और **पो. वालिचिआनुस**। इनमें से प्रथम अण्डमान द्वीप समूह और पूर्वी हिमालय क्षेत्रों में अधिकता से पाया जाने वाला आकर्षक वृक्ष है जो सामान्यतया सदाबहार वनों की शोभा है और 100 मीटर तक की ऊंचाई पर उगता है। दूसरी जाति के वृक्ष असम तथा दक्षिण में नीलगिरि के समीपवर्ती प्रदेश के निवासी है। इसकी लकड़ी का उपयोग साधारणतया काष्ठ उद्योग में और विशेषकर नावों की पतवार के लिए होता है। इनके अतिरिक्त **कालीफरित्स** गण की भारतीय श्रेणियों में एक है **टाक्सुस बक्काटा** जो हिमालय के पूर्वी और पश्चिमी दोनों ही भागों पर उगता है और 1800 मीटर तक की ऊंचाई पर छायादार, नम स्थान इसके प्रिय निवास है। खासी, जयंतिया और नागा पहाड़ियों

में प्रचुरता से पाये जाने वाले इन वृक्षों की लकड़ी टिकाऊ होती है। **टाक्सुस बक्काटा** की लकड़ी का प्रयोग काष्ठ उद्योग और पेन्सिल उद्योग में होता है। लद्दाख में इनकी छाल का प्रयोग चाय जैसे पेय के रूप में होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी वृक्ष हैं जो विदेशी थे पर अब भारत भूमि के निवासी बन चुके हैं। **क्रिप्टोमेरिया जापोनिका** नामक वृक्ष यद्यपि जापान से आयातित है पर पिछली सदी में ही दार्जिलिंग में इनके घने वन लगाये गये थे और उनसे प्राप्त हलकी लकड़ी आज बहुत मूल्यवान समझी जाती है। इसके द्वारा सस्ते किस्म के कागज का निर्माण किया जाता है। इसने हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों में भी निवास बना लिया है। **कूप्रेस्सुस काश्मेरिआना** भी मूलतः विदेशी (तिब्बत) वृक्ष है पर अब भारत में बहुलता से उगाया जाता है। **कालिट्रिस कूप्रेसी** नामक आकर्षक झाड़ीदार पौधा भी नीलगिरि क्षेत्र में आस्ट्रेलिया से लाया गया था। **थूजा ओक्सीडेन्टालिस, आराउकारिआ कन्निंघामिई और आ० कुकिई** उत्तरी भारत में चित्ताकर्षक अलंकरण हेतु उगाये जाते हैं।

एफिड्रेल्स नामक गण का प्रतिनिधित्व करने वाले वंश की भारत में 6 जातियाँ पाई जाती हैं। इनमें से **एफेड्रा नेब्रोडेन्सिस और ए० जेरार्डिआना** से निकाले जाने वाले 'एफेड्रीन' नामक औषधीय तत्व के कारण इन पौधों का व्यापारिक, आर्थिक महत्व बहुत बढ़ जाता है। यह औषधि 'हेफीवर', जुकाम, श्वास रोगों और दमा के लिए बहुत प्रभावकारी पाई गई है। उपरोक्त दोनों जातियाँ तथा **ए० इन्टेरमेडिआ, ए रेगालिआना एवं ए० साक्साटीलिस** सभी हिमालय की ऊंचाइयों पर पनपने वाले पादप हैं। एक अन्य जाति **ए० फोलिआटा** राजस्थान के शुष्क मरुस्थलीय क्षेत्र में फैलने वाली झाड़ी है। यहां यह बताना भी उपयुक्त होगा कि **एफेड्रा** की जातियों को जिनमें **ए. जेरार्डिआना** प्रमुख है, अनेक वनस्पति विज्ञानियों ने प्राचीन भारत के विख्यात सोम पादप के रूप में स्वीकारा है।

ग्नीटेल्स नामक गण के प्रतिनिधि वंश **ग्नेटुम** का भारत में प्रतिनिधित्व करने वाली 5 जातियाँ हैं जो विभिन्न क्षेत्रों में उगती हैं। देश के पश्चिमी तटों, उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश के सदाबहार वनों में पायी जाने वाली **ग्नेटुम उला** एक बड़े तने वाली आरोही लता है। **ग्ने० कोन्ट्राक्टुम** एक आरोही झाड़ी है जो नीलगिरि और केरल में पाई जाती है तथा **ग्ने. मोन्टानुम** असम, सिक्किम और आंशिक रूप से उड़ीसा के भूभागों का पौधा है। **ग्ने. लाटीफोलिउम** अण्डमान द्वीप समूह के निवासी वृक्ष हैं जब कि **ग्ने० नेमोनो** एक ऊर्ध्वगामी झाड़ी है जो उत्तरी भारत के अधिक वर्षाक्रान्त वनों में पनपती हैं। इनमें **ग्ने० कोन्ट्राक्टुम और ग्ने० लाटीफोलिउम** का उपयोग मत्स्य विष के रूप में किया जाता है। **ग्ने० कोन्ट्राक्टुम** के बीजों का तेल खाने के लिए तो प्रयोग में आता ही है, गठिया रोग में मालिश के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। **ग्नेटुम उला** के बीजों से प्राप्त तेल भी गठिया के रोगों की दवा है साथ ही दीपक जलाने के लिए

भी प्रयुक्त होता है। न्ने० मोन्टानुम के बीजों को पकाकर तथा इनकी हरी पत्तियों का सूप या सब्जी बनाकर खाद्य रूप में भी उपयोग का प्रचलन है। इसके रेशे से कागज का निर्माण किया जाता है और मजबूत रस्सियां और जाल भी बुने जाते हैं।

अनावृत बीजी पादपों का पर्यावरण के संतुलन में भी असीम योगदान है। भूमि क्षरण को रोकने के साथ ही ये वृक्ष पशु-पक्षियों के आवास और चारे की पूर्ति करते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में इनके मनुष्य द्वारा निर्मम विनाश ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। इनकी उपयोगिता को देखते हुए हमें इनके कटाव को रोकने और नये वनों को लगाने की ओर विशेष ध्यान देना होगा।

18. कुछ रोचक अपुष्पी पौधे-पर्णांग

राम दास दीक्षित

पर्णांग अपने सुन्दर एवं नाना प्रकार की विलक्षण पत्तियों के आकार-प्रकार के स्वरूप के कारण सदियों से सारे संसार में उद्यान विदों व पादप प्रेमियों के आकर्षण के केन्द्र बिन्दु रहे हैं। भारत में पर्णांग उत्तर से लेकर पूर्वी हिमालय, पश्चिम घाट, नीलगिरी, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, बिहार के पहाड़ों एवं घाटियों में बहुतायत से पाये जाते हैं। विश्व में इनके 425 वंश तथा 10,000 से ज्यादा जातियां पाई जाती हैं। आज के राजनीतिक भारत में इनके 189 वंश तथा 1000 से ज्यादा जातियां होने की सम्भावना है। बेड्डोम (1883) ने इसी क्षेत्र से मात्र 466 जातियां वर्णित की हैं।

यह सत्य है कि 20वीं शताब्दी में पर्णांग वर्गिकी चिंग (1940), कोपलैण्ड (1947), होट्टुल्म (1954-1982), पीची सरमोली (1959-1982) के शोध प्रकाशनों के पश्चात् एक क्रान्तिकारी परिवर्तन का दौर आया और भारत के वनस्पतिज्ञ भी इससे अछूते न रह सके। भारत में मेहरा (1939-1964), चण्डीगढ़ विश्व-विद्यालय; एब्राहम (1962) त्रिवेन्द्रम विश्वविद्यालय, नायर एवं कौर (1964-1983) राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ, पाणिग्रही, एवं दीक्षित, 1965-72 भारतीय, वनस्पति सर्वेक्षण, इलाहाबाद ने मुख्यत: इस दिशा मे कार्य किया। फिर भी दूसरे देशों की तुलना में भारत जैसे विशाल देश में पर्णांग का अध्ययन वास्तव में उपेक्षित सा ही रहा। अंधेरे, सीलन भरे घरों एवं बगीचों के कोने में सुन्दरता बिखेरने वाले इन पौधों की उपयोगिता में यदि एक दृष्टि डालें तो इनका महत्व उजागर हो जाता है। शताब्दियों से जाने-अनजाने में नाना प्रकार की लोक कथाओं और अन्य उपयोगों में पर्णांग आते रहे हैं जिनमें से कुछ भारतीय पर्णांगों का वर्णन यहां प्रस्तुत है।

बहुत सी लोक परम्पराओं के बीच सीरिया तथा दक्षिण-पूर्व आस्ट्रिया में सबसे ज्यादा चर्चित कथा है कि पर्णांग के बीज रखने वाला मनुष्य 30 से 40 आदमियों की शक्ति रखता है, गड़े हुए धन की जानकारी रखने में सक्षम होता है एवं पशु-पक्षी की भाषा समझने में समर्थ होता है।

'डाक्ट्राइन आफ सिग्नेचर्स' मध्य युग में अत्यन्त लोक प्रिय हुआ, जिसके अन्तर्गत औषधि, ज्योतिष, वनस्पति और अन्ध-विश्वास का समावेश होता है और ऐसे बहुत से पौधों का नाम उनके आकार-प्रकार के आधार पर पड़ा जैसे आस्लेंनिउम, ग्रीक शब्द पर

पड़ा जिसका अर्थ तिल्ली होता है और यह विश्वास रहा कि **आस्प्लेनिउम**, तिल्ली (स्प्लीन) की बीमारियों को दूर करने में सक्षम हैं क्योंकि इनकी पत्तियों का आकार तिल्ली की भाँति होता है। इसी प्रकार **आडिग्रान्टुम कापील्लुस वेनेरिस** जिसका प्रचलित नाम 'मेडेम हेयर फर्न' है के काले वृन्त के कारण सिर के बाल काले एवं गंजापन दूर करने में उपयोगी समझा गया।

पहले रंजक के रूप में पर्णांग का उपयोग बहुतायत से होता रहा, वर्तमान में संश्लेषित रंजक बनने के कारण इनका उपयोग नहीं के बराबर रह गया। अब एक बार फिर से स्वाभाविक वस्तुओं में लोगों का विश्वास एवं रुचि जागृत हुई है और पर्णांग रंजक के रूप मे उपयोग किये जाने लगे हैं। जैसे **प्टेरीडिउम** से मूंगिया हरे रंजक, अमेरिका एवं आयरलैण्ड में बनाये जा रहे हैं।

स्फेनोमेरिस चीनेन्सिस की युवा पर्णांग पत्रों (फ्रान्ड्स) को कुचल कर के लाल रंग प्राप्त होता है, वह भारत एवं हवाई के आदिवासी एवं देहाती अंचलों में रंगने के काम आ रहा है।

आडिआन्टुम कापील्लुस **वेनेरिस** का अर्क सुगन्ध के रूप में 'हेयर टानिक' में डाला जाता है।

पर्णांग की पत्तियाँ एवं प्रकन्द भारत तथा अन्य देशों में सलाद बनाकर, सब्जी बनाकर या उबालकर खाने के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। आज भी आदिवासी अंचलों तथा कुछ को कलकत्ता, दार्जिलिंग एवं शिलांग ऐसे शहरों के बाजारों मे बिकता हुआ देखा जा सकता है। **आम्पेलोप्टेरिस प्रोलीफेरा, सेराटोप्टेरिस थालिक्ट्रोईडेस, डीकानोप्टेरिस लीनेआरिस, लेउकोस्टेगिआ ईम्मेर्सा, ओफिओग्लोस्सुम रेटीकुलाटुम, मार्सीलिआ मिनुटा, टेक्टोरिआ कोआडुनाटा** की युवा पत्तियों को सलाद, सब्जी या दाल में भाजी के रूप में डालकर भारत, नेपाल, बंगलादेश, चीन व मलाया में बड़े चाव से खाया जाता है।

जीते जागते पर्णांग के पौधे ता सुन्दरता बिखेरते ही हैं, पर इसके अतिरिक्त इनके वृन्त भी सुखाने के पश्चात सजावट में प्रयोग किये जाते हैं। जैसे कि **आडिआन्टुम, पेडाटुम, ब्लेक्नुम ओरिएन्टाले, लीगोडिउम फ्लेक्सुओसुम, ओस्मुण्डा रेगालिस, प्लेउरोफ्रिनारिआ कोरोनेन्स**, टोप, छाता, डोलची, मछली पकड़ने का जाल आदि बनाने के लिए अमेरिका, इंग्लैण्ड, मलाया, भारत आदि देशों में काम आते हैं। **डिक्रोनोप्टेरिस लीनेआरिस, ग्लेइचेनिआ लोन्गीसिमा** के वृन्त एवं प्राक्षो (रेकिस) की कलमें स्कूली बच्चों के लिए बाजार तक में धड़ल्ले से बिकती हैं।

आन्जिओप्टेरिस एवेक्टा, सीबोटीउम बारोमेट्ज, बारोमीकुम, सीआथेआ की जातियों का गूदेदार राइजोम एवं मुख्य तना पूर्वी भारत, मलाया में कच्चा अथवा पकाकर खाया जाता है

औषधि के रूप में भी चरक के समय से ही पर्णांग का उपयोग हो रहा है। **आडिआन्टुम कापील्लुस वेनेरिस** एवं **मार्सीलेआ मिनुटा** का 'चरक संहिता' में उल्लेख है। **सेलाजीनेल्ला ब्रीओप्टेरिस** के बारे में ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि तुलसीकृत रामचरित मानस में हनुमान द्वारा लाई गयी लक्ष्मण बूटी जो संजीवनी के नाम से जानी जाती है, यही है। **आक्टीनोप्टेरिस राडिआटा** (संस्कृत-मयूरशिखा) के पौधों का क्वाथ स्त्रियों के मासिक धर्म अथवा गर्भपात के समय अत्यधिक रक्तस्राव को बन्द करने के लिए रामबाण का काम करता है। पौधों को उबालकर इसके पानी से सिर धोने पर वेस्ट-इन्डीज मे स्त्रियाँ बालों की रुसी एवं जुआं समाप्त करने में सक्षम हैं। **आडिआन्टुम लुनुलाटुम** की फांड्स का क्वाथ मूत्र-वर्धक, भूख वर्धक और आंव में लाभप्रद है। यूनानी चिकित्सा प्रणाली में **आस्प्लेनिउम आडिआन्टुम नीग्रुम** का पौधा स्त्रियों द्वारा परिवार नियोजन हेतु काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त इनकी पत्तियों का उपयोग तिल्ली की बीमारियों को दूर करने में होता है। **बोट्रीचिउम टेर्नाटुम** का पौधा चीन में आंव दूर करने में सहायक है। **सेराटोप्टेरिस थालिक्ट्रोईडेस** की पत्तियों को कुचलकर ताजे कटे हुए स्थान पर रक्त बन्द करने एवं त्वचा की बीमारियों में चीन एवं मलाया में प्रयोग किया जाता है। **चेईलान्थेस टेनुइफोलिआ** की धूनी बच्चों एवं युवा स्त्रियों को नजर लगने पर संथाली आदिवासी प्रयोग में लाते हैं। **ड्रीओप्टेरिस ओडोण्टोलोमा** का राइजोम भारत में पेट के कीड़े निकालने के काम में लाया जाता है। **लीकोपोडिउम सेर्नुउम** के पौधों को पानी में उबालकर स्नान करने से गठिया में लाभ होता है। **हेल्मिन्थोस्टाचिस जेलानिका** (हिन्दी-कामराज) का राइजोम का क्वाथ शक्ति वर्धक, एवं आंव रोकने के लिए भारत, आंखों के रोगों में जावा, पत्तियों का रस जीभ के छाले ठीक करने में भारत, राइजोम का रस फिलिपाइन में मलेरिया बुखार में उपयोगी समझा जाता है। **लीगोडिउम फ्लेक्सुओसुम** के पौधों को सरसों के तेल में उबालकर जोड़ों पर मालिश करने से गठिया दूर होता है। **पोलीस्टीकुम स्क्वारोसुम** का राइजोम भारत में 'निरविसी' नामक ट्रेड मार्क से बाजार में मिलता है, जो बरसाती कीड़ों, बिच्छुओं द्वारा काटने पर विष नाशक के रूप में उपयोगी है। **पिटीरोग्रामा कोलोमेलानोस** पौधों का क्वाथ गुर्दा की खराबी में फिलिप्पाइन, इसकी पत्तियों की चाय फ्लू, उच्च रक्तचाप एवं कफ नाशक के रूप में ट्रिनिडाड में प्रयोग किये जाते हैं।

एक्युइसेटुम आर्वेन्सिस के पौधे मृदा जल में सोने की मात्रा का पूर्वानुभास कराने के रूप में सूचक का कार्य करते हैं।

ओस्मुन्डा रेगालिस, सीआथेआ की जातियाँ **मान्जीओप्टेरिस एवेक्टा** के मुख्य तने आर्किड उगाने तथा निर्यात के लिए उपयुक्त बहत आधार के रूप में भारत में काम में लाये जाते हैं। इसके कारण जंगलों से ये पौधे प्रायः लुप्त से हो रहे हैं।

इसी तरह डीकानोप्टेरिस, ग्लेइचेनिआ, क्रीप्टोप्टेरिस प्टेरिस थीट्टाटा, प्टेरिस वालिचिआना इत्यादि की जातियाँ पहाड़ी भागों में जंगलों के अंचलों में रहने वाले लोगों के द्वारा चारे, जलाने के लिए तथा खाद के रूप में बहुतायत से काम में निरन्तर लाये जा रहे हैं। इसके कारण ये पौधे विलुप्तता के कगार पर पहुंच गए हैं। आज की सर्वाधिक आवश्यकता है कि लोगों को शिक्षित किया जाय कि बड़े पौधों को ही नहीं बल्कि छोटे पौधों को भी बचाना अति आवश्यक है और यह कार्य जंगलों में स्थित वन विभाग के लोग कर सकते हैं।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि पर्णांग सुन्दरता एवं सजावट के अतिरिक्त मानव जीवन के उपयोग में सदियों से काम में लाये जा रहे हैं पर जाने-अनजाने में भारत में ये उपेक्षित रहे है। हाँ, हर्ष का विषय है कि भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में भारत सरकार ने अपुष्पीय पौधों के अध्ययन के लिए एक अतिरिक्त अनुभाग 1962 में खोल दिया है, जिसमें कई वैज्ञानिक आज कार्यरत हैं पर उनकी संख्या पुष्पी पौधों की तुलना में नगण्य है। इस सबके बावजूद भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में पर्णांग पर पाणिग्रही, सुब्रह्मण्यम्, नायर, दीक्षित, घोष, विश्वास, घोषाग्री एवं बालाकृष्णन, इत्यादि ने सराहनीय कार्य किया है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में लगभग २०० से अधिक शोध पत्र प्रकाशित हुए हैं। इस समय एक शब्द कोष तथा भारत भर में पाई जाने वाली जातियों का लेखा जोखा प्रकाशनाधीन है। ये अपने आप में एक अनूठा और भारत में इस स्तर का प्रथम प्रकाशन है।

केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय में पर्णांग का चीन, योरुप आदि से बड़ा संग्रह है और होल्डुम ने इस संग्रह की तुलना सोने की खान से की है। यहां पर अनुमानतः 400 वंश, 3000 से अधिक जातियों के 20000 से ज्यादा पौधे संग्रहित हैं। इनमें काफी मात्रा में प्ररुप और अधिकृत नमूने भी है जिनसे कार्य करने की सुविधा है। आज की सबसे प्रथम आवश्यकता है इन पौधों के विशेषज्ञ द्वारा विशेषकर अरुणाचल प्रदेश, पूर्वी भारत, सिक्किम, पश्चिमी घाट, अण्डमान एवं निकोबार के द्वीप समूहों में सर्वेक्षण की, जिससे आशा है कि इन सर्वेक्षणों से पर्णांग की जातियों की संख्या और ढेर सारे विलुप्त प्राय पौधों का नया संग्रह हो पायेगा। शिक्षण के क्षेत्र में भी **एसोलोटुंम नुडुम** एवं **मार्सीलिआ** की आकारिकी आज की चर्चा का विषय है, अतः पर्णांग शिक्षण उपयोगिता और सुन्दरता में अपना अलग महत्व कायम किये हुए हैं और वनों में इनका संरक्षण अति आवश्यक है क्योंकि पर्णांग का किसी जंगल में बहुतायत से मिलना उस जंगल की समृद्धि का द्योतक होता है।

19. भारतीय शैवाक की वर्तमान स्थिति, प्रत्याशा, कठिनाइयां और महत्व

कृष्ण पाल सिंह

मानव जीवन में पौधे बहुमूल्य निधि हैं। प्रकृति में भी प्रत्येक पौधों के समूह का अपना अपना विशिष्ट स्थान है। शैवाकों को भी इनसे अलग नहीं किया जा सकता। विस्तृत जानकारी के पहले आइये देखें, क्या होते हैं ये शैवाक, कहां पाये जाते हैं, इनका क्या महत्व है और भारत में इन पर कहां कहां कार्य हो रहा है।

शैवाक, शैवाल और कवक के सहजीवी संयोग से बनता है। प्रकृति में यह सहजीवी संयोग इतना सफल हुआ कि आज पूरे विश्व में शैवाकों की लगभग 20,000 जातियां पाई जाती हैं, इनमें से करीब 1600 जातियां तो भारत में ही उगती हैं। ये छोटे पौधे प्रायः पहाड़ी क्षेत्रों में चट्टानों, पत्थरों एवं वृक्षों के तनों पर रंग बिरंगे चकत्तों या पपड़ों के रूप में बिना किसी सहारे के उगते रहते हैं। कुछ जातियां तो रेशों या धागों की भाँति तनों और टहनियों से लटकती हुई बहुत ही सुन्दर दिखती हैं। ये पौधे कटिबन्धीय एवं उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में बहुतायत से उगते हैं। किन्तु विषम परिस्थितियों में भी अपने को जीवित रखने में समर्थ हैं। एक ओर कुछ जातियां रेगिस्तानी क्षेत्रों में पाई जाती हैं तो दूसरी ओर कुछ 20,000 मी. की ऊंचाई के ऊपर बर्फीले स्थानों में उगती हैं।

शैवाक मनुष्य और प्रकृति दोनों के लिए ही बहुत महत्वपूर्ण हैं। चट्टानों पर उगने वाले शैवाक पाषाण को तोड़ने और मिट्टी मे परिवर्तित करने की क्षमता रखते हैं। सुनने में आश्चर्य अवश्य होता है कि यह छोटे पुष्पहीन पौधे कैसे चट्टानों को तोड़ने में समर्थ हैं। किन्तु प्रकृति में धीरे-धीरे ऐसा ही होता रहता है।

शैवाकों के थैलस के सिकुड़ने, फैलने और रासायनिक पदार्थों के निस्सरण से ऐसा सम्भव हो जाता है। प्रकृति में यही पहले पौधे हैं जो दूसरे पौधों के उगने के लिए मिट्टी जैसा माध्यम तैयार करते हैं। इसलिए इनका "परिस्थितिकी में बहुत ही महत्व है। बर्फानी भूगर्भ शास्त्र में इनसे चट्टानों की उम्र ज्ञात करने में सहायता मिलती है।

वायु प्रदूषण के अध्ययन में भी इनका बहुत महत्व है। आज सभी को शुद्ध वायुमण्डल की चाह है। आधुनिक सभ्यता के आगे अपने सुख साधन ही हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। बड़े-बड़े शहरों में वायु प्रदूषण के सामने ये शैवाकों के पौधे अपनी पीढ़ियां बचाने में समर्थ नहीं हो पा रहे हैं और तीव्रता से लोप हो रहे हैं। कल पुर्जों और चिमनियों का धुआं इनके लिए बहुत ही हानिकारक होता है। विभिन्न जातियां विभिन्न मात्रा वाले वायु प्रदूषण क्षेत्रों में उगती रहती हैं। इनकी उपस्थिति और अनुपस्थिति के अनुसार वायु प्रदूषण का संकेत मिलता है। इस प्रकार शैवाक बिना किसी उपकरण के ही वायु प्रदूषण के सूचक सिद्ध हुए हैं। विदेशों में इस विषय पर बहुत कार्य हो चुका है। किन्तु भारत में इसकी परम आवश्यकता है।

अपने देश में प्राय: इन पौधों का उपयोग मसाले के ही रूप में होता है। **पारमेलिआ नेपालेन्सिस**, **पा० सिरहाटा**, और **रोसेला** आदि के पौधे आदिवासियों द्वारा झोल बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। कलकत्ता जैसे महानगरों में शैवाक की कुछ जातियाँ "छरीला" नाम से बाजारों में बेची जाती हैं। **लेकानोरा** की कुछ जातियाँ कीड़े मकोड़ों द्वारा खाई जाती हैं। विदेशों में **उम्बिलीकारिआ** का थैलस सलाद के साथ खाया जाता है। बर्फीले क्षेत्रों में **क्लाडोनिआ और सेट्रारिआ** की जातियाँ वहाँ के कुछ पशुओं द्वारा खाई जाती हैं।

शैवाकों का सबसे महत्वपूर्ण उपयोग रंग बनाने में होता है। **रोसेला** नाम के पौधे से 'आरसीन' नाम का रंग बनाया जाता है। पुराने समय में लिटमस पेपर इन्हीं पौधों से बनाया जाता था। आज भी अच्छे प्रकार का लिटमस पेपर शैवाकों से ही तैयार किया जाता है। **एवेर्निआ प्रनास्ट्री** का सुगंध बनाने में प्रयोग होता है। शैवाकों में अनेक उपयोगी रासायनिक पदार्थ होने के कारण इन्हें औषधियों के बनाने में प्रयोग करते हैं। इन्हें ईसा से पूर्व ही पीलिया, बुखार, डायरिया, इपीलैप्सी, हाइड्रोफोलिया और त्वचा की बीमारियों में प्रयोग किया गया है। **लोबारिआ पुल्मोनारिआ** फेफड़ों के रोगों के लिए प्रयोग होता है। भारत में **पेल्टीजेरा कानिना** यकृत के रोगों के लिए उपयोग होता है। शैवाकों में पाये जाने वाले अनेक रासायनिक पदार्थ ग्राम पोजिटिव जीवाणुओं को मारने में सहायक सिद्ध हुए हैं और इस प्रकार इनसे होने वाले रोगों की रोक-थाम की जाती है। **उस्नेआ** और **क्लाडोनिआ** से निकलने वाला "असनिक अम्ल" अनेक त्वचा के रोगों को रोकने में प्रयोग होता है। कुछ शैवाक मिस्र के पिरामिडों के भीतर रखे शवों को सुरक्षित रखने में प्रयोग होते हैं। कुछ से सिगरेटें भी बनाई जाती हैं।

अब शैवाक के वैज्ञानिक अध्ययन तथा शोधकार्य के बारे में विवेचना करें।

जहाँ तक भारतीय शैवाकों के अध्ययन का सम्बन्ध है विदेशों की अपेक्षा बहुत कम कार्य हुआ है। जो कार्य अब तक सम्भव हो पाया है, केवल वर्गीकरण तक ही सीमित है। सर्व प्रथम भारतीय शैवाकों का अध्ययन उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशों में, वहीं के वैज्ञानिकों द्वारा प्रारम्भ किया गया। शैवाकों के नमूने भारत में पश्चिमी एवं पूर्वी हिमालय, बंगाल, अण्डमान निकोबार और दक्षिणी भारत से एकत्रित कर विदेशों में भेजे जाते थे और वहीं पर उनका अध्ययन करके कार्य प्रकाशित किया जाता था। इस प्रकार भारत से अनेक नई जातियाँ खोजी गईं, जिनके नमूने विदेशी संग्रहालयों (हर्बेरियम) में ही रखे हैं। भारतीय शैवाकों के अध्ययन का पूर्ण विवरण अवस्थी[1] द्वारा लिखित सूची पत्र में दिया है।

भारत में शैवाकों का कार्य प्रो० शिवराम कश्यप के प्रोत्साहन से आरम्भ हुआ और उन्हीं के काल में चोपड़ा द्वारा, हिमालय क्षेत्र से 75 विभिन्न शैवाकों की जातियों का वर्णन सन् 1935 में एक किताब के रूप में प्रकाशित हुआ। किन्तु अधिक समय न चलकर बाद में यह कार्य बन्द हो गया।

पुन. सन् 1948 में भारतीय वनस्पति उद्यान, हावड़ा में विश्वास और अवस्थी ने कार्य आरम्भ किया। उन्होंने पहली बार करीब 700 विभिन्न जातियों के वितरण की चर्चा की। सन् 1963 में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण-हावड़ा में पुष्पहीन पौधों के ऊपर कार्य करने के लिये एक क्रिप्टोगैमिक अनुभाग का गठन हुआ, जिसके फलस्वरूप भारतीय शैवाकों के कार्य में प्रगति हुई। पिछले एक दशक में तो अनेक सराहनीय कार्य किए गए। शैवाकों के नमूने बोटेनिक गार्डेन, हावड़ा, दार्जिलिंग, मनीपुर और बंगाल के घने वनों से एकत्र किये गये और उनका अध्ययन करके एक नया वंश **अवस्थीएला** और कई नई जातियां जैसे **बुएल्लिआ मनीपुरेन्सिस**, **काटीलारिआ मनीपुरेन्सिस**, **ग्राफीना दार्जिलिंगेन्सिस** आदि खोज निकाली गईं। वंश **मारोनिआ**, **फाएओग्राफिस**, और **ग्राफीना** पर विस्तार शोध भी किया गया। इस समय हावड़ा के केन्द्रीय राष्ट्रीय उद्भिज्जालय (हर्बेरियम) में करीब 7000 शैवाकों के नमूनों का संग्रह और कार्य के लिए प्रयोगशाला है। हाल ही में इन पौधों पर कार्य तीव्र करने की दिशा में वनस्पति सर्वेक्षण के शिलांग केन्द्र में भी सन् 1981 से कार्य आरम्भ किया गया। यहाँ पर पूर्वोत्तर क्षेत्र के शैवाकों पर कार्य चल रहा है और इसी के अन्तर्गत अरुणांचल प्रदेश और मेघालय के विभिन्न क्षेत्रों से करीब 4000 नमूनों का संग्रह किया जा चुका है। कुछ लेख जिनमें नई जातियों का वर्णन है, प्रकाशन के लिए भेजे जा चुके हैं।

---

1. **अवस्थी** डी. डी. (1965), भारत नेपाल, पाकिस्तान और श्री लंका के शैवाकों का सूची पत्र। **बेहेफ्ट नोवा हैडविगिया** 17 : 134.

वनस्पति सर्वेक्षण के अतिरिक्त वनस्पति विज्ञान विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ भी इन पौधों के कार्य का मुख्य केन्द्र है। भारत में शैवाककी का विकास मुख्यतः इसी केन्द्र से हुआ। यहां के प्रत्येक कार्य का पूर्ण उल्लेख सिंह[1] के लेख में किया गया है। यहां पर अवस्थी के नेतृत्व में अनेक विद्यार्थियों ने कार्य किया और कुछ वंश और अनेक जातियों की खोज की गई। डीरेनेरिया, पारमेलिया, लेप्टोजीउम, कोल्लेमा, सेट्रारिया, पेल्टीजेरा और लोबारिआ आदि का विस्तृत शोध विवरण प्रकाशित हुआ।

इसी प्रकार राष्ट्रीय वनस्पति शोध संस्थान, लखनऊ में भी अण्डमान निकोबार के शैवाकों पर कार्य और वंश आन्थाकोथेसिउम का अध्ययन किया गया। अन्य वंशों पर कार्य हो रहा है। विज्ञान संस्थान महाराष्ट्र में पिछले कुछ वर्षों से पश्चिमी घाट के शैवाकों पर कार्य चल रहा है। इस संस्थान में दक्षिणी भारत से अनेक नई जातियों का संस्थापन हुआ।

इस प्रकार शैवाकों के पुनर्निरीक्षण से पता चलता है कि भारत में केवल चार केन्द्रों पर ही शोध कार्य हो रहा है। किन्तु इतना सब होते हुए भी क्या यह सम्भव है कि इन केन्द्रों पर हो रहे कार्य से भारत जैसे विशाल देश का शैवाक फ्लोरा पूर्ण हो सकेगा। उत्तर है नहीं। तो इस दिशा में निश्चय ही प्रयत्न करना होगा। इसके लिए नए केन्द्रों पर कार्य आरम्भ करना होगा। देश में इन पौधों के विस्तृत और तीव्र संग्रह के लिए सुविधायें उपलब्ध करनी होंगी, और आने वाले नये वनस्पतिज्ञों को इस दिशा में शिक्षा देनी होगी। यह सभी प्रश्न भविष्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। किन्तु यह तभी सम्भव होगा जब प्रशासन और निर्देशन में उच्चासीन अधिकारी इसमें पूरी रुचि लें और प्रोत्साहन दें। अन्यथा बढ़ती जनसंख्या, उसकी दैनिक आवश्यकताओं और आधुनीकरण के कारण अनेक जातियों की खोज होने के पहले ही हम उनसे वंचित रह जायेंगे। इस प्रकृति में कुछ जातियाँ अभी ही लुप्त हो चुकी हैं और अनेक संकटग्रस्त हैं।

भारत में शैवाककी के ऊपर बहुत कार्य होना शेष है। विशेषकर रसायन परिस्थितिकी, वायु प्रदूषण और कार्यकी के क्षेत्र में। जम्मू कश्मीर, मध्य प्रदेश, आन्ध्र प्रदेश, केरल, उड़ीसा, कर्नाटक, मेघालय, असम, अरुणांचल, नागालैन्ड और मिजोरम आदि के शैवाक फ्लोरा पर कार्य करने का बहुत ही सुअवसर है। भारत के सभी क्रस्टोज शैवाकों के वंशों का संशोधन होना शेष है। इसलिए आइये हम सब मिलकर इन छोटे अपुष्पी पौधों की ओर भी ध्यान दें। भविष्य में कौन जाने कौन सा पौधा मानव जाति के लिए किस रूप में रामबाण सिद्ध हो जाय।

---

1. सिंह ए. (1980) भारतीय उपमहाद्वीप में शैवाककी (1966-1977) इकानामिक बाटेनी इन्फारमेशन. सर्विस - राष्ट्रीय वनस्पति शोध संस्थान, लखनऊ क्रमशः 6 112.

20. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व-शैवाल

जगदीश लाल

शैवाल आत्मपोषी पौधे हैं। इनमें पर्णहरित होता है जिसकी उपस्थिति के कारण प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया द्वारा ये पौधे स्वयं अपना भोजन निर्माण करते हैं।

विश्व में शैवाल के 2,475 वंश एवं 28,305 जातियां पाई जाती हैं जबकि भारत में 666 वंश एवं 5,136 जातियां पाई जाती हैं।

भारत के शैवालों पर 1768 से शोधकार्य हो रहा है। और अधिकतर प्रारंभिक शोधकर्ता यूरोपियन थे। कीर्तीकार पहले भारतीय थे जिन्होंने भारतीय शैवाल पर 1886 में शोधपत्र लिखा।

शैवाल के अध्ययन को अधिकतर लोग "एल्गोलाजी" के नाम से जानते हैं। वास्तव में इसे "फाइकोलाजी" कहना अधिक उचित है क्योंकि एल्गोलाजी चिकित्सा-शास्त्र का शब्द है जिसका अर्थ है विभिन्न प्रकार की पीड़ा का अध्ययन। भारत में शैवाल शोध को स्थापित करने एवं दिशा देने का श्रेय मुख्य रूप से दो वैज्ञानिकों को है जिनके नाम हैं भारद्वाज एवं आयंगर। इन दोनों को ही लन्दन के प्रसिद्ध शैवाल विद् फ़िश के छात्र होने का सौभाग्य प्राप्त था। भारत में आने पर भारद्वाज ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नील-हरित शैवाल की प्रयोगशाला बनाई जबकि आयंगर ने मद्रास विश्वविद्यालय में शैवाल की प्रयोगशाला स्थापित की। शैवाल शोधकर्ता इन केन्द्रों को "मक्का और मदीना" जैसा महत्व देते हैं।

शैवाल के मुख्य कुल निम्नलिखित हैं:—

1. सीआनोफीसी	—	नीले-हरे शैवाल
2. क्लोरोफीसी	—	हरे शैवाल
3. डीनोफीसी	—	पीले-भूरे शैवाल
4. बेसिलेरिओफीसी	—	डायएटम्स
5. जेन्थोफीसी	—	हरे-पीले शैवाल
6. क्रीसोफीसी	—	सुनहरे-पीले शैवाल
7. फाएओफीसी	—	भूरे शैवाल
8. रोडोफीसी	—	लाल शैवाल

भारत में सीआनोफीसी, डीनोफीसी, क्लोरोफीसी एवं बेसिलेरिओफीसी कुल के शैवाल अधिक संख्या में पाये जाते हैं जबकि जेन्थोफीसी, क्रीसोफीसी, फाएओफीसी एवं रोडोफीसी का प्रतिनिधित्व कुछ कम है।

अण्डमान-निकोबार द्वीप समूह के मीठे जल में लगभग 600 शैवाल जातियों के होने की संभावना है। ब्रजनन्दन प्रसाद एवं उनके छात्रों ने नये 15 हरे शैवाल तथा 7 डायएटम्स की खोज यहीं से की है।

प्राकृत-वास के आधार पर शैवाल समुदाय को नीचे लिखे 8 वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

1. मीठे जल में पाये जाने वाले शैवाल
2. स्थलीय शैवाल
3. फसल के खेतों में पाये जाने वाले शैवाल
4. समुद्री शैवाल
5. प्रदूषित स्थलों में पाये जाने वाले शैवाल
6. अधिक ऊंचाई पर पाये जाने वाले शैवाल
7. ऊसर भूमि में पाये जाने वाले शैवाल
8. उष्ण में पाये जाने वाले शैवाल

भारत में आरम्भ के चार वर्गों के शैवाल पर अधिक शोध कार्य हुआ है जबकि अन्तिम के चार वर्गों पर शोधकर्त्ताओं की रुचि अब धीरे-धीरे बढ़ रही है। आगे के पृष्ठों में आरम्भ के चार वर्गों का ही विशेष विवरण दिया गया है।

1. मीठे जल में पाये जाने वाले शैवाल

(फाएओफीसी) (भूरे शैवाल) कुल को छोड़कर लगभग सभी कुल के शैवाल मीठे या ताजे जल में जैसे : नदी, झील, ताल इत्यादि में पाये जाते हैं। भारत में इनके लगभग 390 वंश और 4000 जातियाँ पायी जाती हैं। विगत के मुख्य शोध कर्ताओं के नाम इस प्रकार हैं :—

आयंगर	1926-1936
बिस्वास	1926-1940
भारद्वाजा	1933-1963
सिंह (आर. एन.)	1938-1954
देशिकाचारी	1950-
रंधावा	1936-1959

2. स्थलीय शैवाल

भारत में इनके लगभग 127 वंश और 613 जातियाँ पायी जाती हैं। मुख्य कुल हैं बेसिलेरिओफीसी, क्लोरोफीसी एवं जेन्थोफीसी। विगत के शोधकर्ता हैं—आयंगर सिंह (आर० एन०), मित्रा एवं अन्य।

3. फसल के खेतों में पाये जाने वाले शैवाल

इसमें विशेष रूप से धान के खेतों पर शोधकार्य हुआ है। इस वर्ग में लगभग 80 वंश एवं 1500 जातियाँ हैं। इस क्षेत्र में प्रसाद एवं पाण्डेय के नाम मुख्य हैं जिन्होंने उत्तर प्रदेश के विभिन्न भागों के धान के खेतों के नीले हरे शैवालों का अध्ययन किया है।

4. समुद्री शैवाल

भारत में इस वर्ग के लगभग 318 वंश एवं 1,222 जातियाँ पायी जाती हैं। इस वर्ग में मुख्य रूप से फाएओफीसी एवं रोडोफीसी कुल की शैवाल आती हैं। मद्रास, गोआ, ओखा, द्वारका, अण्डमान निकोबार एवं लाकाडीव द्वीपसमूह क्षेत्रों पर विशेष रूप से कार्य हुआ है। विगत के विशेष शोध कर्ता निम्न हैं—श्रीनिवासन, गोपालकृष्णन, कृष्णामूर्ति, मिश्रा एवं अन्य।

वर्तमान स्थिति

आजकल शैवाल शोध भारत के लगभग सभी प्रदेशों में हो रहा है। कुछ मुख्य स्थान, शोधकर्ता एवं उनके शोध क्षेत्र इस प्रकार हैं :—

स्थान	शोध कर्ता	विषय
बनारस	शर्मा (वाई० एस० आर० के०)	साइटोलाजी
	तालपासाई	सीआनोफीसी एवं नाइट्रोजन स्थिरीकरण
	चौधरी	साइटोलाजी क्लोरोफीसी
मद्रास	देसिकाचारी	डायएटम्स
	बालाकृष्णन	रोडोफीसी
	कृष्णामूर्ति	समुद्री शैवाल
लखनऊ	प्रसाद	सीआोनोफीसी, क्लोरोफीसी डायएटम्स
	सक्सेना	स्पीरुलिना की खेती पशु चारे के रूप में

दिल्ली	वेंकटरमन	बी० जी० ए० खाद रूप में
गुजरात	पटेल	सीआनोफीसी, क्लोरोफीसी
	वैद्या	सिआनोफीसी की कार्यकी
हैदराबाद	सिंह (एच० एन०)	नाइट्रोजन स्थिरीकरण
रांची	सिन्हा	साइटोलाजी
बर्दमान	शर्मा (पी)	क्लोरोफीसी
ग्वालियर	अगरकर	सीआनोफीसी क्लोरोफीसी
कानपुर	गुप्ता	सीआनोफीसी
इलाहाबाद	पाण्डेय	सीआनोफीसी
	तिवारी	क्लोरोफीसी

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का योगदान

भारत में शैवाल शोध के क्षेत्र में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का योगदान कम होते हुए भी विशेष महत्व का है। श्रीनिवासन द्वारा लिखित "फाइकोलाजिया इन्डिका" में 100 से अधिक भारतीय समुद्री शैवालों के अत्यन्त सुन्दर रंगीन रेखा चित्र एवं वर्णन उपलब्ध हैं। इसके दो भाग हैं जो 1969 एवं 1973 में प्रकाशित हुए हैं। इसमें वर्णित सभी शैवाल जातियों को स्वयं श्रीनिवासन ने ही भारत के विभिन्न समुद्री क्षेत्रों से एकत्र किया था। भारत में यह पुस्तक अपने आप में अकेली और अनोखी है।

बिस्वास ने 1949 में भारत एवं बर्मा के सम्पूर्ण शैवालों की सूची प्रकाशित की जो शैवाल शोधकर्ताओं के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई।

हमारे जीवन में शैवालों का महत्व

बहुत से शैवालों में ऐसे विशेष गुण पाये जाते हैं जिनके कारण वह मनुष्य जाति के लिए बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :—

1. वायुमण्डलीय तात्विक नाइट्रोजन का स्थिरीकरण

नीले हरे शैवाल की लगभग 60 जातियां वायुमण्डल के तात्विक नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करने में सक्षम पाई गई हैं। इस क्रिया द्वारा वायुमण्डल से लगभग 15 से 48 किलोग्राम नाइट्रोजन/हेक्टर/मौसम स्थिरीकरण होता है और नाइट्रोजन पौधों के काम आने योग्य यौगिकों में परिवर्तित हो जाता है जिसका सबसे बड़ा लाभ मुख्य रूप से धान की खेती में होता है। नाइट्रोजन के स्थिरीकरण में सक्षम मुख्य जातियां निम्नलिखित हैं :—

आउलोसिरा, अनाबाएना, टोलीपोथ्रिक्स, स्किटोनेमा, नॉस्टाक, सिलिन्ड्रोस्पेर्मुम, कालोथ्रिक्स, स्टिगोनेमा, इत्यादि।

2. बी० जी० ए० खाद

नीले-हरे शैवाल को अधिक मात्रा में उगाकर सुखा लेते हैं और उसे पीसकर पाउडर के रूप में रख लिया जाता है जिसका प्रयोग "जैविक खाद" के रूप में किया जाता है। आजकल यह पाउडर पैकेट बन्द रूप में बाजारों में उपलब्ध है। ऊसर भूमि को उपजाऊ भूमि में परिवर्तित करने के लिए भी जलभराव करके उसमें नीले-हरे शैवाल को उगाया जाता है।

3. अगर-अगर

इस पदार्थ का प्रयोग शैवाल, कवक, बैक्टीरिया तथा जीवित ऊतकों के संवर्धन में किया जाता है। इसके अलावा चर्म उद्योग एवं श्रृंगार-प्रसाधनों की तैयारी में भी इसका प्रयोग किया जाता है। भारत में जिन वंशों से "अगर-अगर" प्राप्त किया जाता है उनके नाम इस प्रकार हैं :—जेलीडीउम, ग्रासीलारिआ, कोन्ड्रस, इत्यादि।

4. पालतू पशुओं के लिए भोजन

बड़े-बड़े समुद्री भूरे-शैवाल समुद्र से एकत्र करने के पश्चात् सीधे ही पालतू पशुओं को चारे के रूप में दिये जाते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि जो गायें इन्हें खाती हैं अधिक अच्छा दूध देती हैं जिसमें मक्खन एवं चर्बी की मात्रा अधिक होती है। ऐसे शैवाल हैं :- लामीनारिआ, फुकुस, सरगास्सुम इत्यादि।

5. मनुष्य जाति के लिए खाद्य

शैवाल की 70 से अधिक जातियाँ ऐसी हैं जिनका मनुष्य खाद्य के रूप में प्रयोग करता है। तटवर्ती देशों में इसका अधिक प्रचलन है। चीन, जापान एवं फिलीपाइन्स देशों में पोरफिरा टेनेरा (लाल शैवाल) जिसे "अमानोरी" कहते हैं तथा इससे बने पदार्थ को "असाकुसा नोरी" कहते हैं, प्रचुर मात्रा में खाद्य के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग 30-35 प्रतिशत प्रोटीन, 40-45 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा ए. बी. सी. एवं ई. विटामिन की मात्रा बहुत अधिक होती है। दूसरे शैवाल जैसे लामीनारिआ, उलवारिआ, नास्टॉक, मोनोस्ट्रोमा, एन्टेरोमार्फा, का भी प्रयोग खाद्य के रूप में किया जाता है। एक कोशीय क्लोरेल्ला से भी बहुत ही पौष्टिक खाद्य प्राप्त होता है जिसकी पौष्टिकता सोयाबीन जैसी ही है।

अब तो अन्तरिक्ष उड़ानों में भी एक कोशीय शैवालों जैसे : क्लोरेल्ला अथवा स्केनेडेस्मुस का प्रयोग आक्सीजन की प्राप्ति के लिए किया जाने लगा है।

21. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व-कवक

जय राम शर्मा

वनस्पति जगत को दो बड़े वर्गों में बांटा गया है—पहले को पुष्पी पौधे जो बीज से उत्पन्न होते हैं तथा दूसरे को अपुष्पी पौधे जो बीजाणुओं से उत्पन्न होते हैं। कवक अपुष्पी पौधों की दूसरी श्रेणी में ही आते हैं। मार्टिन ने (1951) कवकों की लगभग दो लाख पांच हजार जातियों का अनुमान किया। ये पौधे अन्य पौधों से जीवन क्रिया में अलग होते हैं। इनमें क्लोरोफिल नामक हरे रंग का पदार्थ जिसकी सहायता से अन्य पौधे कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं, नहीं होता। अतः कवक कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण नहीं कर सकते। ये अपना भोजन दो प्रकार से प्राप्त करते हैं। जो कवक निर्जीव एवं गली सड़ी वस्तुओं पर उगते हैं, उन्हें मृतोपजीवी कवक कहा जाता है। दूसरे वे हैं जो जैव वस्तुओं पर पाये जाते हैं, उन्हें परोपजीवी कहते हैं।

अनुकूलन की इसी प्रक्रिया के कारण कवकों का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्व है। आर्थिक महत्व की दृष्टि से कवकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है लाभदायक एवं हानिकारक कवक।

लाभदायक कवक :—

ये कई प्रकार के हैं :—

कार्बनिक क्षेप्य का विनाश करने वाले कवक :—कवकों की कार्बनिक पदार्थ का विनाश करने की क्षमता से मनुष्य को कई लाभ हैं। एक तो यह कि ये कार्बनिक क्षेप्य को पर्यावरण से हटाने में सक्षम हैं। यदि कवक और जीवाणु न होते तो पेड़ों से गिरे हुए इतने पत्ते इकट्ठे हो जाते कि मनुष्य को अपना सिर पत्तों के ढेर से बाहर रखना असम्भव हो जाता। दूसरे कार्बनडाई आक्साइड का उत्पादन कवकों और जीवाणुओं द्वारा कार्बनिक पदार्थ के विघटन की प्रक्रिया से काफी बढ़ जाता है। प्रकाश संश्लेषण में कार्बनडाई आक्साइड के महत्व को तो सभी जानते हैं। यदि कवक और जीवाणु कार्बनडाई आक्साइड का उत्पादन न करते तो इसकी मात्रा वातावरण में घट-2 कर समाप्त हो जाती व जीवन असम्भव हो जाता। ह्यूमस एक बहुत जरूरी भू-अवयव है। यह कार्बनिक पदार्थों पर सूक्ष्म जीवाणुओं की प्रक्रिया से ही बनता है। ह्यूमस में कार्बन तथा नाइट्रोजन की पर्याप्त मात्रा होती है। इसमें खनिजों के आदान-प्रदान की विशेषतायें भी होती हैं और इसी कारण यह पेड़, पौधों तथा जानवरों के लिये अति मूल्यवान है।

कवक औषधि के रूप में :—अन्य वनस्पतियों की भांति बहुत से कवक भी प्राचीन काल से ही चिकित्सा में महत्वपूर्ण हैं और मनुष्य के लिए ये प्रायः अद्भुत लाभदायक औषधियों के स्रोत हैं। पेन्सिलिन की खोज ने वैज्ञानिक क्षेत्रों की खोजों में एक और अध्याय जोड़

दिया है। पेन्सिलिन जो कवक का ही एक उपापचयी पदार्थ है, विभिन्न प्रकार के अतिक्रमणों निमोनिया, गठिया तथा जीवाणुओं की अन्य बीमारियों की रोकथाम में प्रयोग किया जाता है। यदि इसे जादुई औषधि भी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी। पेन्सिलिन की खोज अचानक ही एलेक्जेंडर फ्लेमिंग ने सन् 1929 में लन्दन के सेंट मेरी अस्पताल में की जबकि जीवाणुओं के कल्चर को एक कवक ने प्रदूषित कर दिया। इस कवक का नाम बाद में **पेनिसीलिलिउम रहुस** रखा गया। इसके बाद **पेनिसीलिलिउम** की बहुत सी जातियों की खोज की गई जो कि पेन्सिलिन का संश्लेषण करती हैं। पेन्सिलिन उन पदार्थों के कुल का सदस्य है जिनको हम 'एंटीबायोटिक्स' कहते हैं। **आस्पैरजोल्लस** तथा **पेनिसीलिलउम** की कई जातियों से बहुत से एन्टीबायोटिक्स जैसे कि फ्लैवीसीन, नोटारिन, सीटरीन, पैनीसीलिक एसिड आदि बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ यीस्ट नामक जाति के कवकों से अन्य एन्टीबायोटिक्स जैसे स्ट्रेप्टोमाइसिन, टैरामाइसिन, औरोमाइसिन आदि प्राप्त किये जाते हैं।

इसके अलावा 'अर्गट' नामक औषधि **क्लावीसेप्स पुरपुरेआ** नामक कवक से प्राप्त की जाती है। यह कवक असकोमाईसीटस वर्ग का सदस्य है और राई घास तथा घास कुल के अन्य पौधों को अतिक्रमित करता है। इस क्रिया में यह संघनित, काले रंग का ऊतक बनाता है और इस संरचना को 'स्क्लैरोशिया' कहते हैं तथा इसे विभिन्न प्रकार की औषधियां बनाने के काम में लाया जाता है। इन औषधियों को देर से बच्चे के जन्म में पेशियों के संकुचन, बच्चे के जन्म के बाद रक्त बहाव को बन्द करने तथा गर्भपात में प्रयोग किया जाता है। अर्गट की ज्यादा मात्रा हानिकारक हो सकती है। हमारे देश में संकर बाजरे का उत्पादन **क्लावीसेप्स पुरपुरेआ** के भीषण अतिक्रमण के कारण ही बन्द करना पड़ा।

खाने योग्य कवक :—मनुष्य कई शताब्दियों से कवकों को भोजन के रूप में प्रयोग करता आया है। प्राचीन साहित्य में भी इसके संकेत मिलते हैं। बहुत से कवकों का मांसल भाग खाया जा सकता है। इन कवकों को 'खुम्ब' कहते हैं। निम्नलिखित आंकड़ों से खुम्बों के कुछ रासायनिक तत्वों तथा उनके सुगमता से पाचक भाग का अनुमान लगाया जा सकता है। जल 80% से 90%, प्रोटीन 2% से 5%, कार्बोहाइड्रेट 8.5% (कवक सैलुलोज लगभग 3%, शर्कराएँ लगभग 5%, ग्लाइकोजन लगभग ½%) वसा 1% एवं अन्य खनिज पदार्थ जिनमें कि फास्फोरस एवं पोटेशियम के लवण होते हैं। इससे पता चलता है कि कवक लगभग संतुलित भोजन है। विश्व के कुछ भागों में जहाँ कुछ नहीं उगाया जा सकता अथवा लोग कोई काम नहीं करते वहाँ कवक ही लोगों की क्षुधा पूर्ति का मुख्य साधन है। उदाहरण के लिए फूइजीआ में सीट्टारिआ वंश के खुम्बों को ही वर्षा के अधिकतर महीनों में खाया जाता है। यद्यपि खुम्बों में पोषण की मात्रा कम होती है फिर भी इनमें कुछ ऐसे तत्व होते हैं जो कि मनुष्य की पाचन शक्ति को बढ़ाते हैं एवं भोजन को अधिक संतुलित व स्वादिष्ट बनाते हैं।

यद्यपि कवकों की बहुत सी जातियाँ खाई जाती हैं लेकिन कुछ की मात्र खाद्य पदार्थ के लिए ही कृषि की जाती है। हमारे देश में व्यावसायिक दृष्टि से सबसे अधिक उगाया जाने वाला खुम्ब **अगारिकुस बिस्पोरस** है जो कि प्राकृतिक रूप में उगने वाले **अगारिकुस काम्पेस्ट्रिस** से सम्बन्धित एक जाति है। इस खुम्ब को कृत्रिम रूप से दिल्ली, श्रीनगर, सोलन, शिमला आदि अनेक स्थानों पर उगाया जाता है। इसके अतिरिक्त भी अन्य कई कवक खाए जाते हैं जैसे **वोल्वारिआ वोल्वासिआ** जिसको धान के भूसे पर उगाया जाता है। **मोर्चेला** नामक खुम्ब जिसे 'गुच्छी' कहते हैं, छूने में स्पंज की तरह लगता है। यह खुम्ब अन्य खुम्बों से ज्यादा स्वादिष्ट और अच्छी खुशबू वाला होता है तथा प्रकृति में चीड़ के जंगलों में बरसात के दिनों में यहाँ-वहाँ उगता है। इसे अभी तक कृत्रिम रूप से नहीं उगाया जा सका है, क्योंकि वैज्ञानिक खोजों की सहायता से पता चलता है कि गुच्छी का जंगलों में उगना बादलों की गड़गड़ाहट से सम्बन्ध रखता है। इस खुम्ब की जंगलों में पाई जाने वाली कुछ जातियाँ **मोर्चेल्ला डेलीसिओसा, मोर्चेल्ला ग्लान्डुलोसा, मोर्चेल्ला कास्सीपेस** आदि हैं। इन सभी में **मोर्चेल्ला कास्सीपेस** खुशबू और स्वाद की दृष्टि से सबसे अधिक पसन्द किया जाता है। **प्लेउरोटुस साजोरकाजू** को 'सीप खुम्ब' कहते हैं क्योंकि इसकी शक्ल सीप से मिलती है। यह चमड़े की तरह लचीला और खाने में भी स्वादिष्ट नहीं होता। **लेन्टीनुस एडोडेस** नामक खुम्ब को बांझ (ओक) की लकड़ी के गट्ठों पर उगाया जाता है। **स्पाराज्सिस क्रिस्पा** नाम का खुम्ब भी प्रकृति में ही पाया जाता है तथा इसको जंगली व पिछड़ी जातियाँ गोभी के स्थान पर प्रयोग करती हैं। ट्यूबरस खुम्ब जमीन के नीचे पाए जाते हैं और इनको ढूंढने के लिए हाथी तथा कुत्तों को प्रशिक्षित किया जाता है। यह खुम्ब बांझ के जंगलों में पाया जाता है। उपरोक्त खुम्बों के अतिरिक्त **हेल्वेल्ला, क्लावारिआ, बोलेटुस** आदि कवकों की भी कुछ जातियाँ खाई जाती हैं।

कवक और उद्योग:—कवकों से अनेक औद्योगिक पदार्थ प्राप्त होते हैं। औद्योगिक उपयोग की बहुत सी वस्तुएँ, खाद्य एवं पेय पदार्थ कवकों द्वारा शर्कराओं के किण्वन से बनाए जाते हैं। उदाहरण के लिए यीस्ट की कई जातियाँ शर्करा द्वारा एल्कोहल के निर्माण में प्रयुक्त होती हैं। **पेनिसीलिउम** तथा **आस्पेरजील्लुस** की अनेक जातियों को गैलिक, अम्ल, सिट्रीक अम्ल, कोजिक अम्ल, ग्लूकानिक तथा आक्जेलिक अम्लों के संश्लेषण में प्रयोग किया जाता है। **आस्पेरजील्लुस** तथा **साकारोमीसेस** की कुछ जातियों को डबलरोटी मक्खन, पनीर आदि बनाने के काम में लाया जाता है। इसके अतिरिक्त कवक प्रकिण्वों (एन्जाइमों) के संश्लेषण में भी काम आते हैं। कवकों से प्राप्त महत्वपूर्ण प्रकिण्व 'इनवरटेज' एवं 'अमाईलेज' है। इनवरटेज का उपयोग शर्कराओं के विघटन मे होता है तथा यह **साकारोमीसेस** नामक कवक की ही जातियों से मिलता है। इसी प्रकार 'अमाईलेज' का प्रयोग अल्कोहल के उद्योगों में होता है और इसे भी यीस्ट नामक कवकों से प्राप्त किया जाता है।

विटामिनों का संश्लेषण :—कुछ सूक्ष्म जीवाणुओं को महत्वपूर्ण विटामिनों के संश्लेषण में प्रयोग किया जा सकता है। आजकल इस दिशा में विटामिन बी० में बहुत कार्य हुआ है। राईबोफ्लेविन एक ऐसा विटामिन है जिसकी आजकल बहुत मांग है। इस विटामिन के संश्लेषण में सबसे पहले **क्लौस्ट्रीडिउम** नामक जीवाणुओं को ही प्रयोग किया जाता था। किन्तु आजकल **आस्बीआ और एरेमोथेसिउम** कवकों की जातियों को इसका उत्पादन बढ़ाने में प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार प्रो-विटामिन डी० (इर्गेस्टेराल) और विटामिन डी का संश्लेषण यीस्ट नामक कवकों की कई जातियों द्वारा होता है।

कवक मूल :—कवकों की कुछ जातियाँ केवल पुष्पी पौधों के घनिष्ट साहचर्य में ही उगती हैं और उनकी जड़ों के साथ एक बहुत ही रोचक सम्बन्ध बना लेती हैं। इस रोचक सम्बन्ध में जड़ का ऊतक और कवक जाल एक जटिल संरचना की स्थापना करते हैं जिसे 'कवक मूल' कहते है। यह पेड़ पौधों के पोषण में बहुत ही महत्वपूर्ण होते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि कवकमूल, उच्च श्रेणी के पौधों को फास्फोरस, पोटेशियम, नाइट्रोजन और वृद्धि उन्नत करने वाले पदार्थ ज्यादा मात्रा में प्राप्त कराते हैं। कुछ पुष्पी पौधों के बीज या उनके छोटे-2 पौधे तो उग ही नहीं सकते जबतक कि विशिष्ट प्रकार के कवक उनकी जड़ों के साथ कवक मूल की स्थापना नहीं कर लें। विभिन्न शोधों से पता चलता है कि यदि कवकों में कवकमूल बनाने की क्षमता नहीं होती तो मनुष्य अनेक लाभकारी पौधों से वंचित रह जाता।

कवक और अन्य शोध क्षेत्र:—कवकों पर खोज कार्य अब केवल कवक विशेषज्ञों तक ही सीमित नहीं रह गया है। कोशिकाविद, आनुवांशिकी विशेषज्ञ और जीव रसायनज्ञ विभिन्न शोध कार्यों से इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि बहुत सी महत्वपूर्ण एवं आधारभूत जैविक प्रक्रियाओं की खोज में कवकों को माध्यम के रूप में प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि कवकों में प्रजनन की क्षमता अन्य उच्च श्रेणी के पौधों तथा जन्तुओं की अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इनका जीवन चक्र भी अपेक्षाकृत काफी छोटा होता है। इसके अतिरिक्त कवक के जीवाणु अर्द्धसूत्री विभाजन से बनते हैं और अर्द्धगुणी जीवों का निर्माण करते हैं। **नेउरोस्पोरा क्रास्सा** तथा **पोडोस्पोरा** नामक कवकों को आनुवांशिकी नियमों के अध्ययन तथा अन्य शोध कार्यों में प्रयोग किया जाता है। **फीसारुम पॉलीसेफालुम** कवक का उपयोग सूर्यीचक्र तथा जीवद्रव्य के प्रवाह के अध्ययन में प्रयोगात्मक जीव के रूप में किया जाता है। हम यह कह सकते हैं कि निस्संदेह कवकों की मनुष्य के हित में और उसका ज्ञान बढ़ाने में बहुत देन है।

हानिकारक कवक :—

मनुष्य के जीवन में कवकों की हानिकारक क्रियाओं को निम्न शीर्षकों में रखा जा सकता है।

बीमारियाँ :—फसलें इमारती लकड़ी व शोभनीय पौधे आदि सभी मनुष्य की आवश्यकताओं की प्राथमिक वस्तुयें हैं। कवक इन्हें गम्भीर रूप से हानि पहुंचाते हैं। अतः यदि यह कहा जाय कि कवक मानव जाति के घोर शत्रु भी हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कवकों की जो जातियाँ अनेकों बीमारियाँ उत्पन्न करती है, अधिकतर असकोमाईसीट्स, बासीडियोमाईसीट्स तथा डियूटेरोमाईसीट्स नामक वर्गों में पाई जाती हैं। पौधों के कवक रोगों से प्रत्येक साधारण मनुष्य परिचित है जैसे गेहूं, गन्ना, चावल, ज्वार, बाजरा, मकई, प्याज आदि की 'कालिका' (स्मट) नामक बीमारियाँ असटीलैजीनेसी कुल की जातियों से होती हैं। इसी प्रकार गेहूं, अलसी, ज्वार, बाजरा, गन्ना तथा सेब की 'गेरुआ' (रस्ट) नामक भयंकर बीमारियाँ यूरीडीनेल्स कुल की जातियों से होती हैं। आर्द्र मरण' (डेम्पींग आफ) बीमारियाँ जिनसे अदरक, गेहूं, मिच, पपीता, तम्बाकू आदि की फसलों को बहुत हानि पहुंचती है, पाईथीऐसी नामक कुल की जातियों से होती हैं। केला तथा अन्य फसलों के 'शैथिल्य' (विल्टस) रोग फुसारिउम कवक की जातियों से होते हैं। इनके अतिरिक्त अंगूर, प्याज, सेब की 'आसिता' (मीलड्यू) की बीमारियाँ पीरोनोसपोरेसी तथा एरीसाइपेसी नामक कुलों के सदस्यों से होती है। सेब का 'पामा' (स्कैब) रोग जिसके कारण हर वर्ष करोड़ों रुपये की क्षति होती है **वेन्टुरिआ इनेक्वालिस** कवक से होता है। 'उत्तरभावी अंगमारी' (लेट ब्लाइट आफ पोटैटो) जिससे आलू की फसल को बहुत क्षति पहुंचती है **फाईटोप्थोरा** कवक की जाति से होती है।

पौधों की बीमारियों से मानव जाति को कितनी हानि होती है, इसका अनुमान लगाना सहज नहीं लेकिन आम तौर पर यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रतिवर्ष बीमारियों से उत्पादन में औसतन 13 से 15% की हानि होती है। फसलों की बीमारियों के अतिरिक्त बहुरंध्रीय (पोलीपोरस) कवक इमारती लकड़ी तथा अन्य उपयोगी लकड़ी देने वाले पौधों में कई प्रकार के खतरनाक रोग पैदा करते हैं। इनमें से सर्वाधिक प्रचलित बीमारी को 'हर्ट रौट' कहते हैं। इस बीमारी में कवक पेड़ के भीतरी हिस्से में आक्रमण करते हैं तथा धीरे-2 वे पेड़ के मध्य भाग को खोखला बना देते हैं। ऐसे वृक्षों से लकड़ी बहुत कम निकलती है और जो निकलती है, वह मात्रा में कमथता खराब होती है। इन कवकों को 'परटोफाईट्स' भी कहा जाता है। इस तरह की बीमारियों पर नियन्त्रण करना बहुत कठिन है लेकिन फिर भी अतिक्रमित टहनियों के काटने, घावों पर औषधियों के लेपन, गुहाओं में रेत तथा सीमेंट भरने से रोग को कम किया जा सकता है।

विषैले कवक :—जैसे खाने वाले कवक खुम्ब कहलाते हैं, उसी तरह जहरीले कवकों को टोड स्टूल्स' कहा जाता है। लेकिन ये दोनों शब्द किसी खुम्ब विशेषज्ञ के लिए अर्थहीन हैं क्यों कि 'टोड स्टूल्स' भी कई बार विषरहित व स्वादिष्ट हो सकते हैं। यद्यपि जहरीले कवकों की बहुत कम जातियाँ हैं फिर भी कुछ कवक बहुत विषैले होते हैं। अनेक विषैली जातियों के कवक **अमानिटा** वंश से सम्बन्ध रखते हैं और इनमें कुछ जातियाँ जैसे

अमानिटा फैलोआइडिस, अमानिटा वरना, अमानिटा विरोसा आदि संसार के सर्वाधिक जहरीले कवक हैं। कहा जाता है कि यदि मनुष्य इन कवकों का एक मिलीग्राम भी खा ले तो गम्भीर बीमारियाँ व मृत्यु भी हो सकती है। जहरीले कवक आदमी को कई प्रकार से प्रभावित कर सकते हैं। कुछ लोगों में कवकों के प्रति प्राकृतिक अरुचि होती है तथा वे उनको नहीं खा सकते। कई बार पकाने के दोष से, लम्बे सफर के बाद खाने से, खुम्बों को भूखे पेट या बिना किसी अन्य वस्तु के साथ खाने से अपचन हो सकता है। कई बार परजीवियों के आक्रमण से या फिर कार्बनिक पदार्थ के गलने सड़ने से खुम्ब सड़ जाते हैं। इन खुम्बों को खाने से मनुष्य के शरीर में कई विकार उत्पन्न हो सकते हैं।

विषैले खुम्बों की अनेक जातियों में एक विशिष्ट प्रकार का जहरीलापन होता है। उदाहरण के लिए **क्लाविसेप्स पुरपुरेआ** नामक कवक पेशीय तन्तु को उत्तेजित करता है। कुछ कवक जैसे कि **गीरोमित्रा एस्कुलेन्टा और रुस्सुला एमेटिका** इत्यादि लाल रक्त कोशिकाओं व आंत की लसलसी सतह पर प्रभाव डालते हैं और इनके खाने से पेट में गड़बड़, वमन, असह्य मरोड़, शरीर में शक्ति व भार की कमी महसूस होना आदि होते हैं। कुछ अन्य खुम्ब केन्द्रीय नाड़ी तन्त्र का पक्षाघात, नाड़ियों के अग्र भाग का विनाश, आंत की कोशिकाओं तथा लीवर का विनाश कर सकते हैं। इस प्रकार के कवक **अमानिटा** नामक वंश के हैं। इनको खाने से कदमों का लड़खड़ाना, देखने में बाधा, शरीर में बेहद पीड़ा का होना, अधिक हंसी आना आदि लक्षण दिखलाई देते हैं।

किसी विशेषज्ञ के परामर्श के बिना खुम्बों को खाना उचित नहीं है। सामान्यतः जहरीले खुम्ब दुर्गन्धयुक्त, लसलसे, हरे या लाल रंग के, खाने में कड़वे, भगुर व गुलाबी रंग के बीजाणुओं वाले होते हैं। इनमें चिपचिपा द्रव्य भरा होता है, ये प्याज को नीला व चाँदी के सिक्के व चम्मच को काला कर देते हैं किन्तु फिर भी ये सभी परीक्षण पूर्णतया विश्वसनीय नहीं हैं। अतः जहरीले खुम्बों की जानकारी के लिए अवश्य ही किसी खुम्ब विशेषज्ञ का परामर्श लेना चाहिए।

खाद्य पदार्थों का विनाश :—खाने की वस्तुओं के विनाश के लिए यद्यपि अन्य भी कई कारण होते हैं किन्तु उनमें कवक सबसे अधिक हानिकारक हैं। यदि खाद्य पदार्थों को रखने में सावधानी न बरती जाये तो इन पर बहुत प्रकार के कवकों का अतिक्रमण हो सकता है और ये खाने योग्य नहीं रह जाते। इस प्रक्रिया के लिए मोनीलीएल्स तथा म्यूकोरेल्स गणों के कवक ही अधिकतर उत्तरदायी हैं।

ओडियम लाक्टिस नामक कवक दूध व क्रीम को दुर्गन्धयुक्त व खाने के सर्वथा अनुपयुक्त कर देता है। यीस्ट **टोरुला करेमरिस** तथा **टोरुला स्फेरीका और ओडियम लाक्टिस** मक्खन पर उग कर उसमें मछली जैसी दुर्गन्ध पैदा कर देते हैं। कई बार मक्खन पर **पेनिसीलियम** तथा **आस्पेरजीलस** उगने के कारण हरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं और मक्खन खाने के योग्य नहीं रहता। **जेओट्रीकुम** जाति के कुछ कवक पनीर को दूषित कर

देते हैं जिसको खाने से मनुष्य के शरीर में कई प्रकार के रोग पैदा हो सकते हैं। **पेनिसीलियम डीजीटाटुम** नामक कवक सन्तरे व नींबू के ऊपर दुर्गंधयुक्त और हरे रंग के धब्बे पैदा करने के बाद इसे गला या सड़ा देते हैं। **आस्पेरजीलस, मूकर, राईजोपुस** आदि कवक डबल रोटी को खराब कर देते हैं। कवकों की कुछ जातियाँ जैसे **राईजोपुस नीगरीकेन्स** आदि सब्जियों पर भी उग आती हैं व उनको नष्ट कर देती हैं।

कुछ चीजें जैसे कपड़े, प्लास्टिक की वस्तुयें, नेत्र सम्बन्धी उपकरण, चमड़े का सामान, फोटोग्राफी फिल्में, कागज का सामान, विद्युत उपकरण आदि पर कुछ कवक उग सकते हैं और वे न इनको केवल कुरूप करते हैं अपितु उनके प्रयोग में भी बाधा डालते हैं।

कवक अलर्जीकारक के रूप में :—कवकों द्वारा मनुष्यों में भी कई प्रकार के रोग होते हैं जिन्हें 'माइकोसिस' कहते हैं। यद्यपि ये बीमारियाँ जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न बीमारियों से संख्या में बहुत कम हैं लेकिन इनमें से कुछ काफी खतरनाक हैं। उदाहरण के लिए फेफड़ों की बीमारियाँ, **आस्पेरजीलस फ्लावुस** व **आस्पेरजीलस नीजेर** आदि कवकों से होती हैं। त्वचा व फेफड़े से सम्बन्धित अन्य गम्भीर बीमारियाँ **कोक्सीडियोडोमीसेस, अभोरिआँन मीकोस्पोरॉन** आदि से होती हैं।

यद्यपि कवक का भोजन के रूप में प्रयोग प्राचीन समय से ही प्रचलित था परन्तु इनका सुनियोजित अध्ययन हमारे देश में प्रसिद्ध वैज्ञानिक बटलर के समय से ही प्रारम्भ हुआ। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'फन्जाई एण्ड प्लान्ट डिजीज' ने भारत में कवकों के शोध की आधार शिला रखी। इसके बाद तो सुन्दकर, मेहता, वासुदेवा आदि अनेक भारतीय कवक विशेषज्ञों ने पौधों की अनेक बीमारियों का सुनियोजित व विस्तृत अध्ययन करके भारतीय पादप रोग विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान किया। आधुनिक कवक वैज्ञानिकों में थीण्ड, सुब्रह्मण्यम, टंडन, थिरुमालाचार, दास गुप्ता, दस्तूर एवं बख्शी का कार्य विशेष रूप से सराहनीय है जिन्होंने आर्थिक महत्व की लगभग सभी कवक जातियों के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है। कवकों के अध्ययन की उपयोगिता का पता इसी बात से लग जाता है कि देश के विभिन्न भागों में अनेक शोध संस्थानों में वैज्ञानिक व विशेषज्ञ कवकों के उपयोगों, उनके द्वारा की जाने वाली विनाशलीला व उससे निबटने के उपायों की खोज में संलग्न हैं। इनमें भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान दिल्ली, हिन्दुस्तान एन्टीबायोटिक्स लि० पुणे, वन शोध संस्थान, देहरादून, पंजाब विश्व विद्यालय चंडीगढ़, मद्रास विश्वविद्यालय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग हावड़ा में भी उच्च वर्गीय कवकों का अच्छा संग्रह है जिनके वर्गीकरण सम्बन्धी पहलुओं पर कार्य चल रहा है।

22. भारत में अपुष्पी पादप-समूह 'लिवरवर्ट्स' की वर्तमान स्थिति

देवेन्द्र कुमार सिंह

लिवरवर्ट्स पादप खण्ड 'ब्रायोफाइटा' के अंतर्गत 'मसाई' अथवा मॉस के समकक्ष हिपैटिकी वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। लिवरवर्ट्स या हिपैटिकी की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द 'हिपैटिका' अर्थात् यकृत से हुयी है। इसका प्रयोग सर्वप्रथम मध्यकालीन युग में यकृताकार संरचना वाले पौधों के लिये किया गया तथा यह शब्द तत्कालीन मत 'डाक्ट्राइन आफ सिग्नेचर' का प्रतीक है। अत: प्राय: जनसाधारण लिवरवर्ट के रूप में विभिन्न आकार-प्रकार के, अनेक शाखाओं में विभक्त थैलसाभ पादप संरचना की कल्पना करते हैं। पर सच्चाई तो यह है कि इसकी लगभग 85 जातियां पर्णिल अर्थात् तना व पर्णधारी हैं। इसी प्रकार कभी-कभी 'मॉस' शब्द का प्रयोग ऐसी जातियों के लिये किया जाता है जिनका कि ब्रायोफाइटा खण्ड से कदापि कोई सम्बन्ध नहीं है। उदाहरणार्थ 'रेनडियर मॉस' एक प्रकार का शैवाक है, 'क्लबमास' लीकोपोडियम वंश की जातियों के लिये प्रयुक्त होता है। जब कि 'स्पेनिश मॉस' एक अतिविकसित, ब्रोमिलिएसी कुल का पुष्पी पौधा है।

विश्व में लिवरवर्ट्स की लगभग 11,000 जातियां पाई जाती हैं, पर भारत में इनकी कुल संख्या 1000 से भी कम है। कारण यह नहीं कि भारतीय परिस्थितियों में इतनी ही जातियां उगती होंगी। वास्तव में इसका प्रमुख कारण है देश में इस समुदाय के प्रति उचित लोकप्रियता का अभाव। फलस्वरूप विशेषज्ञों के अभाव में देश के दूर-दराज के बहुत से क्षेत्र इस समुदाय के अध्ययन की दृष्टि से अभी भी अछूते हैं। देश में विज्ञान जगत अथवा भारतीय वनस्पति-जात के लिये आये दिन नयी-नयी जातियों का वर्णन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। इसके अतिरिक्त हाल के सर्वेक्षणों से विदित है कि वर्तमान युग में अनेक कारणों से वनों के अविवेकपूर्ण अथवा विलासितापूर्ण उन्मूलन के फलस्वरूप उत्पन्न आवासी परिस्थितियों में विघ्न के कारण अनेक जातियों पर दिन प्रति दिन खतरा बढ़ता जा रहा है। आशंका तो इस बात की है कि कहीं इस रोचक किन्तु अल्प-परिचित समुदाय की कुछ जातियां वनस्पति जगत के प्रकाश में आने से पूर्व ही विलुप्त न हो जायं।

आज भारत में लखनऊ विश्वविद्यालय का वनस्पति विज्ञान विभाग लिवरवर्ट्स के अध्ययन का प्रमुख केन्द्र है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के हावड़ा स्थित केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय के क्रिप्टोगैमिक अनुभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ, इलाहाबाद एवं उदयपुर विश्वविद्यालय में भी इनका अध्ययन हो रहा है। इसके अतिरिक्त पिछले कुछ वर्षों से,

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के शिलांग एवं इलाहाबाद स्थित केन्द्रों में भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य हो रहा है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के शिलांग केन्द्र में पूर्वोत्तर भारत, विशेषकर अरुणाचल प्रदेश, के लिवरवर्ट्स का अध्ययन हो रहा है। यहां के पादपालय के क्रिप्टोगैमिक अनुभाग में इस क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से एकत्रित लगभग 4000 प्रतिदर्श संग्राहित हो चुके है एवं इनका अध्ययन प्रगति पर है। प्रस्तुत लेख में हम भारत में लिवरवर्ट्स के अध्ययन के विकास का संक्षेप में अवलोकन करेंगे।

भारतीय लिवरवर्ट्स के अध्ययन का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विदेशी वनस्पतिज्ञों द्वारा हुआ जिनमें लिंडेनबर्ग, लेह्मान, गॉट्शे, नीस, ग्रिफिथ, मिट्टेन आदि प्रमुख हैं। इनका अध्ययन मुख्यतया हुकर, थाम्पसन, ग्रिफिथ, वालिच, वाइट, ब्रांडिस, गैम्बेल, पेरॉट्टेट, डिकॉली एवं शाल तथा फ्लाइड्रेर आदि जैसे वनस्पतिज्ञों, सर्वेक्षकों, पर्यटकों एवं पादरियों द्वारा देश के बिभिन्न भागों से एकत्र किये गये प्रतिदर्शों पर आधारित है। इस प्रकार वर्णित, तमाम जातियों के प्ररूप अथवा प्रतिदर्श विदेशी पादपालयों (वनस्पति-संग्रहालयों) में संग्रहित है[1]। अत: वर्तमान युग में लिवरवर्ट्स की विभिन्न जातियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये आवश्यक प्रमाणिक प्रतिदर्शों की उपलब्धि यदि पूर्णतया असम्भव नहीं तो अत्यन्त दुष्कर है। फलस्वरूप भारतीय वनस्पतिज्ञों को अनेक जातियों की पहचान अथवा उनके सही वर्गिकीय व्यक्तित्व निर्धारण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

कश्यप ने 1914 में प्रथम भारतीय वैज्ञानिक के रूप में लिवरवर्ट्स पर अध्ययन कार्य आरम्भ किया। तथा बाद में पाण्डे, मेहरा एवं राम उदार ने इस परम्परा को नयी दिशा दी और इस विषय के बहुमुखी विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारतीय लिवरवर्ट्स के विकास के विभिन्न चरणों में हुये महत्वपूर्ण कार्यों की समय-समय पर पाण्डे, भारद्वाज, श्रीवास्तव, महाबले, महेश्वरी एवं कपिल तथा उदार ने समीक्षा की—उदार[2] ने अपनी पुस्तक ब्रायोलोजी इन इंडिया' में भारतीय लिवरवर्ट्स के अध्ययन के आरम्भ से 1973-74 तक की अवधि में इस विषय पर हुये विभिन्न योगदान की कुशलतापूर्वक व्यापक समीक्षा की है। अत: प्रस्तुत लेख में इस अवधि के बाद में हुये शोध-कार्यों की ही चर्चा संक्षेप में है।

कैलोब्रायेलेज : जातिवृत्तीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण इस गण से सम्बन्धित कुछ उल्लेखनीय कार्य हुआ है। कुमार एवं उदार ने दार्जिलिंग से **कालोब्रियम** वंश की एक नयी जाति, **का० डेन्टाटम** प्रकाशित की तथा बाद में इस जाति में बीजाणुउद्भिद की संरचना एवं संपुटिका स्फुटन प्रणाली का विस्तृत वर्णन किया। कुमार एवं उदार ने एक अन्य

1. केवल पश्चिम हिमालय क्षेत्र की कुछ जातियों के प्रतिदर्शों को वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में रखा गया।
2. उदार, आर. (1976) **ब्रायोलोजी इन इंडिया**। नई दिल्ली : क्रॉनिका बोटेनिका कं०।

प्रकाशन में दार्जिलिंग से ही एक और नयी जाति हाप्लोमिट्रिउम ग्रोल्लेई का वर्णन किया। उदार एवं सिंह ने इसी वंश की एक अत्यन्त दुर्लभ जाति हा० हुकेरी का भारत के पश्चिम हिमालय क्षेत्र से पहली बार वर्णन किया तथा इस स्थान में इसकी परिस्थितिकी एवं पादपा-समाज विज्ञान सम्बधित तथ्यों पर भी प्रकाश डाला। उदार एवं श्रीवास्तव ने इस जाति की बीजाणुउद्भिद के कुछ उल्लेखनीय तथ्यों का उल्लेख किया।

मेहरा एवं कुमार[1] ने कालोब्रिउम डेन्टाटुम एवं का० ईन्डिकुम का कोशिका विज्ञान सम्बंधित अध्ययन किया एवं उनके गुण-सूत्रों की संरचना के आधार पर दोनों जातियों की पृथकता के साथ-साथ 'मेट्जगेरिएलेस' के साथ इस वर्ग के सम्भावित सम्बन्धों का संकेत दिया।

जुंगरमैनिऐलेज : देश की अधिकतर लिवरवर्ट सम्पदा इसी वर्ग से सम्बंधित है एवं इस अवधि में इस वर्ग पर अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुये हैं। किटागावा ने भारत की कुछ अल्प-परिचित जातियों का संक्षिप्त वर्णन किया तथा लोफोकेलेआ सिक्किमेन्सिस का वर्गिकीय व्यक्तित्व निर्धारण के साथ-साथ उसके वर्गिकी, परिस्थितिकी एवं वितरण सम्बन्धी विस्तृत अध्ययन किया। उदार एवं श्रीवास्तव ने प्रयोगशाला में लोफोकेलेआ बीडेन्टाटा के बीजाणु संवर्धन का अध्ययन किया।

उदार एवं श्रीवास्तव ने दक्षिण भारत से हर्बर्टा वंश के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया तथा इसकी तीन जातियों का वर्णन किया। उदार एवं आदर्श कुमार ने पूर्व हिमालयी क्षेत्र से कान्ड्रोनान्थुस का वर्णन किया। भारत में इस वंश की यही तीन जातियां केवल इसी क्षेत्र में पायी जाती हैं। उदार एवं श्रीवास्तव ने दक्षिण भारत से ट्रीकोकोलेआ टोमेन्टेला एवं नोटोस्कीफुस लेउटेस्सेन्स का वर्णन किया तथा उदार एवं सिंह ने पूर्वी हिमालय से ट्राइकोलिआ का दो नयी जातियों का विस्तृत वर्णन किया।

उदार एवं नाथ ने सेफालोजिआ सिआमेन्सिस को भारतीय वनस्पति-जात में पहली बार अन्वेषित किया तथा उदार एवं कुमार ने पूर्वी हिमालय से इस वंश की 5 जातियां प्रकाशित कीं जिनमें से० गोल्लानिई के अतिरिक्त शेष जातियां वनस्पति जगत के लिये सर्वथा नयी हैं। इसके अतिरिक्त सेफालोजिआ वंश की चार नयी जातियों का वर्णन भी किया गया। उदार एवं आदर्श कुमार ने भारत में कोनेकोलेआ वंश का पहली बार उल्लेख किया तथा इसकी एक नयी जाति का वर्णन किया। पुरानी दुनिया में इस वंश की उपस्थिति का यह पहला उल्लेख है।

उदार, श्रीवास्तव एवं धीरेन्द्र कुमार ने एक दुर्लभ मारसूपियमधारी वंश जेमोका-लिक्स का भारत से पहली बार उल्लेख किया तथा इसके वर्गिकीय एवं पादपसमाजकीय तथ्यों

---

1. मेहरा, पी०एन० एवं डी० कुमार (1980) साइटोलोजी ऑफ टू इंडियन केलोब्रायेलेज। जे० हट्टोरी बॉट० लैब०, 47 : 57-61.

का विस्तृत अध्ययन किया। उदार एवं आदर्श कुमार ने **जुन्गेरमान्निआ स्फीरोकार्पा** एवं **गोट्शेलिआ शीओप्लेउरा** का भारत से पहली बार उल्लेख किया और एक दुर्लभ एवं सीमितक्षेत्री लिवरवर्ट, **नार्डिआ आसामिका** के वर्गिक व्यक्तित्व की प्रमाणिकता एवं **एना० सीबोल्डिई** से उसकी पृथकता का विश्लेषण किया। उन्होंने **नोटोस्कीफुस** वंश की भारतीय जातियों पर प्रकाशित अपने लेख में दो नयी जातियों का वर्णन किया तथा भारतीय जातियों की एक दूसरे से वर्गिकीय भिन्नता का व्यापक विश्लेषण के साथ इन सभी जातियों के वितरण एवं उनके पादप-भूगोलीय महत्व का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने **जैकिएला** वंश का विस्तृत वर्णन किया तथा एक अन्य प्रकाशन में भारत से पहली बार इसकी कुछ जातियों का वर्णन किया। लाल[1] ने एक रोचक एवं दुर्लभ वंश **कोलूरा** का भारत से पहली बार वर्णन किया।

उदार एवं अवस्थी ने भारत में **आर्कीलिजेउनेआ** वंश के वर्गिकीय व्यक्तित्व का विश्लेषण किया।

दीक्षित इत्यादि (1982) ने **प्टीकान्थुस स्ट्रिआटुस** के कवकनाशक गुणों का अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त ग्रेडस्टाइन, ग्रेडस्टायन एवं इनाबु, मिज़ुतानी (1976, 1979) आदि ने भी भारतीय लिज्युनिएसी पर योगदान दिया।

उदार एवं नाथ ने **जुबुला** एवं **फ्रूल्लानिआ** वंश की दो नयी जातियों का वर्णन किया तथा लाल ने **फ्रूल्लानिआ तुयामाएका** भारत से पहली बार उल्लेख किया। हट्टोरी एवं थायर्थांग ने भारत से **फ्रूल्लानिआ** की 25 जातियों का वर्णन किया जिनमें दो नयी जातियों, तथा 4 उप जातियों के अतिरिक्त दो जातियों का भारत से पहली बार उल्लेख किया गया।

हट्टोरी ने भारत से **पोरेल्ला** वंश की 10 जातियों एवं 8 उपजातियों का उल्लेख किया। उदार एवं शाहीन ने जेनेवा पादपालय में संग्रहित **पोरेल्ला** वंश की कुछ जातियों के वर्गिकीय व्यक्तित्व की विवेचना की।

इस अवधि में जुंगरमैनिएलेज की वर्गिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय 'आयल-बाडीज' पर भी महत्वपूर्ण योगदान हुआ तथा अनेक जातियों में इन रचनाओं का अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त प्रकृति में **प्लाजिओकिला** वंश में 'प्रोपेग्यूल्स' के विकास का अध्ययन भी हुआ।

मेट्ज़ीरिएलेज : इस गण के अध्ययन पर इस अवधि में विशेष ध्यान दिया गया तथा फोसम्ब्रोनिआसी, मेट्जगेरिआसी एवं आनेउरासी कुलों पर प्रकाशित प्रबंधीय (मोनोग्राफिक) अध्ययन

---

1. लाल, जे० (1977) **कोलूरा** डुम० (हिपेटिकी)—ए जीनस न्यू टू इंडियन फ्लोरा, **करंट साइंस**, 46 : 618.

इस दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान है। फोसम्ब्रोनिआसी कुल के अंतर्गत **फोसम्ब्रोनिआ** वंश की एक नयी जाति सहित 7 जातियों का विस्तृत वर्णन किया गया। इसके अतिरिक्त इस कुल के अधीन **पेटालोफिल्लुम ईन्डिकुम** एवं **सेवार्डिएला टूबेरीफेरा** का भी संक्षिप्त वर्णन किया गया। इसी प्रकार मेट्जगेरिआसी कुल के अंतर्गत **आपोमेट्जगारिया प्युबेसेंस** के अतिरिक्त **मेट्जगारिआ** वंश की 9 जातियों एवं एक उपजाति का विस्तृत वर्णन किया गया। **आनेउरासी** कुल के अधीन **आनेउरा** की दो तथा **रीकार्डिआ** वंश की 7 जातियों का वर्णन किया गया। **रीकार्डिआ** की कुछ जातियों में **आयल बाडीज** का अध्ययन भी किया गया। सिंह[1] ने इस वर्ग की एक अत्यन्त दुर्लभ एवं रोचक जाति **ब्लासिआ पुसील्ला** का पूर्वोत्तर भारत (अरुणाचल प्रदेश) से पहली बार वर्णन किया।

श्रीवास्तव एवं उदार ने भारत में इस गण के विभिन्न 'ब्रायोजियोग्रेफिक' क्षेत्रों में वितरण सम्बन्धी अध्ययन किया। पूर्वी हिमालय क्षेत्र में सर्वाधिक 40 वर्गिक पाये जाते हैं तथा 25 वर्गिकों सहित दक्षिण भारतीय क्षेत्र का दूसरा स्थान है। इनमें से 13 वर्गिक दोनों क्षेत्रों में समान रूप से पाये जाते हैं। अन्य क्षेत्रों में इनका प्रतिनिधित्व बहुत कम है।

इस गण की अनेक जातियों में 'आयल-बाडीज' संरचना का अध्ययन किया गया, जिससे इस गण की वर्गिकी में इनके महत्व की पुष्टि हुई तथा सोखी एवं मेहरा[2] ने **आनेउरा पुसील्ला** एवं **आ० पिन्गुईस** की भ्रौणिकी का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा इससे सम्बंधित अनेक उल्लेखनीय तथ्यों पर प्रकाश डाला। मेहरा एवं कुमार (1980) ने **आ० ईन्डिका** के गुण-सूत्रों का अध्ययन किया।

मार्कन्सिऐलेज : सिंह ने **मार्कान्टिआ** वंश की दो जातियों; **मा० पॉलीमॉर्फा** एवं **मा० पॉलीआसिआ** के पुंधानीधर में चार विभिन्न प्रकार की असमानताओं का उल्लेख किया, जो कि सम्पूर्ण लिवरवर्ट के किसी भी वंश के लिये सर्वथा विचित्र है। उदार एवं शाहीन ने इस वंश की एक नयी जाति **मा० कश्यपिई** का वर्णन किया। बापना एवं सिंह ने माउंट आबू में **रिबुलिआ हेमिस्फेरिका** की उपस्थिति का उल्लेख किया।

उदार एवं गुप्ता ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों से **टार्जिओनिआ** वंश का विस्तृत विश्लेषणात्मक अध्ययन किया। उदार एवं सिंह ने दार्जिलिंग से **सीआथोडिउम** वंश की एक

---

1. सिंह डी० के० (1982) कंट्रिब्यूशन टू द लिवरवर्ट फ्लोरा ऑफ अरुणाचल प्रदेश—एन० न्यू एण्ड नोटवर्दी हिपेटिक्स फ्रोम कामेंग। **जे० इंडियन, बाट० सोसा०** 61 (सप्ली०) 34.
2. सोखी जे० एवं पी० एन० मेहरा (1973) कम्परेटिव एम्ब्रियोलोजी ऑफ **आनेउरा पिन्गुइस** एन्ड **आ० पुसील्ला**। **जे० हट्टोरी बाॅट० लैब'**, 37 : 1-54.

नयी जाति प्रकाशित की तथा इस जाति के स्त्री-पादप के एक रोचक प्रतिदर्श में पुंजायांगी की उपस्थिति एवं विचित्रता तथा उसका इस वंश में जातिवृत्तीय महत्त्व का वर्णन किया। उन्होंने पश्चिम हिमालय से भी **सीआथोडिउम** की एक अन्य नयी जाति का वर्णन किया; तथा सिंह ने अरुणांचल प्रदेश से एक और नयी जाति **सी० मेहरानुम** प्रकाशित की। लाल ने **सी० डेन्टीकुलाटुम** की बीजाणु संरचना एवं बीजाणु चर्म अलंकरण का अध्ययन किया। कंवल ने **रिक्सिआ** वंश की एक नयी जाति, **रि० उदारिई** का वर्णन किया।

मेहरा एवं सोखी (1977) ने **क्रिप्टोमिट्रिउम हिमालयेन्से** की भ्रौणिकी का विस्तृत अध्ययन किया तथा इस जाति की 'आयल-बाडीज' का भी वर्णन किया। उदार एवं सिंह ने प्रयोगशाला में इस जाति के बीजाणु संवर्धन का अध्ययन किया। तथा उदार एवं शाहीन ने इस गण की 6 जातियों में 'आयल-बाडीज' का अध्ययन किया। अहमद एवं डगर ने **रिक्सिआ डीस्कोलोर** के पुनर्जीवन (रिजेनेरेशन) पर आक्सिन एवं एन्टीआक्सिन के प्रभाव का अध्ययन किया तथा इस वंश में जैविक कोशिकाओं की पुनर्जीवन क्षमता की पुष्टि की। इसके अतिरिक्त मेहरा (1977) ने भारत की अनेक एकलिंगी एवं द्विलिंगी लिवरवर्ट जातियों में कोशिकाविज्ञान सम्बंधी अध्ययन किया तथा इसमें गुण-सूत्रों की संरचना एवं उनके आकार के आधार पर विभिन्न वर्गों में आपसी सम्बंधों पर प्रकाश डाला।

ऐन्थोसिरोटेलेज:—इस अवधि में इस वर्ग के अंतर्गत मुख्यतया **फोलिओसेरॉस** एवं **नोटोथीलास** वंश की विभिन्न जातियों के माफॉटैक्सोनामिक अध्ययन पर विशेष ध्यान दिया गया एवं इस दिशा में अनेक महत्त्वपूर्ण योगदान हुए। भारद्वाज ने भारत एवं इंडोपैसिफिक क्षेत्र में **फोलिओसेरॉस** की अनेक जातियों का वर्णन किया तथा इस वंश के अंतर्गत स्वयं द्वारा प्रकाशित कुछ नये संसर्गों को सप्रमाणित किया। उदार एवं शाहीन ने इस वंश की एक नई जाति **फो० पाण्डेई** प्रकाशित की तथा पहली बार इसकी कैप्स्यूल भित्ति की आंतरिक कोशिकाओं में अनियमित पट्टियों की उपस्थिति का उल्लेख किया। उदार एवं सिंह ने **फोलिओसेरॉस अप्पेन्डीकुलाटुस** का भारत से पहली बार उल्लेख किया। सिंह ने अरुणाचल प्रदेश से इस वंश की दो नई जातियों, **फो० पौलीफॉर्मिस** एवं **फो० पोलीऑन्ड्रस** का वर्णन किया।

उदार एवं चन्द्र ने पश्चिम घाट क्षेत्र से **नोटोथीलास** वंश की एक कन्दयुक्त, नयी जाति का वर्णन किया। उदार एवं सिंह ने **नोटोथीलास लेविएरी** की कैप्स्यूल भित्ति की आन्तरिक कोशिकाओं में वलयाकार व सर्पिल पट्टियों की उपस्थिति का सर्वप्रथम उल्लेख किया। उन्होंने इस विशिष्टता को एक ओर इसी गण के एक अन्य सदस्य **डेन्ड्रोसेरोस क्रिस्पुस** की कैप्स्यूल भित्ति एवं अश्मीभूत, टेरिडोफाइट्स **र्‌हीनि**... एवं **होर्नेओफीटॉन** की बीजाणुधानी भित्ति में, तथा दूसरी ओर शेष लिवरवर्ट्स की अधिकतर जातियों की कैप्स्यूल भित्ति में पाई जाने वाली समान पट्टियों की अनुरूपता की व्याख्या की और इसके आधार पर एक ओर ब्रायोफाइटा व टेरिडोफायटा के मध्य तथा दूसरी ओर इस वर्ग

और लिवरवर्ट्स के बीच निकट सम्बंधों की सम्भावना का संकेत दिया। उन्होंने अपने अन्य प्रकाशनों में इस वंश की 5 अन्य नयी जातियों का वर्णन किया।

उदार एवं सिंह ने भारत में पश्चिमी घाट क्षेत्र से **नोटोथीलास डिस्सेक्टा** का पहली बार उल्लेख किया एवं इसके कैप्स्यूल भित्ति, स्तम्भिका व बीजाणुचर्म सम्बंधित अनेक उल्लेखनीय लक्षणों का पहली बार वर्णन किया। यह जाति जो कि इस क्षेत्र के अतिरिक्त केवल ग्वाटेमाला में पायी जाती है, द्विकेन्द्रीय-पार महासागरीय वियोजित वितरण दर्शाती है एवं पादप-भूगोलीय दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

उदार एवं सिंह ने **फाएओसेरॉस** वंश के अंतर्गत कुछ नये संसर्गों को प्रस्तावित किया एवं **आन्थोसेरॉस** की जातियों को इस वंश में स्थानान्तरित किया। सिंह (1983) ने एक रोचक नयी जाति **फाएओसेरॉस प्रोस्काउएरी** का अरुणाचल प्रदेश से वर्णन किया।

पादप-जातीय अध्ययन:—इस अवधि में श्रीवास्तव, लाल एवं परिहार तथा सिंह ने क्रमश: कश्मीर घाटी, अमर कंटक (मध्य प्रदेश) एवं बारापानी (मेघालय) से लिवरवर्ट्स की अनेक जातियों का उल्लेख किया।

23. हमारे जीवन में अपुष्पी पौधों का महत्व—मॉस

जितेन्द्र नाथ वोहरा

हम जीवन में आम तौर पर पुष्पी पौधों के ही सम्पर्क में आते हैं। पुष्पी पौधों से खाद्य पदार्थ, लकड़ी, औषधि इत्यादि प्राप्त होने के कारण हम उनसे अधिक परिचित हैं। अपुष्पी पौधे, जिनकी भारत में लगभग 30,000 जातियां हैं (अर्थात् पुष्पी पौधों से दुगुनी हैं), भी वनस्पति का एक अभिन्न अंग हैं। इनमें शैवाल (एल्गी), कवक (फन्जाई), मॉस, लिवर्वर्ट्स, फर्न्स, शैवाक आदि शामिल है। वनस्पति जगत के विकास को समझने में इस समुदाय के पौधों का अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। हरे पौधों में शैवाल सबसे अधिक प्राचीन हैं। इनकी उत्पत्ति कैम्ब्रियन समय में 56 करोड़ वर्ष या इससे भी पूर्व समझी जाती है। इनका आकार बहुत सरल है। अधिकांश पौधे अपना जीवन जल में ही व्यतीत करते हैं। ब्रायोफाइट्स और टेरीडोफाइट्स (एम्ब्रीयोफाइटा) के उत्पत्ति के समय के बारे में विद्वानों में मतभेद हैं, किन्तु इनके जीवाश्म (फौसिल) से यह सिद्ध हो चुका है कि कार्बोनिफेरस काल (31 करोड़ वर्ष पूर्व) तक ये पौधे काफी विकसित हो चुके थे[1]। यह आरंभिक स्थलीय पौधे कहलाते हैं। इनकी बनावट अधिक पेचीदी है, इनको निषेचन के समय पानी की आवश्यकता होती है इसलिए इनकी उत्तम उपज आर्द्र तथा ठण्डे वातावरण में होती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि इनके पूर्वज जल में रहते थे। इनकी तुलना उभयचर (एम्फिबियस) जीव-जन्तुओं से की जाती है। पिछले लगभग 23 करोड़ वर्षों (परमियन काल) से स्थल पर पुष्पी पौधों की प्रमुखता बनी हुई है, फिर भी निम्न वर्ग के यह पौधे हिमालय तथा अन्य पहाड़ी इलाकों में जहां इन्हें अनुकूल वातावरण मिलता है पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

जैसा कि पहले कहा गया है, इन पौधों के अध्ययन ने स्थल पौधों के जन्म और विकास पर प्रकाश डाला है। आगे भी और जानकारी मिलने की सम्भावना है। इसीलिए इनका अब हर प्रकार से अध्ययन किया जा रहा है। बहुत प्राचीन होते हुए भी इनके विकास की गति बहुत धीमी है। कार्बोनिफेरस काल के कई वर्गों के संबंधी अभी भी जीवित हैं। वैसे भी जीवित पौधों की मूल रचना, उस समय के जीवाश्म सम्बन्धियों से कोई विशेष भिन्न नहीं है। पीढ़ियों के एकान्तरण (ऑल्टरनेशन ऑफ जैनरेशन) जैसी जीवन प्रणाली जिसकी नींव अतीत में पड़ी थी, भी अभी तक प्रचलित है। विपरीत परिस्थितियों के बावजूद, अपुष्पी पौधों ने जीवित रहने के लिए उचित स्थान ढूंढ लिये। बाद में पृथ्वी पर जलवायु धीरे-धीरे शुष्क हो जाने के कारण

---

1. बीटी, सी० बी० (1978) दि कॉजिज आफ ग्लेसियेशन। **अमे० साइन्स 66 : 452-459.**

इनकी बहुत सी जातियां नष्ट हो गई परन्तु ये परिस्थिति पुष्पी पौधों के विकास हेतु अनुकूल ही है।

नये-नये पौधों की खोज के लिए आजकल सारी दुनिया में सर्वेक्षण किये जा रहे हैं। वैज्ञानिक ऐसे पौधों की खोज में हैं जो विभिन्न वर्ग के पौधों के बीच की कड़ी हों। किन्तु, सबकी दृष्टि उष्ण कटिबन्धीय (ट्रापिकल) देशों की ओर केन्द्रित है। क्योंकि इन देशों में पौधों के सर्वेक्षण का कार्य अभी पूरा नहीं हुआ है। यहां वनस्पति ठंडे देशों से भिन्न हैं, और जातियों की संख्या भी अधिक है। भारत में यह दायित्व भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग पर है।

देश के कुछ केन्द्रों में सूक्ष्म यंत्रों की सहायता से अपुष्पी पौधों का विस्तृत अध्ययन किया जा रहा है। इसमें पुमणु (स्पर्मटोजॉएड्स), गुण सूत्र (क्रोमोसोम) और स्पोर आदि की एस० ई० एम० (स्केनिंग इलैक्ट्रान-माइक्रोस्कोपी) से जांच और पुरातत्व वनस्पति का अध्ययन आदि शामिल हैं। हाल ही में ऊर्जा और भोजन के नये स्रोत के रूप में इन पौधों का महत्त्व बढ़ा है। शैवाल से हाइड्रोजन और मीथेन गैस निकालने के उपाय किये जा रहे हैं। समुद्री शैवाल एवं अन्य से बड़े पैमाने पर आयोडीन प्राप्त होती है। देश के अनेक भागों में मशरूम उगाये जा रहे हैं और इनकी नयी खाद्य उपयोगी जातियों की खोज का कार्य बड़े जोरों पर है। कुछ 'ब्रायोफाइट्स' में सेन और बनर्जी ने 'एन्टीबॉयोटिक्स' खोजने के प्रयास भी किये हैं।

सामान्य भूमिका के बाद आगे की चर्चा केवल ब्रायोफाइट्स से ही सम्बन्ध रखती है। इनमें भी मॉस का विवरण विशेष रूप से किया गया है। मॉस हरे रंग के, लम्बाई में 2 मि० मी० से 2 से० मी० के आस पास, समूह में रहने वाले होते हैं। अधिकतर पहाड़ी इलाकों में पाये जाते हैं परन्तु वर्षा में मैदानी इलाकों में घर के आस पास दीवालों पर काई के रूप में जम जाते हैं।

मॉस का ऐतिहासिक संग्रह : भारतीय उप महाद्वीप में प्राय: पिछली दो शताब्दियों से मॉस एकत्रित की जा रही हैं। बुकेनान हेमिल्टन ने सर्व प्रथम मॉस एकत्रित की। उन्होंने नेपाल में सर्वेक्षण किया। इनके बाद वालिच, ग्रिफिथ, हुकर, कुर्ज, थॉमसन, डथी और उसके सहयोगी, गोलान आदि मुख्य संग्रहकर्त्ता थे। इस ऐतिहासिक संग्रह के कुछ भाग कलकत्ता पादपालय में सुरक्षित हैं। स्ट्रेंची और विंटरबॉटम ने भी कुछ संग्रह किये। दक्षिणी भारत में पैरोटेट, वॉकर आदि का कार्य प्रशंसनीय है। इनमें ग्रिफिथ ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो अच्छे संग्रहकर्त्ता होने के साथ-साथ निपुण विशेषज्ञ भी थे। उन्होंने मॉस की 101 नयी जातियों का वर्णन किया अन्य संग्रहकर्त्ताओं ने अपनी सामिग्री पश्चिमी देशों के विशेषज्ञों को भेज दी जिन्होंने इनका उल्लेख विदेशी ग्रंथों में प्रकाशित किया। शुरू के कुछ संग्रह सर विलियम हुकर के हाथ लगे जिन्होंने कुछ नयी जातियों का वर्णन किया। मिट्टन का कार्य सबसे सराहनीय है। उन्हें उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के सभी संग्रह की जांच करने का अवसर प्राप्त हुआ। 1859 में मिट्टन ने भारतीय मॉस पर एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया। भारतीय वनस्पति में सबसे अधिक

नयी जातियां खोजने का श्रेय उन्हीं को है। इनके प्ररूप (टाइप्स) न्यूयार्क बोटेनिकल गार्डन में सुरक्षित हैं। डथी, गोलानि आदि की पश्चिमी हिमालय की सामग्री की एक कुशल जर्मन ब्रायोलोजिस्ट, ब्रोद्रस ने जांच की। उन्होंने 1898 के एक लेख में अनेक नयी जातियों का वर्णन किया। इनके प्ररूप, हेलसिंकी के पादपालय में रखे हुए हैं और बहुत से सह प्ररूप (आइसो टाइप्स) कलकत्ता के पादपालय में रखे हुए हैं। कुर्ज, प्रेन और किंग के संग्रहों का नामकरण प्रो० गांगुली ने किया है। यह सब संग्रह कलकत्ता पादपालय में रखे हुए हैं। किन्तु डथी की कुमाउं की सामग्री का अभी तक नामकरण नहीं हो पाया।

इस दौरान काफी संग्रह जर्मन ब्रायालोजिस्ट कार्ल मुलर तथा फ्रांसीसी विशेषज्ञ रेनाल्ड और कार्डट तथा बैस्चेरल ने भी अनेक नई जातियों सहित प्रकाशित किया।

आधुनिक संग्रह :

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के संग्रहकर्त्ताओं में स्टूअर्ट (कश्मीर), बर्किल (बॉटनी आफ अबोहूर हिल्स, 1911-12), बोर (असम) के नाम प्रसिद्ध हैं। स्टुअर्ट का संग्रह अमरीकी विशेषज्ञ बार्ट्रम ने तथा बर्किल और बोर का संग्रह अलग-अलग डिक्सन ने प्रकाशित किया। इन लोगों ने अनेक नई जातियों की खोज की।

भारतीय संग्रहकर्त्ताओं में शिवराम कश्यप के शिष्य बधवार प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने मॉस का संग्रह किया। उन्होंने चम्बा और पांगी घाटी (हिमाचल प्रदेश) में सर्वेक्षण किया। जिसके संग्रह का प्रकाशन कई जातियों सहित 1938 में डिक्सन के साथ किया गया। डिक्सन के सभी प्ररूप ब्रिटिश म्युजिअम नेचुरल हिस्ट्री, लन्दन और कुछ एडीनबरा में हैं।

रेवर्ड फादर फुर्रो (जो सैक्रेड हार्ट कॉलेज, शेम्बेगनूर में अध्यापक थे) ने पलनी हिल्स में कई वर्षों तक मॉस एकत्रित की। शुरू का संग्रह उन्होंने एक फ्रांसीसी ब्रायोलोजिस्ट पी० डीला० वार्डी को भेजा। वार्डी ने 1920 और 1927 के दौरान फ्रांसीसी पत्रिकाओं में इन्हें प्रकाशित किया। इनमें अनेक नयी जातियां थीं। ये सब संग्रह वहां से भारत लौटकर नहीं आये। इनके प्ररूप इस समय पेरिस पादपालय (पी० सी०) में रखे हुए हैं। फुर्रो ने लगभग 1960 तक अपना संग्रह जारी रखा और सारी सामग्री शेम्बेगनूर में स्वयं स्थापित पादपालय में सुरक्षित रखी। यह पादपालय इस समय सैण्ट जोजफ कॉलेज त्रिचुरापल्ली में फादर मैथ्यूस की देख रेख में है। फादर फुर्रो ने अपने संग्रह का एक सैट भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को भेंट किया। 1961 में उन्होंने पलनी हिल्स की मॉस पर एक महत्त्वपूर्ण लेख प्रकाशित किया[1]।

---

1. फुर्रो, जी० (1961) मॉस फ्लोरा आफ पलनी हिल्स। **जर्नल० बोम्बे० नेचु० हिस्ट० सोस० 58** : 13-47.

भारत में इस दिशा में उल्लेखनीय प्रयास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद किए गए। माँस पर अनुसन्धान के लिए पहला केन्द्र पंजाब विश्वविद्यालय में 1950 में श्री चोपड़ा ने स्थापित किया। यहां पश्चिमी हिमालय से माँस एकत्रित की गयी। चोपड़ा ने एक पुस्तक 'टेक्सोनोमी आफ इंडियन मॉसेस, एन इन्ट्रोडक्शन 1975 में प्रकाशित की। इसके अतिरिक्त उन्होंने मंसूरी की माँस की एक सूची तथा अन्य दो तीन लेख प्रकाशित किए।[1,2]

दूसरा केन्द्र गांगुली ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में 1950 के लगभग स्थापित किया। उन्होंने पिछले 30 वर्षों में दार्जिलिंग, सिक्किम, पश्चिमी बंगाल के मैदानी इलाकों, उड़ीसा और अण्डमान निकोबार द्वीप समूह आदि से माँस एकत्रित की। इन्होंने 1969-80 के दौरान एक बहुमूल्य ग्रन्थ (मॉसेज आफ ईस्टर्न इण्डिया) आठ भागों में प्रकाशित किया। इस उच्च कोटि के कार्य की विश्व भर में सराहना हुई है। गांगुली ने अपना महत्वपूर्ण निजी पादपालय, पुस्तकालय सहित भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण को प्रदान कर दिया है।

1959 से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग में अपुष्पी पौधों के अध्ययन हेतु एक अलग से अनुभाग शुरू किया गया। उस समय से अब तक भारत के कई भागों के सर्वेक्षण किए गए हैं। इसमें कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, मंसूरी, टिहरी, सिक्किम, दार्जिलिंग, भूटान, मेघालय, मनीपुर, नीलगिरी हिल्स और केरल की 'साइलेन्ट वैली' और 'पेरियार टाइगर रिजर्व' आदि शामिल हैं। इस संग्रह में से वोहरा ने अनेक लेख प्रकाशित किए। इन लेखों में 17 नई जातियाँ और 20 नए रिकार्ड्स का भी वर्णन है। 'साइलेन्ट वैली' के अपुष्पी पौधों पर एक लेख प्रकाशित हुआ।[3] यह कहना मुनासिब होगा कि भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग, प्रथम ऐसी संस्था है, जिसके विशेषज्ञों ने 'साइलेन्ट वैली' के घने ट्रोपिकल जंगलों के बीच में जाने का साहस किया और बहुमूल्य सामग्री आदि प्राप्त की। माँस के एक गण हिप्नोब्राएलेज पर भी एक पुस्तक प्रकाशित हुई।[4] कुछेक लेख वोहरा और वधवा ने एक साथ प्रकाशित किए। इस समय 'सब आर्डर' हिपनिनी और कुल पौटिओसी को दोहराया जा रहा है। दक्षिण भारत की माँस का अध्ययन विस्तार पूर्वक किया जा रहा है। पादपालय में स्थित ऐतिहासिक

---

1. विजिक, आर० वेनडर एवं आर० एस० चोपड़ा (1966) ए प्रिलिमिनरी की टू द जेनेरा ऑफ इण्डियन मॉसेस। **रिस० बुल० पंजाब यूनिव०** (एन० एस०) **17**: 149-191.
2. चोपड़ा आर० एस० एवं एस० एस० कुमार (1981) **मौसेज आफ वैस्टर्न हिमालया एण्ड एडजसेन्ट प्लेन्स**।
3. वोहरा जे० एन०, के० एन० राय चौधुरी, आर० के० घोष, बी० डी० कार एवं के० पी० सिंह (1982) **ओबजरवेशन्स आफ दी क्रिप्टोगैमिक फ्लौरा आफ साईलैन्ट वैली**, कलकत्ता।
4. वोहरा जे० एन० (1983) **हिपनोब्राएलेज सब आर्डर लैस्किनी ऑफ द हिमालयाज**, कलकत्ता।

कच्छ वनस्पति का दृश्य

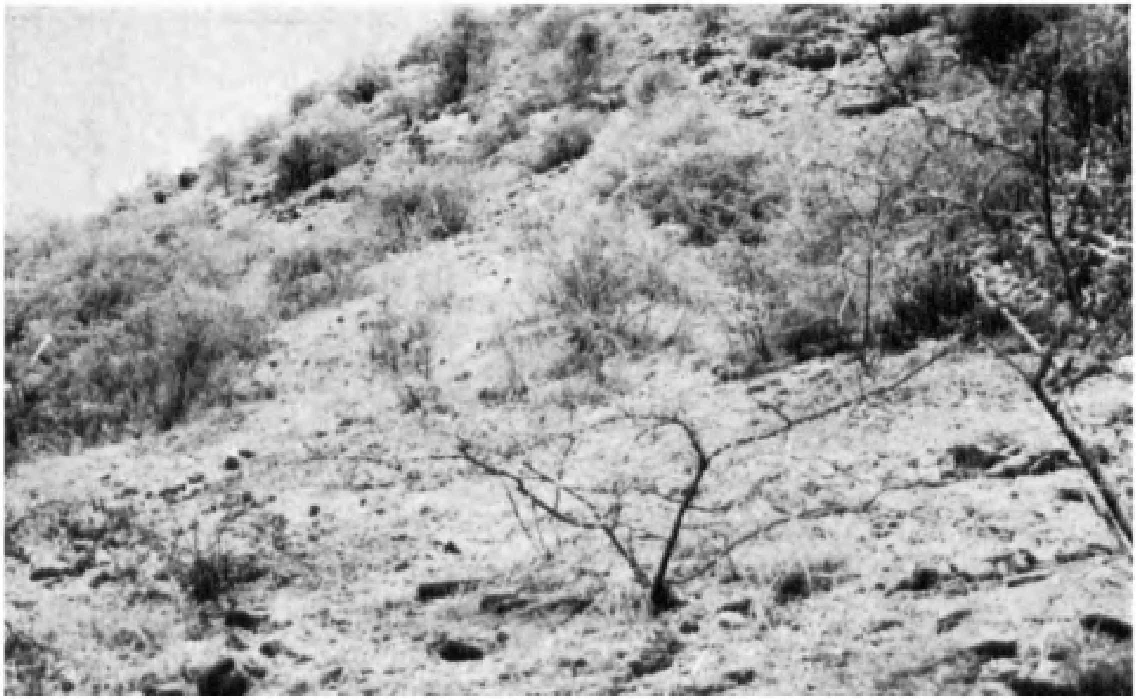

क्षुपवन का एक दृश्य

देखें लेख सं 15

शोला वन का एक दृश्य

'हिलटॉप' वन

देखें लेख सं 15

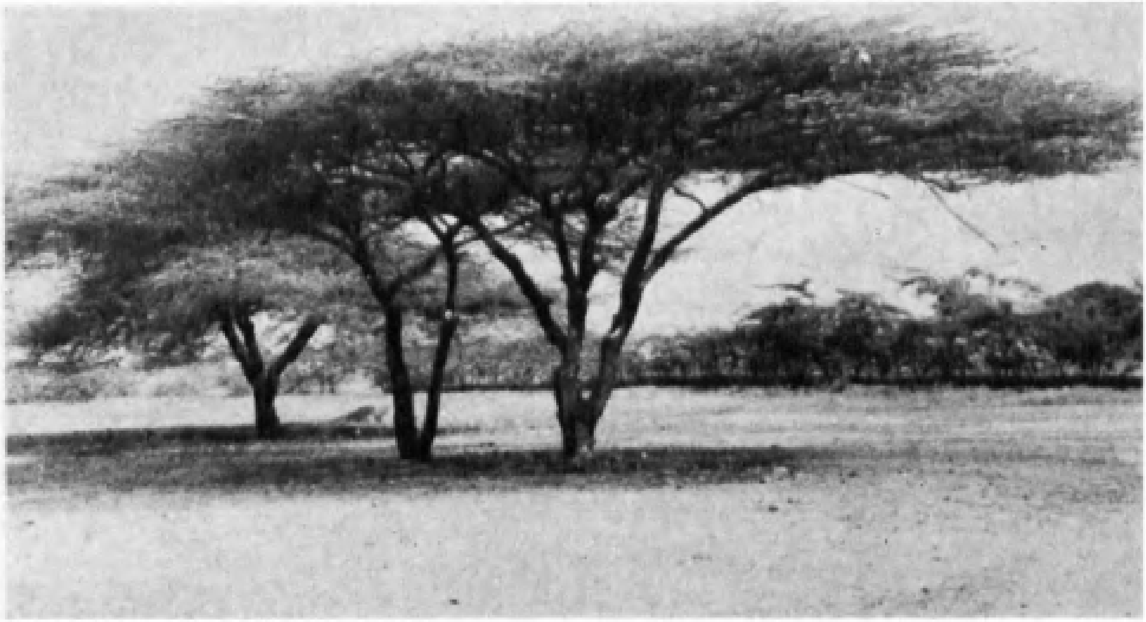

अकासिया प्लेनीफ्रॉंस

घास के मैदान का एक दृश्य

देखें लेख सं 15

र्‌हीजोफोरा : वायुशिफ (मैनग्रोव) वन का एक वृक्ष।

स्काएवोला सेरीसेआ : पुलिन वनों का एक प्रमुख पौधा।

देखें लेख सं 16

ड्राकीफुस बीकोलॉर : वृक्ष के आधार पर (साइलेन्ट वैली)

हान्डेलिओब्रिउम सेट्शवानीकुम : एक वृक्ष की डाल पर उगता हुआ

देखें लेख सं 23

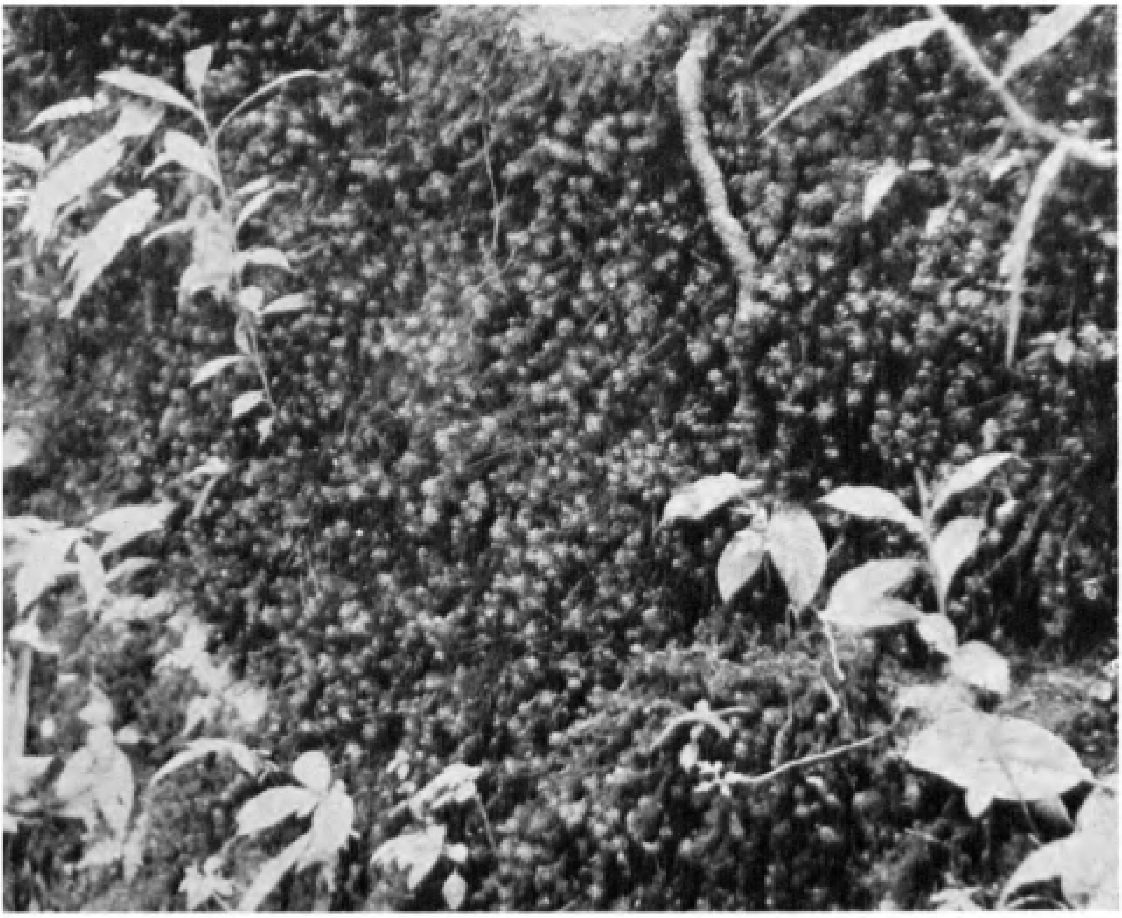

माक्रोमीट्रिउम पेरोंटे्टटी : गद्दे जैसी रचना बनाते हुये ।

वृक्ष के तने पर मॉस के समूह ।

देखें लेख सं 23

टाक्सीथालिउम की एक जाति लकड़ी पर उगते हुये।

वृक्षों के आधार पर उगते हुये मॉस (सर्वेक्षण दल अध्ययन करते हुये)

देखें लेख सं 23

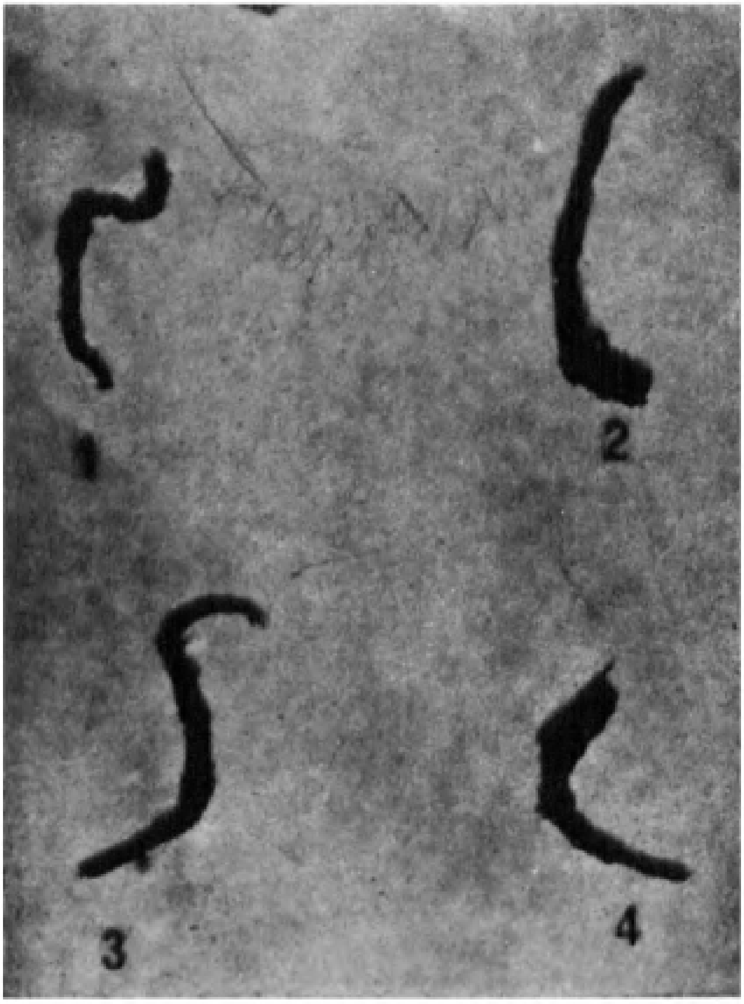

कोप्टिस टीटा का प्रकंद श्रौर उसके मिश्रक

1 कोप्टिस टीटा 2. थालिक्ट्रम फोलिम्रोलोसुम

3. स्वेटिम्रा चिराता 4. पिक्रोर्हीज़ा कुरोंम्रा

देखें लेख सं 24

एवं आधुनिक संग्रह की संख्या लगभग 10,000 से अधिक है पहुंच चुकी है। अत: भारत में इस समय मॉस के अध्ययन हेतु यह अनुभाग एक तरह से नेतृत्व प्रदान कर रहा है। कलकत्ता पादपालय में मॉस के विदेशी नमूनों की भी बहुतायत है। इनमें सबसे अधिक मॉस दक्षिण अमेरिका की हैं। उत्तरी अमेरिका, योरप, जावा, श्री लंका आदि से भी नमूने प्राप्त हुए हैं। इस समय भी कई विदेशी पादपालयों के साथ आदान-प्रदान का सम्बन्ध स्थापित हैं।

प्राय: हमारे पादपालय में चीन और जापान की सामग्री का विशेष अभाव है। इसके कारण मॉस के वंश और कुल के दोहराने में बाधा पड़ती है। इस कमी को पूरा करने के लिए, इन देशों के साथ अब आदान-प्रदान का सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक हो गया है।

वनस्पति विवरण—अनुमान है कि भारत में 2000 मॉस की जातियां हैं। परन्तु अभी तक कोई ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ जिनमें इन सबका उल्लेख हो।

गांगूली के पूर्वोक्त प्रकाशन केवल पूर्वी भारत से ही सम्बन्ध रखते हैं। एक और ध्यान देने लायक तथ्य यह है कि अभी तक के अधिकतर संग्रह सैनिकों, प्रशासकों या पादरियों द्वारा किये गये हैं। इनको या तो पौधों में रुचि थी अथवा अपना समय बिताने के लिए पौधों को इक्कटठा करने का चाव था, परन्तु इन्हें इस विद्या का कोई विधिवत ज्ञान नहीं था। इसके अतिरिक्त अन्य वनस्पतिज्ञों द्वारा भी ये पौधे एकत्रित किए गए जिन्हें केवल पुष्पी पौधों का ही ज्ञान था। इन सभी का मुख्य ध्येय अपुष्पी पौधों का अध्ययन न होने के कारण ये संग्रह किसी भी इलाके की वनस्पति को प्रतिबिम्बित नहीं करते। यही कारण है कि जब विशेषज्ञ स्वयं क्षेत्र में जाते हैं तो कई नई जातियों को खोज लाते हैं। केवल भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण से ही पिछले 25 वर्षों में 25 नई जातियां प्रकाशित हो चुकी हैं। इसी समय में गांगुली ने केवल पूर्वी भारत से 57 नई जातियां प्रकाशित की। इस बीचे नये रिकार्ड और नए जोड़ों की संख्या तो अब सैकड़ों में कही जा सकती है। फिर भी पूरे देश में मॉस का सर्वेक्षण भली भांति होने की आवश्यकता है। अरुणाचल प्रदेश, पश्चिमी घाट और अण्डमान निकोबार द्वीप समूह में तो इनके अध्ययन से बहुत से महत्वपूर्ण आंकड़ों के उजागर होने की आशा भी हैं।

पुष्पी पौधों की तरह मॉस की वनस्पति में भी रोचक विविधता एवं विशेषतायें हैं। हिमालय में 'लेस्केआसी' 'एम्बलिस्टेजीआसी' 'ब्राकिथेसिआसी' आदि कुलों के पौधों की प्रधानता है। पूर्वी और उत्तर पूर्वी हिमालय में **स्फाग्नुम** की बीस जातियां तथा **अण्ड्रेआएआ** की पाँच जातियां पाई जाती हैं। **स्फाग्नुम** 3000 मी० की ऊँचाई पर अधिक मात्रा में पाया जाता है। किन्तु उत्तर पश्चिम हिमालय में **स्फाग्नुम** की केवल एक जाति **स्फाग्नुम स्क्वारोसुम** केवल एक बार ही एकत्रित की जा सकी है। इसी इलाके से **अण्ड्रेआएआ** की भी एक ही जाति **अ० रूपेस्ट्रिस** केवल एक बार सूचित की गई है।

दक्षिण भारत में विशेषत: 'साइलेन्ट वैली' एवं 'पेरियार टायगर रिजर्व' में हाल ही के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि इन क्षेत्रों में 'टैकीपोडिआसी' 'टेरोब्रिआसी' 'मीटिओरिआसी' 'सिमेटोफिल्लासी' आदि कुलों के मौस अधिक संख्या में मिलते हैं।

जैन[1] के अनुसार भारत में लगभग 35% पुष्पी पौधे सीमित क्षेत्री हैं। मॉस की सीमित क्षेत्रीयता के आंकड़े भी इसी से मिलते जुलते हैं। गांगुली (1980) के एक अनुमान के अनुसार पूर्वी भारत में पाई जाने वाली मॉस की 990 जातियों में से लगभग 40% जातियां सीमित क्षेत्री हैं।

मॉस की विशेषताओं के बारे में विदेशों में बहुत अध्ययन हो रहा है। भारत में भी इस प्रकार के अध्ययन की नितान्त आवश्यकता है। अधिकांश व्यक्ति इस तथ्य से परिचित हैं कि भूमि पर सर्वप्रथम उगने वाले पौधों में मॉस भी है। पहाड़ी स्थानों पर सड़कों आदि के निर्माण के समय किनारों पर सर्वप्रथम मॉस ही उगती देखी गई है। कई स्थानों पर **फिस्सिडेन्स** की जातियां सबसे पहले उगती हैं इसके कुछ समय पश्चात ही **फीलोनोटिस**, **डीक्रोनेल्ला** आदि की कई जातियां उगती हुई देखी गई हैं। मृदा अपक्षरण को रोकने में भी मॉस का खासा योगदान है। वनों में सावधानी पूर्वक जांच के समय देखा गया है कि मॉस सभी वृक्षों के तनों पर नहीं उगती तथा जिन वृक्षों पर उगती हैं वहां इनका एक निश्चित क्रम होता है जो कि वृक्ष की आयु पर निर्भर करता है। इस तथ्य पर विस्तृत शोध की आवश्यकता है।

मॉस के कोशिकाद्रव्य में विभिन्न तापक्रमों को सहन करने की क्षमता है। ये ताप की अति प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जिन्दा रह सकते हैं। इन परिस्थितियों में प्रकाश संश्लेषण की दर में काफी कमी आ जाती है। सामान्य परिस्थितियों में ये पुनः बढ़ना शुरू कर देते हैं।

मॉस की बहुवर्षीय जातियों में भी केवल पिछले 3-4 वर्ष का जीवित भाग ही शेष रहता है किन्तु फिर भी इसके अध्ययन से मॉस की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है। वाट्सन (1971) ने अपनी पुस्तक 'द स्ट्रक्चर एण्ड लाइफ ऑफ ब्रायोट्फाइट्स' में मॉस की एक जाति की आयु 100 वर्ष से भी अधिक बताई है।

मॉस का उपयोग प्रयोगात्मक पदार्थ के रूप में भी किया गया है। इनमें हारमोन आदि के मामूली परिवर्तन से यौन परिवर्तन किया जा सकता है। साथ ही इनमें पुनरुत्पादन व वर्धी प्रजनन की भी पर्याप्त क्षमता है। **वोह्लिआ** और **काम्पीलोपुस** के पौधों की केवल नोंक टूट कर गिरने से ही नये पूर्ण विकसित पौधे उगते देखे गये हैं। इसी प्रकार, **ब्रीउम रुबेन्स** के मूलाभास (राइजोइड्स) के केन्द्र तथा **उलोटा फिलान्था** के 'गैमी' में भी पुनरुत्पादन द्वारा नये पोधे उत्पादन करने की क्षमता होती है।

मॉस के प्राप्ति स्थान पुष्पी पौधों की तुलना से अधिक विस्तृत है। इनके अनेक कुल पृथ्वी पर सभी स्थलों पर उगते देखे जा सकते हैं। **पोलीट्रीकुम**, **ग्रिम्मिया**, **ब्रीउम** तथा **ब्राकीथेसिउम** आदि वंशों के मॉस प्रायः सभी देशों में उगते हैं। इनके सर्वत्र वितरण वाली

---

1. जैन, एस०के० (1983) **फलोरा एण्ड वेजीटेशन आफ इण्डिया : एन आउटलाइन, कलकत्ता।**

जातियों की संख्या पुष्पी पौधों की तुलना में कहीं अधिक है। पूर्वी भारत में पाये जाने वाले मॉस में लगभग 10% ऐसी जातियां हैं जो दुनिया के अनेक देशों में पाई जाती हैं।

वायु मण्डल के प्रदूषण की जांच में भी मॉस का उपयोग किया जा रहा है। इनमें वायुमण्डल के अपद्रव्यों को शोषित कर लेने की पर्याप्त क्षमता पाई जाती है। इनके रासायनिक विश्लेषण से उपरोक्त द्रव्य की मात्रा का पता लगाया जा सकता है। इस प्रकार वायुमण्डल में उपस्थिति प्रदूषणकारी अपद्रव्यों की सही जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

यद्यपि मॉस के जन्म का समय अत्यधिक प्राचीन माना जाता है परन्तु इनका विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है। वनों के विकास के साथ ही मॉस के विकास ने भी गति प्राप्त की। ऐसा माना जाता है कि मॉस के अनेक कुलों का जन्म वृक्षों की उत्पत्ति के कारण ही सम्भव हो सका है। 'ब्राचीथेसीआसी', 'एम्बलिस्टेजिआसी 'आदि कुलों में भिन्नता का पाया जाना इसी बात का संकेत देता है। वनों की कटाई से मॉस के जीवन पर भी दुष्प्रभाव पड़ेगा ही क्योंकि अधिकतर मॉस वृक्षों के तनों व टहनियों पर उगते हैं साथ ही सीमिति वितरण वाली अनेक मॉस की जातियों के नष्ट होने का खतरा भी बढ़ गया है। **प्लेउडोलेस्केथा रामूलीजेरा, लेप्टोडेरी-गिनान्ड्रम ब्रेवीसेटा, ब्राकीथेसिअम बजिरिएन्से** एवं **थुईडिअम कॉन्टोर्टुलुम** आदि अनेक ऐसी मॉस की जातियां हैं जो कि पिछले 150 वर्षों में केवल एक बार ही एकत्रित की जा सकी हैं। कुछ जातियों का प्रमाण केवल प्ररूप के आधार पर ही मिलता है। अतः मॉस के संरक्षण की आवश्यकता है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग ऐसी सभी जातियों का विवरण एकत्रित कर रहा है जो कि दुर्लभ अथवा लुप्त प्राय हैं। जिससे कि इनके संरक्षण के यथोचित उपाय किये जा सकें।

24. औषधीय पौधों के मिश्रक व विस्थापक

विश्वनाथ मुद्गल

पौधों एवं अन्य प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त औषधियों का वैज्ञानिक अध्ययन 'फार्माकोग्नोसी' के अन्तर्गत आता है। इस शब्द का आविष्कार सेड्लर ने 1815 में किया। किन्तु सभी दृष्टि से आयुर्वेद के द्रव्य गुण विज्ञान की अनेक विषय वस्तुओं का इसमें समावेश है। इसका मुख्य लक्ष्य है—सभी प्रकार के रूपों में उपलब्ध औषधियों की पहचानने की विधियों को खोजना, अधिकृत नमूनों के मानदंड स्थापित करना, एवं नई-नई औषधियों की खोज करना। आजकल तो प्राकृतिक औषधियों का सभी दृष्टि से वैज्ञानिक अध्ययन फार्माकोग्नोसी के अन्तर्गत समझा जाता है। स्तरीय एवं अस्तरीय औषधियों की जांच के लिये मानक ग्रन्थों (फार्माकोपीआ) में वर्णित मानदंड प्रायः फार्माकोग्नोसी के ही शोध परिणामों पर आधारित होते हैं।

भारत सरकार ने पादप औषधियों के जान पहचान सम्बन्धी मानदंडों की खोज के लिये, 1946 में कलकत्ता में फार्माकोग्नोसी की प्रयोगशाला स्थापित की थी। इसके निदेशक बाल थे। बाल, उस समय भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के औद्योगिक अनुभाग के 'क्यूरेटर' पद को सुशोभित कर रहे थे तथा यह प्रयोगशाला इसी प्रांगण में स्थापित की गई थी। इस प्रयोगशाला से जड़, प्रकन्द और पत्तियों से प्राप्त औषधियों की फार्माकोग्नोसी से सम्बन्धित दो पुस्तकें[1,2] प्रकाशित हुईं। आज यह प्रयोगशाला केन्द्रीय औषध प्रयोगशाला, कलकत्ता के एक अनुभाग के रूप में विद्यमान है। त्रिवेन्द्रम के केन्द्रीय शोध संस्थान में भी इसी समय आयुर्वेदिक औषधियों की फार्माकोग्नोसी के ऊपर बहुत कार्य हुआ। मेहरा, चण्डीगढ़ विश्वविद्यालय; प्रसाद, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने भी इस विधा में सराहनीय कार्य किया है।

वनस्पति सर्वेक्षण में भी 1960 में फार्माकोग्नोसी अनुभाग स्थापित हुआ। चौधरी ने इस अनुभाग में 25 जाति की छालों के मानदण्ड स्थापित किये। पादप औषधियों की जांच में सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता होती है---मानक नमूने की। मानक नमूने से तात्पर्य है पौधे के प्राप्ति स्थान से एकत्र किया हुआ एवं ठीक से पहचाना हुआ असली पौधा या उसका भाग जैसे

---

1. दत्ता, एस. सी. एवं बी. मुखर्जी (1950) **फार्माकोग्नोसी ऑफ इंडियन रुट एन्ड राइज़ोम ड्रग्स**, दिल्ली।
2. ·········· एवं ··········(1952) **फार्माकोग्नोसी ऑफ इण्डियन लीफ ड्रग्स दिल्ली।**

जड़, बीज इत्यादि। मानक नमूने की दृष्टि से इस अनुभाग की अपनी एक अलग साख है। यहाँ विभिन्न क्षेत्रों के सर्वेक्षणों के दौरान वनस्पतिज्ञ मानक नमूने भी एकत्र करके लाते हैं तथा उनसे संबन्धित पौधों के नमूने 'हर्बेरियम शीट' के रूप में विद्यमान रहते है। अर्थ यह कि पौधे की सही पहचान में कोई संदेह नहीं रह जाता। सूखी जड़ संग्रहालय में। उससे संबन्धित पौधे का नमूना पादपालय में। संदेहास्पद नमूने की जांच में तुलना के लिये इससे अधिक प्रमाणिक नमूना और कहां हो सकता है। इस अनुभाग के संग्रहालय में एसे इस समय 500 नमूने हैं। इसके अतिरिक्त सर्वेक्षण के औद्योगिक अनुभाग में भी कुछ पुराने महत्त्वपूर्ण नमूने विद्यमान हैं।

आजकल तो वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद की अनेक क्षेत्रीय प्रयोग-शालाओं, राष्ट्रीय वनस्पति शोध संस्थान एवं केन्द्रीय औषध व सगंध पौधा संस्थान, लखनऊ तथा भारतीय आयुर्वेद, यूनानी, होमियोपैथी परिषदों द्वारा स्थापित अनेक प्रयोगशालाओं में देश की पादप औषधियों पर इस विधा से संबन्धित अनेक सराहनीय कार्य चल रहे हैं। इसके अतिरिक्त औषधियों का स्तर ठीक रखने के लिये देश में केन्द्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर, अनेक औषध नियंत्रण संगठन एवं परीक्षण प्रयोगशालायें हैं।

मिलावट पकड़ने के उपाय

पौधों से प्राप्त औषधियों की जांच उनकी गंध, बाहरी आकृति से लेकर अति सूक्ष्म भौतिक-रासायनिक विधियों तक से की जाती है। कुछ सूखी जड़, छाल, पत्ती आदि का बाहरी आकार देखकर आसानी से पहचाना जा सकता है। कुर्ची के साथ यदि **राइटिआ** की छाल मिला दी जाय तो दोनों देखने में लगभग एक जैसी हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में सूक्ष्मदर्शी द्वारा इन छालों की अन्त: रचना का अध्ययन करके पहचान की जा सकती है। कुछ औषधियों में विशिष्ट कोशिकाओं—शर्करा, ग्रंथिल, पाषाण आदि के प्रकार एवं संख्या के आधार पर पहचान की जा सकती है। गुड़हल के फूल के चूर्ण में यदि इससे मिलते जुलते अन्य फूलों का चूर्ण मिला दें तो सूक्ष्मदर्शी से भी सभी अवयव लगभग एक से ही दिखाई देते हैं। किन्तु परागकण में उपस्थित छिद्रों एवं कंटकों की संख्या से यह पहचान की जा सकती है कि नमूना शुद्ध है अथवा नहीं।

चूर्ण के रूप में औषधि की पहचान में अल्ट्रावायलेट लैम्प की सहायता भी बहुत उपयोगी होती है। वनस्पति सर्वेक्षण में कुछ वर्ष पूर्व **हिड्रास्टिस कानाडेंसिस** के नमूने जांच के लिये आये थे। यह पौधा भारत में पाया ही नहीं जाता। यह ज्ञात था कि इसके प्रकन्द का चूर्ण अल्ट्रावॉयलेट (पराबैंगनी) रश्मियों के नीचे हरे पीले रंग के इनफ्लोर्सेंस देता है। अत: इसके मानक की अनुपस्थिति में भी इसका परीक्षण एवं निदान हो सका। नमूने ने भूरे इन्फ्लोर्सेंस दिये एवं बाद की जांच से पता चला कि यह **थालिक्ट्रम फोलिओलोसुम था।** वैसे **थालिक्ट्रम** में भी **हिड्रास्टिस** की तरह औषधोपयोगी क्रियाकारी यौगिक होते हैं।

चूर्ण, मिक्सचर, टिंचर, टिकिया, कैप्सूल आदि रूपों में औषधियों की जांच के लिये क्रोमेटोग्राफी विधियों का उपयोग अधिक किया जाता है। पौधों में उपस्थित कुछ रासायनिक पदार्थ क्रोमेटोग्राफी द्वारा सुगमता से पृथक किये जा सकते हैं। विशिष्ट प्रकार के कागज या आटेनुमा 'जेल' (जैसे सिलिका जैल), या कुछ गैस के माध्यम से, कुछ घोलकों की सहायता से, जब किसी यौगिक को गुजारा जाता है, तब वे अपने-अपने भौतिक गुणों जैसे—अधिशोषण एवं प्रतिकरण की क्षमता के अनुसार एक निश्चित दूरी चलकर रुक जाते हैं। क्रोमेटोग्राफिक

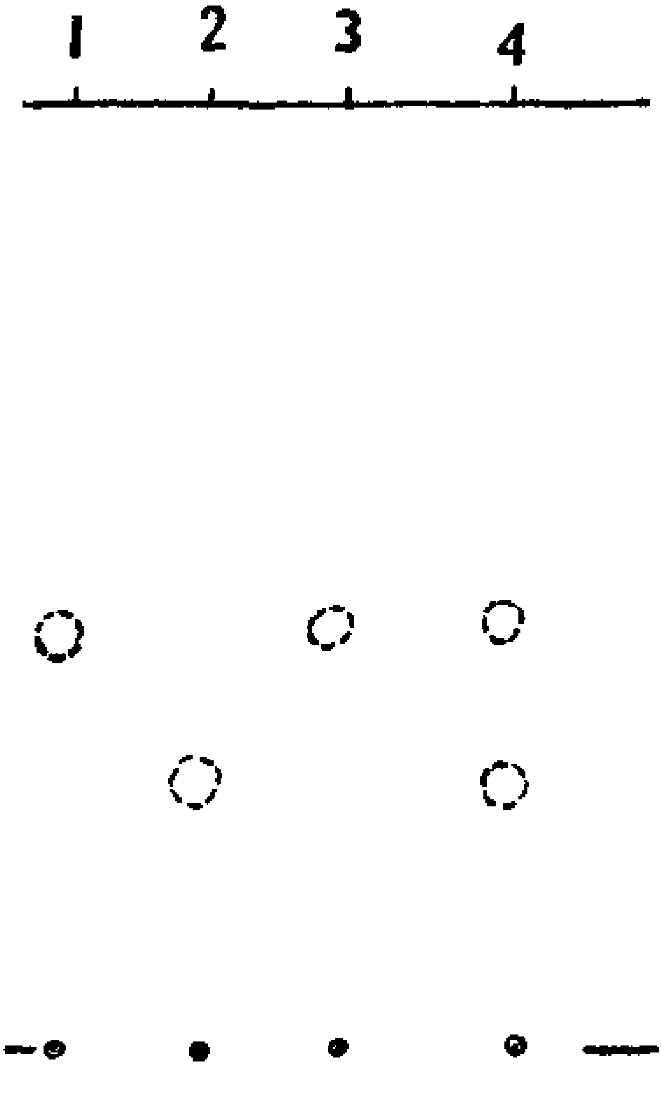

नक्सवोमिका टिंचर के एक नमूने की थिनलेयर क्रोमेटोग्राफी द्वारा जांच।
1. नमूना 2. ब्रूसीन 3. स्ट्रिक्नीन 4. मानक-नमूना।

सिस्टम में वितरित होते समय, विभिन्न यौगिकों के अधिशोषण एवं प्रतिकरण गुणों की अल्प भिन्नतायें कई बार गुणित हो जाती हैं। और वे पर्तों या बिन्दुओं के रूप में पृथक्कृत किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिये एक प्रयोगशाला में टिंचर 'नक्सवोमिका (कुचला) के एक नमूने में थिनलेयर क्रोमेटोग्राफी में एक बिन्दु ही प्राप्त किया जा सका जो स्ट्रिक्नीन के अधिकृत

नमूने से मिलता था। जबकि अधिकृत टिंचर के नमूने से स्ट्रिक्नीन व ब्रूसीन दोनों से मिलने वाले दो बिन्दु पृथक्कृत होते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि उस औषधि के निर्माण में कुचला के बीज की जगह केवल स्ट्रिक्नीन नामक रासायनिक यौगिक का प्रयोग किया गया।

अवयवों का रासायनिक विश्लेषण, अमुक औषध में कुल क्षार इत्यादि की मात्रा का निरूपण भी जांच विधियों में महत्वपूर्ण है। आजकल अति सूक्ष्म भौतिक-रासायनिक विधियों जैसे---स्पेक्ट्रोफोटोमेट्री, गैस लिक्विड क्रोमेटोग्राफी; आई०आर०, यू०वी०, एन० एम० आर० और मॉस स्पेक्ट्रोस्कोपी तक का भी उपयोग औषधियों की जांच में किया जाता है। किन्तु सस्ती एवं सुगम विधियों में माइक्रोस्कोपी (सूक्ष्मदर्शी द्वारा) और थिनलेयर क्रोमेटोग्राफी ही आते हैं।

मिश्रक एवं विस्थापक

हमारे देश में औषधियों के व्यापार में कभी-कभी अनुचित कार्यवाही देखने में आती है। कुछ औषध निर्माता एवं निर्यातकर्ता तो जानबूझकर अधिक लाभ कमाने के लिये मिलावट करते हैं। कभी कभी तो ऐसा देखने में आया है कि वास्तव में औषधि पर जो नाम है वह पूरी तरह धोखा है। अर्थात 100 प्रतिशत किसी अन्य पौधे से निर्मित है। इससे रोगियों को आशानुरूप लाभ नहीं मिलता। निर्यात की स्थिति में इससे दूसरे देशों में हमारे राष्ट्र की साख गिरती है। तालिका में अब तक प्रकाश में आये ऐसे ही कुछ मिश्रकों के नाम दिये हैं।

कभी-कभी मिलावट अज्ञानवश भी हो जाती है। पौधे इकट्ठे करने वालों को असली पौधे की पहचान का ज्ञान न होने के कारण ऐसा हो सकता है। मिश्रक भी कई किस्म के होते हैं। यदि किसी मिश्रक में वे कार्यकारी रासायनिक पदार्थ, जो मुख्य औषधि में हैं, पाये जायें तो निश्चय ही मुख्य पौधे की तरह मिश्रक भी रोग में लाभकारी होगा। इसे अच्छा मिश्रक कहेंगे। ऐसे मिश्रक बाद में स्वतः ही स्वतन्त्र औषधि के रूप में व्यवहार में आने लगते हैं। मुख्य औषधि के लगभग समान गुणकारी मिश्रक, विस्थापक कहलाते हैं। ये भी तालिका में दिये गये हैं। ब्रिटेन के मान्य औषधकोश में **रहेउम पामाटुम** के प्रकंद की मान्यता है। इसका भारतीय विस्थापक है **र्‍हेउम एमोडी**। बहुत सी स्वजात औषधियों के दुर्प्राप्य होने के कारण उनके विस्थापकों की खोज आजकल अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गई है। सर्पगंधा के अनेक मिश्रक बाद में विस्थापक की तरह उपयोग होने कारण ही दुर्प्राप्य हो गये हैं। विदेशी मूल के **एर्कंड्रा एक्यूईसेटिना**, **जेंटिआना लुटेआ** के भारतीय विस्थापक **ए० गेरार्डिआना** एवं **जे० कुर्रू** की भी ऐसी ही स्थिति है। **कोप्टिस टीटा** के सभी मिश्रक स्वयं भी महत्वपूर्ण औषध हैं।

आभार

तालिका के निर्माण में श्रीमती कृष्णा रॉय का सहयोग है।

तालिका
कुछ औषधीय पौधे और उनके मिश्रक व विस्थापक

प्रचलित नाम	वैज्ञानिक नाम	(मिश्रक वैज्ञानिक नाम)	विस्थापक (वैज्ञानिक नाम)
अतीस, अकोनाइट	आकोनीटुम नापेल्लुस	ग्लोरिओसा सुपेर्बा	आकोनीटुम कासमान्थुम
अडूसा, वसाक	आढाटोडा वासिका		फ्लोगाकांथुस, थीर्सिफ्लोरुस
अंगूर शफा, बेलाडोना	आट्रोपा बेल्लाडोना		आ० आकुमिनाटा, फीटोलाक्का डेकान्ड्रा हिओस्किआमुस नीजेर, स्कोलोपिया कार्निओलिक, आइलांथुस आल्टिस्सिमा, सोलानुम नीग्रुम
रसौत, बर्बेरिस	बेरबेरिस आरिस्टाटा		कोस्सिनिऊम फेनेस्ट्राटुम
पुनर्नवा	बोए रहाविआ डिफ्फूसा	ट्रिआंथेमा पोर्टुलाकास्ट्रुम	
पलास के फूल	बूटेआ मोनोस्पेर्मा	बु० सुपेर्बा	बू० सुपेर्बा
इंडियन सेन्ना	कास्सिआ आंगुस्टीफोलिआ	का० आकुटीफोलिआ का० ओबोवाटा टाफ्रोसिआ अप्पोलिनेआ सोलेनोस्टेम्मा, कोरिआरिआ मीर्टिफोलिआ, को० नेपालेन्सिस	प्लूकेआ लान्सेओलाटा

ब्राह्मी	सेंटेल्ला एशिआटिका		हिड्रोकोटिले जावानिका
ममीरा, तीता, कॉप्टिस	कोप्टिस टीटा	थालीक्ट्रुम फोलिओलोसुम	थालिक्ट्रुम, पिक्रोरि्हजा, स्वेर्टिआ
ईपेकाक	सेफाएलिस इपेकाकुआन्हा	रिचार्डिआ स्काब्रा क्रिप्टोकोरीने स्पिरालिस	आकालिफा ईंडिका, आस्क्लेपिआस कुरास्साविका, टीलोफोरा ईंडिका, रांडिआ स्पिनोसा
सिंकोना	सींकोना आपफीसिनालिस सी० लेजेरिआना, सी० कालीसाया सी० सुक्कीरूब्रा		हि्मेनोडिक्टिआन ओबोवाटुम सी० लांसीफोलिआ, सी० ओवाटा रेमीजिआ पेडुंकुलाटा, रे० पुडिकाना
तिलपुष्पी, डिजिटेलिस	डीजीटालिस पुर्पूरेआ	इनुला सीमोसा, उर्टिका डिओइका	वेर्बस्कुम थाप्सुस,
एफिड्रा	ऐफेड्रा एक्यूईसेटिना		ऐफेड्रा जेराडिआना
जेंशियन	जेंटिआना लुटेआ		जे० कुरु
अनंत मूल	हेमीडेस्मुस ईंडिकुस		स्मीलाक्स आस्पेरा, इक्नोकार्पुस फ्रूटेस्सेन्स
कुर्ची	होलारेहेना आन्टीडिसेंटेरिका	राइटिआ टोमेंटोसा	
ईसबगोल	प्लांटागो ओवाटा	साल्विआ आएजिप्टिआका	
बीजसाल, इंडियन-कीनो	प्टेरोकार्पुस मार्सूपिउम		होर्सफिएल्डिआ किंगिई
सर्पगंधा	राउवोल्फिआ सेर्पेन्टीना	रा० टेट्राफिल्ला रा० कैंसीफ्लोरा	राउवोल्फिआ टेट्राफिल्ला

रहूबर्ब	र्हेउम पाल्माटुम		र्हेउम एमोडी र्हेउम वेब्बिआनुम
कूथ, मसूरिया	साउस्सुरेआ लाप्पा		एउफोर्बिआ, थोम्सोनिआना इनुला रोइलेआना, साल्विआ लानाटा
चिरायता	स्वेर्टिआ चिराटा	स्वेर्टिआ की अन्य जातियां	स्वेर्टिआ की अन्य जातियां क्लेरोडेन्ड्रुम इन्फोर्चुनाटुम, नीम्फोइडेस इन्डिकुम, नी० क्रिस्टाटा
गिलोय, टीनोस्पोरा	टीनोस्पोरा कोर्डीफोलिआ		कोक्कुलुस पेन्डुलुस
जंगली प्याज, इंडियन स्क्विल	उर्जीनिआ ईंडिका	डीप्काडी एरिथ्राएउम	डी० एरिथ्राएउम
विल्ली लोटन, वेलेरिआना	वालेरिआना आफ्फीसिनालिस		वा० वालिचिई वा० जटामांसी, नार्डोस्टाकिस जटामांसी

25. गढ़वाल की नृवनस्पति

भगवती प्रसाद उनियाल
एवं
विपिन बलोदी

आदिकाल से ही मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर रहता आया है। आज जबकि विज्ञान चरम उन्नति पर है, मनुष्य की प्राकृतिक वन सम्पदा पर निर्भरता में कोई कमी नहीं आई है। हमारे दैनिक उपयोग की अनेकानेक वस्तुओं का स्रोत वन सम्पदा ही है, उदाहरण के लिए जीवन रक्षक औषधियां, लकड़ी व अन्न का उल्लेख करना ही काफी होगा। यह भी हम जानते हैं कि आधुनिक विकास सुविधायें अभी घर घर नहीं पहुंची हैं। अभी भी ऐसे दुर्गम प्रदेश हैं जहां इन सुविधाओं को पहुंचाने में काफी समय लगेगा। इन प्रदेशों के लोग किस प्रकार जीवन निर्वाह करते हैं? इनके विभिन्न साधन क्या हैं? निश्चित रूप से यहां के वासी प्राकृतिक वन सम्पदा पर ही निर्भर हैं। यहां कुछ इस प्रकार के पौधों का उल्लेख किया जा रहा है जो उत्तर प्रदेश के पर्वतीय प्रदेश (गढ़वाल) के निवासियों द्वारा उपयोग में लाये जाते हैं।

1. एकोरस कालामुस (बच) इस पौधे का कंद बुद्धिवर्द्धक माना जाता है। कंद को पोटली में बांध कर बच्चों के गले में लटका दिया जाता है ताकि जब-तब बच्चा उसे चूसता रहे। इस पौधे का अन्य पौधों के साथ मिश्रण अत्यन्त बुद्धिवर्धक माना गया है।

गुडूच्यपामार्ग, विडम्ब, शंखिनी,
    ब्राह्मी, बचा, शुंठि, शतावरी च।
घृतेन लीढा प्रकरोति पुंसाम्,
    त्रिभिर्दिनैः श्लोक सहस्त्र धारिण:॥

(गुडूचि, अपामार्ग, विडम्ब, शंखिनी, ब्राह्मी, वचा शुंठि और शतावरी के चूर्ण की गोलियां बनाकर घी के साथ प्रयोग करने से मनुष्य तीन दिन में तीन हजार श्लोक याद कर सकता है।)

2 **आजेराटुम कोनीजोइडेस** (पुदीना घास)

इसकी पत्तियों का रस कटे हुए स्थान पर डाला जाता है, जिससे खून बहना रुक जाता है।

3. **अंड्राक्ने कोर्डीफोलिया** (विस भट्या)

इसकी पत्तियों को बिच्छू के काटने पर प्रयुक्त किया जाता है।

4. **आम्पेलोसीस्सुस लाटीफोलिया** (भिड्डुण)

इस लता के फल अंगूर जैसे होते हैं जो पकने पर गहरे नीले हो जाते हैं। ये बहुत स्वादिष्ट होते हैं। भालू भी इन्हें बड़े चाव से खाते हैं। इसकी पत्तियां जानवरों को दी जाती हैं।

5. **ओउजेइनिया ऊजिनेन्सिस** (सांदन)

इसकी लकड़ी घरेलू उपयोग की वस्तुयें बनाने के काम आती हैं पत्तियां जानवरों को दी जाती हैं।

6. **ओसीरिस वाइटियाना** (बकरोली)

इसकी पत्तियों को उबाल कर सुखा लिया जाता है और फिर चाय पत्ती के स्थान पर उपयोग किया जाता है।

7. **उर्टिका पार्वीफ्लोरा** (कंडाली)

इसकी पत्तियों को स्त्री रोग के लिए उपयोग किया जाता है। कोंपलों को पका कर भी खाया जाता है।

8. **क्लेओमे विस्कोसा** (जख्या)

इसके बीजों का तरकारी छौंकने के लिए उपयोग किया जाता है।

9. **काम्नाबिस साटिवा** (भांग)

इसके बीज भी तरकारी छौंकने के काम आते हैं।

10. **जान्थोक्सीलुम अर्माटुम** टिमुर)

इसकी शाखायें दातुन के रूप में प्रयोग की जाती हैं। इसका धार्मिक महत्व भी है।

11. डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस (बांस)

अन्य विदित उपयोगों के अतिरिक्त इसकी पत्तियों का उपयोग पित्ती (लाल चकत्ते) में किया जाता है। इसकी पत्तियों को पानी के साथ उबाल कर उस पानी से स्नान करने पर पित्ती में आराम मिलता है।

12. ग्रेविआ ओप्टिवा (भ्यूंल)

यह वृक्ष कई प्रकार से उपयोगी है। इसकी शाखाओं का वल्कल निकाल कर व कूट कर सिर धोने के काम लाया जाता है। पेड़ की शाखाओं को काटकर पानी में डाल दिया जाता है, जब वे भीग कर मुलायम हो जाती हैं तो वल्कल उतारकर रेशा प्राप्त किया जाता है। यह रेशा मजबूत रस्सी एवं चारपाई का निवार बनाने के काम आता है। वल्कल उतरी लकड़ी सूखने पर बहुत अच्छी जलती है। इस वृक्ष की पत्तियां जानवरों को विशेष रूप से दी जाती हैं।

13. फीकुस राक्सबर्घिई (तिमल)

इस वृक्ष के कच्चे फल पका कर तरकारी के रूप में खाये जाते हैं। पत्तियों का उपयोग थालियों के रूप में किया जाता है। पत्तों को उबालकर गाय-भैंसों को दिया जाता है। पके फल खाये जाते हैं।

14 फीकुस पाल्माटा (बेडू)

इसके फल खाये जाते हैं। दूध (लेटेक्स) का उपयोग कांटा निकालने के लिये किया जाता है।

15. फेनिक्स ह्यूमिलिस (थागल)

इसकी जड़ों को कूटकर पेय बनाया जाता है। फल खाये जाते हैं।

16. प्टेरीडियम एक्युईलिनुम

इस पर्णांग की कोंपलों को तरकारी के रूप में पकाया जाता है।

17. बोहमेरिआ रुगुलासा (गीठी)

इस वृक्ष की लकड़ी घरेलू उपयोग की वस्तुएं बनाने के काम लाई जाती है। पत्तियां जानवरों का प्रिय भोजन है।

18. **बाउहीनिया वाहलिई** (मालू)

इस वृहल्लता की पत्तियों का थालियों के रूप में उपयोग किया जाता है। वर्षा एवं धूप से बचाव के लिए पत्तियों को बांस की पतली सीकों के साथ गोल ढांचे में बुन लिया जाता है। पत्तियों को बांस की डंडियों एवं घास की सहायता से हलकी फुलकी दीवारों या छतों के रूप में बनाया जाता है। बीज भूनकर खाये जाते हैं। इस लता से बड़ी मात्रा में रेशा प्राप्त किया जाता है। इसका अधिक फूलना अकाल का संकेत माना जाता है।

19. **बेरबेरिस एशिआटिका** (किनगोड़)

इसकी जड़ों को बारीक कूटकर व एक पोटली में बांधकर भिगा दिया जाता है और उस पानी से आंखों को धोया जाता है। पके फल खाये जाते हैं।

20. **मीरिका एस्कुलेन्टा** (काफल)

इस वृक्ष का वल्कल कूटकर पानी के साथ छाना जाता है। इस प्रकार प्राप्त रस को पेट के रोग में प्रयोग में लाया जाता है।

21. **मुर्राया कोएनिगिई** (गंदेला)

इसकी शाखायें दातुन के रूप में उपयोग की जाती हैं।

22. **रहुस पार्वीफ्लोरा**

इसकी पत्तियों को सुखाकर तम्बाकू के स्थान पर प्रयोग किया जाता है।

26. पौधों के वर्गीकरण में कोशिकानुवांशिकी के अध्ययन की उपयोगिता

सर्वेश कुमार

पिछली शताब्दी के अन्त में सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के विकास के बाद ही हमें कोशिका व उसके अन्दर पाये जाने वाले विभिन्न अंगकों की संरचना व उपयोगिता की जानकारी हुई व कोशिका का अध्ययन एक पूर्ण विकसित विज्ञान—कोशिका विज्ञान के रूप में सम्भव हुआ। अब तो कोशिका व उसके अवयवों की संरचना व कार्य प्रणाली के बारे में हमारे ज्ञान में इतनी अभिवृद्धि हुई है कि इस अध्ययन को पृथक-पृथक भागों में विभाजित करना पड़ा है। कोशिकानुवांशिकी इसी शृंखला की एक कड़ी है जिसके अन्तर्गत हम कोशिका में पाये जाने वाले पैतृक गुणों के वाहक-गुण सूत्रों (क्रोमोसोम्स) की संरचना व्यवहार व उनके पीढ़ियों में निरूपण का अध्ययन करते हैं। पौधों के वर्गीकरण में भी इस अध्ययन ने काफी सहायता प्रदान की है व पादप वर्गीकरण की एक अलग शाखा कोशिका वर्गिकी के रूप में इसे मान्यता प्राप्त हुई है।

इस शताब्दी के प्रथम चरण में कोशिकानुवांशिक अध्ययन का पौधों के वर्गीकरण में अच्छा खासा योगदान रहा। वैज्ञानिकों की यह मान्यता कि "आनुवांशिक अध्ययन के आधार पर निश्चित की गई जातियां मात्र आकारिक गुणों के आधार पर निश्चित की गई जातियों से अधिक वास्तविक होती हैं" पादप—वर्गीकरण विशेषज्ञों को प्रभावित किये बिना न रही। इन्हीं वर्षों में गुण सूत्रों के अध्ययन की उपयोगिता क्रूसी फेरी, ग्रामिनी, आगावासी आदि पादप कुलों एवं क्रेपिस, निकोटिआना, क्लार्किआ, ट्रागोपोगोन, डातूरा आदि वंशों के वर्गीकरण सम्बन्धी अध्ययन में प्रमाणिक सिद्ध हुई। सन् 1950 में स्टेबिन्स द्वारा रचित पुस्तक "वेरियेशन एण्ड इवाल्यूशन इन प्लाण्ट्स" ने इस अध्ययन की उपयोगिता को और बल प्रदान किया। गुण सूत्रों की संख्या, माप व आकृति का उपयोग विभिन्न पौधों की जातियों के केरियोटाइप[1] निर्धारित करने व उनके आधार पर विभिन्न जातियों में परस्पर समानता व अन्तर स्पष्ट करने के लिये किया गया। अर्ध सूत्री विभाजन के समय समान संरचना वाले गुणसूत्रों के परस्पर युग्मीकरण के अध्ययन के आधार पर पौधों के प्राकृतिक व कृत्रिम

---

1. केरीयोटाइप—गुण सूत्रों की संख्या, माप व आकृति के आधार पर बनाया गया लेखाचित्र।

संकरों में दो विभिन्न वंशों अथवा जातियों के परस्पर पैतृक सम्बन्धों को स्पष्ट करने में सहायता मिली। गुण सूत्रों के पुनर्विन्यास एवं बहुगुणता की प्रक्रियाओं द्वारा नई जातियों के उद्‌भव की सम्भावनाओं का पता चला। किन्तु 1960 के बाद पादप वर्गीकरण विशेषज्ञों के मन में कोशिकानुवांशिकी की उपयोगिता के प्रति पहले जैसा उत्साह नहीं रहा व विपरीत परिणाम मिलने से अनेक शंकाएं उठ खड़ी हुई जैसा कि उस समय के वैज्ञानिक लेखों व चर्चाओं से स्पष्ट है। कारण, एक तो यह कि आकारिकी अध्ययन के आधार पर काफी समान पाई गई कई जातियों में गुणसूत्रों की संरचना व संख्या में काफी अन्तर मिला। दूसरे अर्धसूत्री विभाजन के समय गुण सूत्रों के युग्मीकरण की प्रक्रिया में जातियों की परस्पर बन्धुता के अतिरिक्त अन्य आनुवांशिक कारणों का प्रभाव भी देखा गया अत: केवल इसी आधार पर जातियों की समानता अथवा विषमता निर्धारित करने का कोई स्पष्ट औचित्य नहीं रह गया। फिर भी पिछले वर्षों में गुण सूत्रों के अध्ययन में हुई वृद्धि व पौधों के वर्गीकरण में उसके उपयोग सम्बन्धी आंकड़े इस बात का स्पष्ट संकेत देते हैं कि गुणसूत्रों की संरचना, संख्या व व्यवहार के अध्ययन का पौधों के वर्गीकरण, जातियों के स्थान निर्धारण, उत्पत्ति एवं विकास की अनेक गुत्थियां सुलझाने में विशेष महत्त्व है। हां इतना अवश्य है कि सभी पादप वर्गों में इसकी उपयोगिता समान नहीं है।

पादप—वर्गीकरण के आधुनिक समझे जाने वाले सर्वाधिक मान्यता प्राप्त उद्देश्यों में 1—वर्गीकरण की सुगम विधि का निरूपण 2—विभिन्न पौधों में परस्पर प्राकृतिक सम्बन्धों की विवेचना एवं 3—विकास के क्रियान्वयन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी व उनके परिणामों का पता लगाना प्रमुख हैं। इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति में गुणसूत्रों के आंकड़ों का विशिष्ट महत्त्व है। संवृतबीजी पौधों में गुणसूत्रों की आधार संख्या, $x=7$ मानी जाती है। अनावृत बीजी पौधों में **एफेड्रा** $(x=7)$ एवं **वेलविट्सिया** $(x=21)$ आधार संख्या के अनुसार संवृतबीजी पौधों के अधिक निकटवर्ती जान पड़ते हैं यद्यपि आकारिकी लक्षणों के आधार पर इनमें काफी भिन्नता है। विभिन्न पौधों के गणों में गुणसूत्रों की संख्या व संरचना के आधार पर काफी फेरबदल किये गये हैं। उदाहरण के लिए सीरिल्लासी एवं क्लेथ्रासी कुलों को एरीकालेस गण से हटाकर थेआलेस में रखा गया है।

पौधों के कुलों के वर्गीकरण में भी गुण सूत्रों के अध्ययन के आधार पर अनेक परिवर्तन किये गये हैं जिससे बहुत से कुलों में विभिन्न जातियों के उद्‌गम व परस्पर सम्बन्धों की महत्त्व-पूर्ण जानकारी प्राप्त करने में सहायता मिली है। ग्रामिनी, कोम्पोसिटी, लिलिआसी व मालवासी आदि अनेक कुलों में समान आधार संख्या अथवा उसके गुणन वाली अनेक जातियां व वंश मिलते हैं। इनमें से अनेक के केरियोटाइप में भी काफी समानतायें पाई गई हैं अत: इन कुलों में विभिन्न बहुगुण संकरों की मान्यता प्रामाणिक प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त बहुत से विवादास्पद मुद्दों को सुलझाने में भी गुणसूत्रों के अध्ययन की उपयोगिता सर्वविदित है। पहले ग्रामिनी कुल के गोल क्लोरिडी $(x=10)$ में **स्पार्टिना** $(x=7)$ का रखा जाना उचित

नहीं लगता था किन्तु मार्चेण्ट ने सन् 1960 में स्पष्ट किया कि वास्तव में **स्पार्टिना** में गुण सूत्रों की आधार संख्या x = 10 ही है जो कि अत्यधिक छोटे होने के कारण पहले ठीक से गिने नहीं जा सके। इसी प्रकार **पाएओनिआ** (x = 5, अपेक्षाकृत बड़े गुणसूत्र) को रानुनकुलासी कुल से हटाकर पाएओनिआसी में रखा गया क्योंकि रानुनकुलासी कुल में मुख्यतया x = 7 तथा छोटे गुणसूत्र अथवा x = 8 एवं बड़े गुण सूत्र वाली जातियों का प्रभुत्व है। गुण सूत्रों के अध्ययन के आधार पर **पेलिओसांथेस** के स्थान निर्धारण में भी पर्याप्त सहायता मिली है। बैन्थम एवं हुकर (1880) ने पेलिओसान्थेस' को कुल हाएमोडोरासी में जबकि हचिन्सन (1973) ने लिलिआसी के उपकुल पालेओसान्थी में रखा था। सरकार व उनके सहयोगियों ने सन् 1981 में केरियोटाइप के अध्ययन के अनुसार इसे लिलिआसी के अन्य उपकुलों के ही अधिक निकट पाया व हचिन्सन (1973) के वर्गीकरण को उचित ठहराया। बेबकाक (1947) द्वारा **क्रेपिस** पर किये गये अध्ययन में गुण सूत्रों की संख्या व आकारिकी के आधार पर ही जातीय सीमाओं का निर्धारण किया गया। राउत ने सन् 1973 में **लेओन्टोडॉन** में गुण सूत्रों की संख्या, लम्बाई, आकृति, सेन्ट्रोमीअर की स्थिति व गुण सूत्र उपांग की उपस्थिति के महत्व की पादप वर्गीकरण में उपयोगिता का सही मूल्यांकन प्रस्तुत किया। **सैन्ना** की 25 में से 13 जातियों के गुण सूत्रों की संरचना के अध्ययन के आधार पर इस वंश को तीन अनुभागों में विभाजित करने की आवश्यकता भी महसूस की गई है।

अन्तर्जातीय एवं अन्तःजातीय संकरों के आनुवांशिक अध्ययन से पता चला है कि, जो जातियां पहले **क्लार्किआ**, **गोडेटिआ**, **युकेरीडीउम** एवं **फाओस्टोमा** आदि विभिन्न वंशों में थी, को एक साथ **क्लार्किआ** वंश में रखा जाना चाहिए। बाद के परीक्षणों से उपरोक्त मान्यता को बढ़ावा ही मिला है व गुण सूत्रों के पुनर्विन्यास का महत्त्व जाति के विकास में और भी स्पष्ट रूप में उभर कर सामने आया है।

बहुगुणों की उत्पत्ति व विकास में भी गुण सूत्रों का विशिष्ट महत्व है। टूटिन ने सन् 1957 में आकारिकी एवं कोशिकानुवांशिक अध्ययन के आधार पर **पोआ आन्नुआ** (2n = 28) की उत्पत्ति, **पोआ इन्फिर्मा** (2n = 14) एवं **पोआ** सुपिना (n = 14) के संकरण से उत्पन्न अपर-बहुगुण के रूप में बताई। किन्तु बाद में प्रकृति में, द्विगुणीय **पोआ आन्नुआ** (2n = 14) के मिलने से उपरोक्त जाति की उत्पत्ति पुनः विवाद का विषय बन गई। एक अन्य प्रयोग में स्पोस (1965) ने गुण सूत्रों के अध्ययन के ही आधार पर **बाएनाफिटस** की उत्पत्ति की स्पष्ट विवेचना प्रस्तुत की। गेहूं की उत्पत्ति में भी गुण सूत्रों के अध्ययन की उपयोगिता सर्वविदित है।

उपरोक्त सभी तथ्यों से एक बात भली प्रकार स्पष्ट होती है कि गुण सूत्रों की संख्या, संरचना व युग्मीकरण की प्रक्रिया की उपयोगिता सभी पादप समूहों में एक जैसी नहीं है। एक ओर जहां **बोर्बारिटा** जैसे समान कोशिकानुवांशिक व्यवहार वाले वंश है जिनमें गुण सूत्रों के अध्ययन का महत्त्व नगण्य ही प्रतीत होता है तो दूसरी ओर **क्लार्किआ** जैसे अनेक वंश भी

हैं जिनमें गुण सूत्रों के अध्ययन से न केवल विभिन्न जातियों के स्थान निर्धारण में ही सहायता मिली है अपितु जातियों की उत्पत्ति व विकास सम्बन्धी अनेक गुत्थियों को खोला जा सका है।

पौधों की भौगोलिक स्थिति में अन्तर से उनके गुण सूत्रों की संख्या व संरचना भी प्रभावित होती है। विभिन्न पादपकुलों में किये गये अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि एक ही वंश की विभिन्न जातियों के गुण सूत्रों की संख्या व संरचना में पारिस्थितिक परिवर्तनों के कारण अन्तर हो सकते हैं। उदाहरण के लिए **स्मीलाक्स** की कम ऊँचाई पर पाई जाने वाली जातियों में द्विगुणी व बहुगुणी दोनों ही प्रकार की जातियां मिलती हैं। किन्तु एल्पाइन जातियों में स्थिर गुण सूत्र संख्याओं वाली जातियां ही मिलती हैं। इसी प्रकार **क्नीफोफिआ आलोइडेस** की पूर्वी व पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में पाई जाने वाली जाति के केरियोटाइप में स्पष्ट अन्तर मिलते हैं। स्पेलेनवर्ग (1976) के अनुसार नई दुनिया व पुरानी दुनिया में पाई जाने वाली **आस्ट्रागालुस** की विभिन्न जातियों के गुण सूत्रों की संख्या व संरचना में भिन्नतायें हैं। एक अत्यन्त ही रोचक परिणाम भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के डा० सरकार व उनके सहयोगियों द्वारा किये गये अध्ययन के फलस्वरूप सामने आया है। उन्हें एक परजीवी जाति **माक्रोसोलेन कोचीन-चीनेन्सिस** के विभिन्न पोषकों पर उग रहे पौधों के गुण सूत्रों की संरचना में स्पष्ट अन्तर मिले हैं।

हमारे देश में कोशिका वर्गिकी का अध्ययन बड़े पैमाने पर हुआ है। अब तक प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कलकत्ता विश्वविद्यालय इस प्रकार के अध्ययन का अग्रणी केन्द्र रहा है। यहां के प्रख्यात वैज्ञानिक पद्मविभूषण डा० ए० के० शर्मा के कुशल निर्देशन में संवृतबीजी पौधों के लगभग सभी कुलों में विस्तृत अध्ययन द्वारा विभिन्न पौधों की जातियों के उद्भव, विकास व पारस्परिक सम्बन्धों आदि सभी विषयों का पैना विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त देश में अन्य कई स्थानों पर प्रसिद्ध कोशिका वैज्ञानिकों ने कोशिकावर्गिकी के विभिन्न पहलुओं पर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इनमें प्रो० पी० एन० भादुड़ी (कल्याणी), प्रो० पी० एन० मेहरा (चण्डीगढ़), प्रो० आर० पी० राय० (पटना) प्रो० एम० एस० चैन्नावी रैय्या (धारवार), प्रो० पी० के० गुप्ता (मेरठ) डा० टी० एन० खुशू (लखनऊ), प्री० ए० के० कौल (श्रीनगर), प्रो० एस० एस० बीर (पटियाला), प्रो० वाई० एस० आर० के० शर्मा (वाराणसी) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा में भी डा० ए० के० सरकार व उनके सहयोगियों ने आरासी, लिलिआसी, कॉम्पोसिटी, सीपेरासी व जिन्जीबरासी आदि अनेक कुलों की विभिन्न जातियों में गुण सूत्रों की संख्या व केरियोटाइप के आधार पर जातियों की उत्पत्ति व स्थान निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है।

अब तक प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि केवल 20 प्रतिशत संवृतबीजी पौधों के गुण सूत्रों की संख्या व 1 प्रतिशत से कुछ अधिक के ही केरियोटाइप का अध्ययन हो पाया है अत:

इसके आधार पर गुणसूत्रों के पादप वर्गीकरण में उपयोग के औचित्य के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ भी अधिक कहना तर्कसंगत नहीं रहेगा। यद्यपि प्राप्त जानकारी के अनुसार गुण सूत्रों की संख्या व संरचना का वर्गीकरण में महत्वपूर्ण योगदान है फिर भी इसे आवश्यकता से अधिक महत्व देना अथवा इस प्रकार का निष्कर्ष कि गुण सूत्र संख्यायें (n) जहां जातीय अन्तर को स्पष्ट करती हैं वहीं गुण सूत्र आधार संख्यायें (x) दो वंशों के बीच सीमा का निर्धारण करती हैं, अतिशयोक्ति पूर्ण ही है। आवश्यकता इस बात की है कि पहले सभी संवृतबीजी पौधों की गुण सूत्र संख्या व केरियोटाइप का अध्ययन किया जाय। गुण सूत्रों के बारे में हुई ज्ञान में अभिवृद्धि से ही विकास के विभिन्न दिशाओं में प्रसारण की सही जानकारी मिल सकेगी व पौधों के वर्गीकरण में कोशिका वंशिकी का प्रयोग एक अति उपयोगी साधन के रूप में किया जा सकेगा।

27 पौधों के वर्गीकरण में रसायन विज्ञान का योगदान

सत्य प्रकाश चतुर्वेदी

पौधों का रासायनिक वर्गीकरण उनमें उपस्थित रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति के आधार पर किया जा सकता है। इस प्रकार किये गये रासायनिक वर्गीकरण का उपयोग पौधों के आकारिकी वर्गीकरण, जो कि पौधों की बाह्य रचना व अन्य गुणों पर आधारित है, के साथ तुलना करने व उसके सिद्धांतों को दृढ़ता प्रदान करने के लिये किया गया है। पादप वर्गीकरण विशेषज्ञों के हाथ में रासायनिक मानदण्ड एक शक्तिशाली अस्त्र के रूप में है और यदि इन तथ्यों को सही तौर पर व्यवहार किया जाए तो ये आकारिकीय प्रमाणों से कहीं अधिक उपयोगी व युक्तिसंगत हैं।

रासायनिक वर्गिकी का इतिहास बहुत पुराना है। पौधों की जड़ें एकत्रित करने वालों व शाकीय विदों ने कई शताब्दियों पूर्व पौधों का समूहीकरण उनके औषधीय गुणों की समानता के आधार पर किया था। किन्तु इस विषय पर विस्तृत अध्ययन सत्रहवीं शताब्दी में ग्रियू, पेटिवर, केमेरेशियस इत्यादि वैज्ञानिकों के कार्यों द्वारा सम्भव हुआ। ग्रियू के इस वक्तव्य ने कि "अगर विभिन्न पौधों के बीच कोई समानता होती है, एवं उनमें से किसी एक पौधे की प्रकृति मालूम हो तो अन्य पौधों की प्रकृति का कुछ अंश तक पता लगाया जा सकता है।" इस दिशा में कार्य करने के लिये अनेक वैज्ञानिकों का ध्यान आकर्षित किया। अपने वक्तव्य के समर्थन में ग्रियू ने कुछ सुन्दर उदाहरण भी प्रस्तुत किये। इनमें कुछ प्रमुख उदाहरण उम्बेलीफेरी कुल के पौधों में वायुहर गुणों का पाया जाना, टूलिप, क्रोकुस, प्याज आदि लिलिआसी कुल के पौधों में पारस्परिक रासायनिक समानता का होना, इत्यादि हैं।

वर्तमान शताब्दी में भी पादप-रसायन विज्ञान के क्षेत्र में काफी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है। विशेष कर पौधों में उपस्थित प्रोटीन व न्यूक्लिक अम्लों के सम्बन्ध में। पौधों की रासायनिक संरचना में प्रोटीन अणुओं व न्यूक्लिक अम्लों की भूमिका, उनके रासायनिक वर्गीकरण में अत्यधिक उपयोगी है। क्योंकि ये दो यौगिक मुख्यतया पौधों के परस्पर आनुवांशिक अन्तर को प्रदर्शित करते हैं। सूक्ष्म अणु यौगिकों जैसे—फ्लेवोनॉइड एवं अमीनो अम्लों के बाहुल्य का भी पौधों के विशिष्ट गुणों से बहुत निकट का सम्पर्क है।

तकनीकी क्षेत्र में हुई असाधारण उन्नति के कारण वनस्पतिज्ञों का ध्यान पादप रसायन विज्ञान की ओर और भी अधिक आकर्षित हुआ है। क्रोमेटोग्राफी, परा-बैंगनी, अवरक्त संहति

व एन० एम० आर० स्पेक्ट्रोस्कोपी, विद्युतभरण इत्यादि अत्यधिक जटिल रासायनिक विश्लेषण की विधियों के विकास से, प्राकृतिक रासायनिक यौगिकों का विश्लेषण एवं संरचना के निर्धारण का कार्य सरल हो गया है। रसायन-विज्ञान के प्रयोग से न केवल वर्गीकरण विशेषज्ञों को ही पर्याप्त सहायता मिली है, वरन् रसायनज्ञों व जीवरसायन वैज्ञानिकों को पौधों की अत्यधिक जटिल जीव-संश्लेषण प्रक्रियाओं का अध्ययन सुगमता से करने में सहायता मिली है। प्रोटीन अणुओं में अमीनो अम्लों की स्वतः क्रमिकता, जैसी आधुनिक तकनीक से उच्च श्रेणी के पौधों व जीवाणुओं के जाति सम्पर्क अध्ययन की ओर रुचि बढ़ी है।

रासायनिक वर्गिकी अनुसंधान की उपयोगिता सभी स्तरों पर खरी पायी गयी है। एक ओर जहां पौधों में प्रोटीन व टर्पीनॉइड यौगिकों का वितरण, पादप जग संख्या में उनके भेदीय चयन को सिद्ध करता है, वहीं दूसरी ओर निम्नवर्गीय पौधों में सेल्यूलोस की उपस्थिति, जन्तुओं से उनके भेद को स्पष्ट करती है।

पादप वर्गिकी में रासायनिक पदार्थों की उपस्थिति व अनुपस्थिति का भी काफी महत्व होता है। जैसे इलैजिक अम्ल रोसासी के एक उपकुल रोसोइडी के एक समूह कैरिर्ई को छोड़ अन्य सभी उपकुलों में अनुपस्थित होता है। दीर्घ अणु यौगिकों के वर्गिक तथ्य नमूनों, अनुपात एवं प्रतिशत में प्राप्त होते हैं। उपस्थिति या अनुपस्थिति, नमूनों या अन्य रूपान्तरणों पर आधारित रासायनिक वर्गिकी तथ्यों का वर्गीमिति (टैक्सीमीट्री) में सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है।

वर्गिकी में योगदान देने वाले महत्वपूर्ण रासायनिक यौगिकों में फ्लेवोनॉइड व एल्केलॉइड पदार्थों का विशेष महत्व है। फ्लेवोनॉइड यौगिकों की उपस्थिति या अनुपस्थिति के आधार पर पौधों को समूह स्तर तक पुनर्गठित किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर हरिता से नीचे स्तर के पौधों में लिग्निन व फ्लेवोनॉइड यौगिक, एक दो अपवादों को छोड़, साधारणतया नहीं पाये जाते हैं। किन्तु हरितोद्भिद (ब्रॉयोफाइटा) समूह से ऊपरी स्तर के पौधों में लिग्निन व फ्लेवोनॉइड पदार्थों की उपस्थिति एक नियमित लक्षण है। फ्लेवोनॉइड पदार्थों व शाकीय एवं काष्ठीय पौधों की आकारिकी के बीच आपसी सम्बन्धों का उपयोग हचिन्सन ने वर्गीकरण में सफलतापूर्वक किया है। एरिकेसियस गण के पौधों के वर्गीकरण में फ्लेवोनाइड यौगिकों का महत्वपूर्ण योगदान है। त्वरित फ्लेवोनॉइड निस्सारण, क्रोमेटोग्राफीय विश्लेषण व परख द्वारा **हीमानोफीटाम** वंश के पौधों में जातियों के वितरण से सम्बन्धित वर्षों से चले आ रहे प्रतिवाद को सुलझाने में सफलता मिली है। वर्गिकी वैज्ञानिक पहले **हीमानोफीटान** को एक प्ररूपिक वंश समझते थे किन्तु इस वंश के पौधों में उपस्थित फ्लेवोनॉइड यौगिकों की द्वि-आयामी क्रोमैटोग्राफी करने पर इस तथ्य की असत्यता प्रकट हुई एवं इस वंश में दो जातियों **ही० लाम्प्रोपोडुम** व **ही० फ्लावेस्लाटुम** का पता चला। इस अध्ययन द्वारा मार्ट्जगारिआलेस क्रम के पौधों में प्रथम बार फ्लेवोनॉइड यौगिकोंकी उपस्थिति दर्शायी गयी तथा

इसके आधार पर हरितविद् यह सोचने के लिये बाध्य हुए कि हीमानोफीटान एक उन्नत समूह है एवं मार्कान्टिआलेस क्रम के साथ इसके घनिष्ठ वंशीय सम्पर्क हैं।

वंश व जाति स्तर पर कुछ एल्केलॉइड यौगिकों का रासायनिक प्रमाणों के रूप में बहुत पहले से ही प्रयोग किया जाता रहा है। अपने क्षारीय गुणों व आसानी पूर्वक पता लग जाने के कारण इन यौगिकों का विशेष महत्व रहा है। 'सेनेसिओ' व 'लूपिन' एल्केलॉइड यौगिक पापीलिओनासी कुल के जेनिस्टी समूह के पौधों में ही केवल पाये जाते हैं। 'फ्यूरोक्वीनोलीन' व 'पाइरोक्वीनोलीन' ऐल्केलाइड यौगिकों की क्रमश: रुटासी व अमारिल्लीडासी कुल के पौधों तक सीमित उपस्थिति से इनके महत्त्व का पता चलता है।

हचिन्सन ने अपने पुनर्गठित वर्गीकरण में अमारिल्लीडासी कुल के दो उपकुलों-अमारिल्लीडोइडी व आल्लिओइडी को साथ साथ रखा था। किन्तु इन दोनों उपकुलों में से केवल अमारिल्लडोइडी उपकुल के पौधों में ही एल्केलाइड व रेफाइड यौगिकों की उपस्थिति होने के कारण इसका आल्लिओइडी उपकुल से आपसी सम्पर्क संदिग्ध है एवं इन प्रमाणों के आधार पर इस कुल का एक बार फिर से पुनर्गठन करना आवश्यक हो गया है।

'पालीकार्पी' समूह के पौधों द्वारा 'बेन्जाइल-टेट्राहाइड्रोक्सीआइसो-क्वीनोलीन' एल्केलॉइड यौगिकों का संश्लेषण व संचय करने की क्षमता, इस समूह का एक स्थायी लक्षण है। इस समूह के पौधों के 25 कुलों में से 13 कुलों में एल्केलाइड नहीं पाये जाते हैं किन्तु बाकी 12 कुलों में 'बेन्जाइल-टेट्रा-हाइड्रोक्सी-क्वीनोलीन' एल्केलॉइड यौगिक पाये जाते हैं। इस समूह के एल्केलॉइड यौगिकों में से दो--मेग्नोफ्लोरीन व बरबेरीन प्रमुख हैं। अम्नोनासी, मेनीस्पेर्मासी व उनसे सम्बन्धित अन्य 5 कुलों में ये एल्केलॉइड तृतियक क्षार यौगिकों के साथ पाये जाते हैं तथा हेनीन्डिआसी, लाउरासी, नीम्फाएआसी व मोनीमिआसी कुलों के पौधों में केवल तृतियक क्षारीय पदार्थों की उपस्थिति इन यौगिकों के आधार पर पौधों के समूह व कुल के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

'कॉलचीसिन' व उससे सम्बन्धित एल्केलॉइड यौगिकों का संचयन लिलिआसी कुल के एकउ उपकुल 'वुर्मबाएओइडी' के पौधों का चारित्रिक लक्षण है। कालचीसिन व उससे संबन्धित 'ट्रोपोलोन' एल्केलॉइड यौगिकों का बक्सबौम ने लिलिआसी कुल के वर्गीकरण व इस कुल में उपकुलों के स्थान निर्धारण में उपयोग किया था एवं इस आधार पर उसके द्वारा किया गया पुनर्गठित वर्गीकरण 'हचिन्सन' व 'क्राउस' के वर्गीकरणों से अधिक युक्तिसंगत है।

गण स्तर पर वर्गिकी समस्याओं को रासायनिक प्रमाणों के आधार पर हल करने में कुछ यौगिकों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसका एक सुन्दर उदाहरण 'बीटालाइन' वर्णकों का 'सेन्ट्रोस्पेर्मी' के पुनर्गठन में उपयोग है। पादप जगत में लाल व पीले वर्णकों के रूप में साधारणतया 'एन्थोसाइनिन' व 'एन्थोजेन्थीन' यौगिक पाये जाते हैं। किन्तु 'सेन्ट्रोस्पेर्मी' गण के पौधों में बीटालाइन यौगिक 'बीटासाइनिन' व 'बीटाजेन्थीन' यौगिक इन दो वर्णकों का कार्य करते हैं इस

गण के पौधों के कुलों का समूही करण इन वर्णकों की उपस्थिति के आधार पर सफलतापूर्वक किया गया है। आकारिकी वर्गीकरण में सेन्ट्रोस्पेर्मी गण में कारिओफिल्लासी, अमारान्थासी व अन्य 10 कुलों को रखा गया है, तथा काक्टासी कुल को इसी गण के एक अन्य उपगण काक्टालेस के तहत रखा गया है। रासायनिक गुणों पर आधारित वर्गीकरण में काक्टासी कुल को इस गण में सम्मिलित किया गया है। तथा कारिओफिल्लासी व मोल्लुजिनासी कुलों को छोड़ दिया गया है। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि छोड़े गये इन दो कुलों के अलावा इस क्रम के सभी कुलों में 'बीटालाइन' वर्णक पाये जाते हैं। बेनके ने सेन्ट्रोस्पेर्मी गण के पौधों के चालनी-नलिका लवकों में विशिष्ट प्रोटीन समावेशों की उपस्थिति के आधार पर यह सिद्ध किया कि काक्टासी, मोल्लुजिनासी व कारिओफिल्लासी कुलों को सेन्ट्रोस्पेर्मी में रखना उचित है एवं बीटालाइनयौगिकों की उपस्थिति या अनुपस्थिति से वर्गीकरण में उनके स्थान पर कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसके बाद बेनके व टरनर (1971) ने सेन्ट्रोस्पेर्मी गण का बीटालाइन वर्णकों की उपस्थिति व अनुपस्थिति को आधार बना कर पुनर्गठन किया, जिसमें सेन्ट्रोस्पेर्मी गण को एक उपवर्ग 'कारिओफिल्लोइडी' के अन्तर्गत आपस में सम्बन्धित दो गणों—'कारिओ-फिल्लालेस' व 'चेनोपोडिआलेस' में विभक्त किया गया।

फ्लेवोनॉइड व एल्केलॉइड यौगिकों के अलावा और भी कई ऐसे रासायनिक यौगिक हैं जिनका पौधों के वर्गीकरण में रासायनिक प्रमाणों के रूप में लघु या बृहत् स्तर पर प्रयोग किया जा सकता है। जैसे अनावृतबीजी पौधों के कुप्रेस्सालेस व पीनालेस गणों को छोड़ 'बाई-फ्लेवोनाइल' यौगिक साधारणतया नहीं पाये जाते हैं। चीड़ कुल के पौधों के दो उपकमों —'हाप्लोक्सीलॉन' व 'डिप्लोक्सीलॉन' को उनके फीनोलिक यौगिकों के विशिष्ट नमूनों व संरचना के आधार पर एक दूसरे से अलग पहचाना जा सकता है।

पौधों से प्राप्त मोम जैसे पदार्थों का भी वर्गिकी में प्रयोग किया गया है। बारबर व जैकसन ने इनकी सहायता से एउकालिप्टुस की दो उप-जातियों के अन्तर को स्पष्ट किया एवं उच्चर्म में पाये जाने वाले मोम जैसे पदार्थों एवं उनसे संलग्न आकारिक गुणों के सम्पर्क को स्पष्ट किया। एसीटेलीनिक यौगिकों की सहायता से पौधों के वर्ग व जाति स्तरीय अनेक वर्गिकी सम्बन्धी समस्याओं को हल किया जा सका है फायो-ग्लाइकोसाइड यौगिकों की र्‌होएआडालेस गण के पौधों में उपस्थिति, एक प्रमुख विशेषता है एवं इस तथ्य का र्‌होए-आडालेस गण की उत्पत्ति एवं इस गण में रखे गये पादप कुलों के आपसी सम्पर्कों को प्रदर्शित करने में उपयोग किया गया है। ये यौगिक र्‌होएआडालेस गण के चार कुलों में उपस्थित होते हैं जिससे इनके एक साथ रखे जाने की युक्ति प्रमाणिक प्रतीत होती है। पादप वर्गीकरण में इस गण के अन्तर्गत पापावेरासी कुल को भी रखा गया है किन्तु प्राप्त रासायनिक तथ्यों के आधार पर इस युक्ति का समर्थन नहीं किया जा सकता।

भारतीय वनस्पतिज्ञों एवं रसायन शास्त्रियों ने पिछले कुछ वर्षों में रासाय-वर्गिकी के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण व उल्लेखनीय कार्य किये हैं। रासाय-वर्गिकी के क्षेत्र में महत्वपूर्ण

कार्य कर रहे, कुछ प्रमुख संस्थानों में से विभिन्न क्षेत्रीय अनुसंधान प्रयोगशालाएं, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान (सीमाप) भारतीय प्रयोगात्मक जीव-विज्ञान संस्थान इत्यादि का कार्य उल्लेखनीय है। विभिन्न विश्वविद्यालयों में संलग्न वैज्ञानिकों का भी सराहनीय योगदान रहा है।

मेनीस्पेमर्सी कुल के पौधों में 'बिस-बेन्जाइल-आइसोक्वीनोलीन' एल्केलोइड (बी० बी० आई० एल्केलॉइड) यौगिकों की विस्तृत उपस्थिति को आधार बना कर, इस कुल के विकास, परम्परागत वर्गीकरण में स्थान व एक ही गण में रखे गये अन्य कुलों, जैसे बेरबेरी-डासी, नीम्फाएआसी आदि कुलों के मध्य आपसी सम्पर्कों की युवित की सार्थकता सिद्ध करने में कुछ भारतीय जीव-वैज्ञानिकों ने सुदृढ़ प्रमाण दिये हैं। आन्नोनासी कुल में उपस्थित 'बेन्जाइल-आइसो क्वीनोलीन एल्केलॉइड' एवं बेरबेरीडासी कुल में उपस्थित 'बेरबेरीन' एल्के-लॉइड यौगिकों का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने सोलानासी कुल के पौधों में सोलासोडीन एवं सम्बन्धित एल्केलोइड़ यौगिकों की विस्तृत स्तर पर प्राप्ति का अध्ययन किया एवं उनके आधार पर इस कुल के पौधों के आपसी सम्बन्धों को दर्शाया है।

उपरोक्त कुछ उदाहरणों द्वारा रासायनिक पदार्थों के वर्गीकरण सम्बन्धी महत्त्व का पता चलता है। रासायनिक प्रमाणों का वर्गिकी में व्यापक स्तर पर उपयोग अभी विकास की प्रक्रिया में है तथा इनके योगदान का सही-मूल्यांकन करने के लिए, अन्य क्षेत्रों जैसे आनुवांशिकी, कोशिकी, पादप-कायिकी व लसिकी द्वारा प्रदत्त प्रमाणों का विस्तृत अध्ययन जरूरी है। रासायनिक गुणों के कार्यशील महत्व व गौण चयापचित पदार्थों के जीव संश्लेषण पर और अधिक शोध कार्य की आवश्यकता है जिससे कि इन पदार्थों का वर्गिकी-महत्त्व प्रकाश में आये। रासायनिक यौगिकों के पौधों में वितरण का अधिक वर्गिकी अध्ययन होना चाहिये। जिसकी सहयता से पौधों की व्याख्या रासायनिक गुणों के आधार पर करना सम्भव हो सके एवं तर्क-संगत रासायनिक वर्गीकरण किया जा सके।

28. भारत की वनस्पति सम्पदा-विविधता और पर्यावरण रक्षा में योगदान

श्री कृष्णा मूर्ति

भारत की वनस्पति सम्पदा अपनी विविधता के लिए विश्व प्रसिद्ध है। एक अनुमान के अनुसार भारत में समस्त प्रकार के पौधों की लगभग 45,000 जातियां उपलब्ध हैं, जिनमें 15,000 से ज्यादा जातियां उच्च वर्गीय पौधों की हैं।[1] लगभग 400 पौध-कुलों में से हमारे देश में लगभग 315 पौध-कुलों का प्रतिनिधित्व है। भारत को सुविधानुसार, विभिन्न जगहों पर विभिन्न प्रकार के पाये जाने वाले वन और वनस्पति के आधार पर, 9 भागों में बांटा जा सकता है—पश्चिमोत्तर हिमालय, पूर्वी हिमालय, पश्चिम के रेगिस्तान और शुष्क क्षेत्र, गंगा का मैदान, पूर्वी भारत, दक्षिण का पठारी प्रदेश, पश्चिमी घाट, पूर्वी घाट और अन्डमान तथा निकोबार द्वीप समूह।

भारत में विभिन्न रूप, रंग, आकार और उपयोग वाले पेड़ पौधों की प्रचुरता है। भारतीय वनस्पति उद्यान में 200 वर्ष से अधिक पुराना एक वट वृक्ष **फीकुस बेंगालेन्सिस है। अडान्सोनिआ डिजिटाटा** के फूल अर्ध रात्रि में ही खिलते हैं। कुछ अत्यन्त प्राचीन पौधों की किस्में जैसे **माग्नोलिआ प्टेरोकार्पा, टालाउमा होड्गसोनी, टेट्रासेन्ट्रोन, हाएमाटोकार्पुस, आस्पीडोकारीआ, ऐक्सबुकलान्डिआ** इत्यादि भारत में पाई जाती है। अनेकों प्रकार के कीट भक्षी पौधे यहां मिलते हैं जैसे **नेपेन्थेस खासिआना, ड्रोसेरा ईण्डिका** इत्यादि। **पोआ लिटो-रोसा में** सर्वाधिक क्रोमोजोम पाये जाते हैं। आर्किड की सैंकड़ों जातियाँ यहाँ उपलब्ध हैं। ऐसा अनुमान है कि नीबू जाति के पौधों का विकास भारत में हुआ। **एउरीआले फेरोक्स** अपनी तैरती हुई विशालकाय पत्तियों के लिए विख्यात है। **साप्रिआ हिमालयाना** एक बहुत बड़े आकार का परजीवी पौधा अरुणाचल के वनों में पाया जाता है जो दूसरे पौधों की जड़ों पर आश्रित होता है। **गालेओला फालकोनेरी** एक विशालकाय आर्किड का पौधा सड़ती हुई वनस्पतियों पर पाया जाता है। वनस्पति विज्ञान की दृष्टि से कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण पौधे जैसे **नेपेन्थेस खासिआना, ड्रोसेरा ईन्डिका, मिट्रास्टेमोन यामामोटोई, रहोपालोक्नेमिस फाल्लोइ-डेस, पोडोस्टेमोन** इत्यादि हमारी अमूल्य निधि हैं।

यह विविधता हमारे जलवायु तथा भौगोलिक विभिन्नताओं के कारण है। हमारे देश की विशालता, हिमाच्छादित पर्वत-श्रृंखलाओं, रेगिस्तानों, हरे भरे मैदानों, घने और सदैव

---

1. जैन एस० के० (1983) **फ्लोरा एन्ड वेजीटेशन आफ इंडिया**—एन आउट लाइन, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण।

हरे रहने वाले वनों, कटीले वनों, समुद्र तल से विभिन्न ऊंचाइयों इत्यादि का इतना सुंदर संगम अन्यत्र कम देखने को मिलता है। विश्व की अधिकतम वर्षा भारत में स्थित चेरापूंजी नामक स्थान पर होती है। इन्हीं विभिन्नताओं ने हमारे देश को 'हरा सोना' उपलब्ध करा रखा है। इन्हीं विविधताओं ने हमारी वन सम्पदा में ऐसे वनस्पतियों की प्रचुरता बना रखी है जिनसे हमें अनेकों प्रकार के खाद्य पदार्थ, लकड़ी, रंग, रेशे, गोंद, गौण वन उपज, इत्यादि प्राप्त होते हैं।

भारत में पाये जाने वाले द्वि बीज पत्री पौधों में लगभग 60 प्रतिशत पौधों की जातियां ऐसी हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती है। एक बीज पत्री पौधों की जातियों में यह संख्या लगभग 35 प्रतिशत (लगभग 5,000 जातियां) हैं। जहां हमारे देश में ऐसे पौधों की कमी नहीं जो केवल भारत में ही होते हैं, वहां ऐसे पौधों की भी प्रचुरता है जो अन्य देशों से यहां पहुंच गए हैं। ऐसे पौधे मध्य पूर्व, सोवियत संघ, मध्य एशिया, पूर्वी एशिया, चीन इत्यादि से आए हैं, उदाहरण के लिए मलेशियन (डीप्टेरोकारपासी, क्लूसिआसी कुल के पौधे), तिब्बती (हिप्पोफाए) 'साइनोजापानी' (**स्कीमा, कुएरकुस, जास्मीनुम**), 'साइबेरियन' (**पोटेंटिला, पेडिकुलारिस**), यूरोपियन (**रानुनकुलुस, जेन्टिआना, अनेमोने**), अफ्रीकी (**होलार्‌हेना, फ्लेकूर्टिआ**), अरेबियन (**अकासिआ, साल्वाडोरा**), अमरीकी (**एउपाटोरिउम, पार्थेनिउम, लान्टाना**) इत्यादि।

सर जोसेफ डाल्टन हुकर ने कुछ अन्य सहयोगी वैज्ञानिकों की सहायता से भारत की वनस्पति सम्पदा पर आधारित सात भागों वाला एक ग्रन्थ फ्लोरा ब्रिटिश इण्डिया (1872-96) तैयार किया था, परन्तु तब और अब के भारत की भौगोलिक स्थिति में बहुत अन्तर आ गया है, तथा उक्त ग्रन्थ के प्रकाशन के पश्चात् लगभग 250 नये पौधों की जातियां भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों ने और पता लगाई हैं। मुख्यत: इन्हीं दो कारणों से भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिकों को एक ऐसा नया ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा मिली जिसमें भारत की वर्तमान भौगोलिक सीमा के अन्दर पाये जाने वाले समस्त वनस्पतियों का विवरण प्रस्तुत हो। इस दिशा में वनस्पति सर्वेक्षण ने अभी तक **फ्लोरा आफ इन्डिया फैसिकल** के नाम से 14 छोटी बड़ी पुस्तकें, कुछ **डिस्ट्रिक्ट फ्लोरा** तथा **स्टेट फ्लोरा** का प्रकाशन कर वनस्पति विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय योगदान किया है।

पेड़ पौधों का पर्यावरण की रक्षा में योगदान सबको विदित हो चुका है। पर्यावरण का प्रभाव मनुष्य जीवन पर विभिन्न प्रकार से पड़ता है। ज्यों ज्यों आधुनिक विकास कार्य होते जा रहे हैं, हमारा पर्यावरण दूषित होता जा रहा है।

वनस्पतियां हमारे पर्यावरण की सुरक्षा में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं। पेड़ ही वातावरण से कार्बनडाईआक्साइड जैसी जहरीली गैस को ग्रहण करके हमारे लिए जीवनदायनी आक्सीजन तैयार करते हैं। वृक्ष कटते हैं बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए। यदि यह वृद्धि रुक जाये तो वन सम्पदा के नष्ट होने की गति भी कम हो जायेगी, तत्पश्चात्

वृक्षारोपण एक दोहरी सुरक्षा प्रदान करेंगे। मत्स्य पुराण के अनुसार एक वृक्ष का रोपण दस पुत्रों के बराबर है; वाराह पुराण के अनुसार 'पंचाम्रवापी नरकम न याति'—आम के पाँच पौधे लगाने वाला कभी नरक जाता ही नहीं। वैज्ञानिकों का मत है कि यदि संसार में पेड़-पौधे न होते तो कोई भी प्राणी जीवित न रहता। बढ़ते हुए रेगिस्तान को रोकने के लिए वृक्षारोपण आवश्यक है, आकाश में विचरण करने वाली मानसूनों को पेड़ ही अपनी ओर आकर्षित करते हैं; परिणामस्वरूप वर्षा होती है। पक्षियों का प्राणाधार ही पेड़ हैं। जन्तुओं का आश्रय स्थल वन ही होते हैं। वृक्ष जलवायु की विषमता को भी दूर करते हैं।

वन हमारी एक अलौकिक सम्पत्ति हैं, जिसकी रक्षा एवं विकास करना हम सबका कर्तव्य है। वन सम्पत्ति से परोक्ष एवं अपरोक्ष, दोनों ही रूप में काफी लाभ हैं। वनों से भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ावा मिलता है। वनों को खेती का महत्वपूर्ण व आवश्यक परिपूरक माना जाता है। वनों को काट देने से वर्षा ठीक प्रकार से नहीं होती है; बाढ़ों की रोकथाम में कठिनता आती है तथा मिट्टी का कटाव काफी मात्रा में होता है। वनों का देश की अर्थ व्यवस्था में काफी महत्वपूर्ण स्थान है। वन तेज हवाओं, तूफानों और आंधियों को रोकने में सहायक होते हैं।

वनों की महत्ता को देखते हुए सन 1952 में भारत की संसद ने एक प्रस्ताव पारित कर देश के समस्त क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग में वनों और वृक्षों को लगाने की व्यवस्था की थी। देश के लगभग 11-12 प्रतिशत भाग अच्छे वन हैं। हमारी राष्ट्रीय नीति ने इसे बढ़ा कर 33 प्रतिशत करने का निश्चय किया।

वर्तमान भारत में जबकि दूषित पर्यावरण का संकट बढ़ता जा रहा हो; ओलावृष्टि और असमय वर्षा से फसल नष्ट हो रही हो; अकाल की वेदी पर प्राणी अपने जीवन की आहुति दे रहा हो, जनसंख्या की अंध-वृद्धि के कारण ईंधन, इमारती लकड़ी और खेलकूद के सामान की मांग सुरसा के मुँह की तरह बढ़ रही हो; बीमारियों पर विज्ञान की विजय के लिए जड़ी-बूटी, वृक्ष चर्म और पत्ती, पुष्प, फल की अत्यधिक आवश्यकता हो; ज्ञान प्रसार की दृष्टि से कागज की अत्यधिक मांग हो; तब तेजी से वृक्षारोपण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं। यदि काटे जाने वाले वृक्षों से लगाये गये वृक्षों की संख्या अधिक होगी तो वन्य जन्तुओं को जीवन की सुरक्षा प्रदान होगी और हमारी प्राचीन धरोहर सुरक्षित रह सकेगी।

29. मेघालय के पावन लघु वन

प्रभात कुमार हजरा

आज बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्राकृतिक सम्पदा का क्रूरता से नाश किया जा रहा है। संरक्षण कार्य से संबंधित अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय संस्थाओं ने संसार भर में ऐसे सैंकड़ों स्थलो, जहां पर बिरले जाति के पेड़ पौधे हैं, के संरक्षण की योजना आरम्भ की है। इसका लक्ष्य यह है कि इस प्रकार के प्राकृतिक स्थानों की भूमि जलवायु तथा वन सम्पत्ति को सुरक्षित रखा जाये। परन्तु प्रकृति की उपासना तो भारत में आदि काल से ही प्रचलित है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में हर प्रकार के जीव जन्तुओं को पवित्र माना गया है। तृण जाति के पौधे जैसे कुशा तथा दूब से लेकर तुलसी, पीपल, बेल आदि वृक्षों की पूजा की जाती है। इसके अलावा कई स्थानों पर ऐसे छोटे-छोटे वन भी हैं जो सम्पूर्ण ही पावन और पूज्य माने जाते हैं। उदाहरणार्थ भारत में ऐसे वन मेघालय महाराष्ट्र और राजस्थान आदि में हैं जिनका संरक्षण धर्म-विश्वास पर ही होता है। इसी प्रकार धर्म-विश्वास पर सुरक्षित वन घाना, नाईजीरिया, तुर्की, जापान तथा चीन में भी पाये जाते हैं। इस लेख में केवल मेघालय में स्थित धर्म-विश्वास पर संरक्षित लघु वनों का उल्लेख है।

मेघालय के खासी तथा जैन्तिया वन सैंकड़ों वर्षों से अपनी प्राकृतिक सम्पदा के लिए विख्यात हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में डा० जोसफ डालटन हुकर तथा बीसवीं शताब्दी में डा० एन० एल० बोर ने अपनी पुस्तकों में इन पवित्र कुंजों का वर्णन किया है। तत्पश्चात् भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण में भी इन वनों के पेड़ पौधों पर अन्वेषण किया गया और लेख प्रकाशित हुए।

वहां के निवासियों का विश्वास है कि इन पेड़ पौधों में देवी देवताओं का निवास है और यदि हम उस वन से कोई वृक्ष, फल या फूल लेते हैं तो देवता रुष्ट हो जायेंगे। इसी धर्म-विश्वास पर यह वन आज भी ज्यों के त्यों बने हुए हैं। इन कुंजों में आदि काल के असंख्य प्रकार के पेड़ पौधे अब भी पाये जाते हैं। प्राचीन काल में हर एक गांव के समीप इस प्रकार का पावन लघु वन होता था परन्तु अब केवल माफलांग, शिलांग पीक तथा मौसमाई में ही ऐसे कुंज रह गये हैं।

माफलांग के 'लौ लिंगडोह' कुंज को 'ऊ बासा' या 'ऊ रिंगवय' नामक देव का निवास स्थान मानते हैं। इस देव को पृथ्वी का संरक्षक कहते हैं और यह विश्वास है कि यहां हानि करने वाले को मृत्यु दण्ड मिलता है। सब प्रकार के पशु-पक्षी विशेषकर सर्पों की रक्षा की जाती है। कहा जाता है कि यदि एक सर्प मारा जायेगा तो कई पैदा हो जायेंगे और अपराधी को

मार डालेंगे। समय-समय पर बकरे या मुर्गे की बलि देकर देव को प्रसन्न किया जाता है। शिलांग पीक के कुंज को 'लेय शिलांग' नामक देव का निवास मानते हैं। इनको कृपालु और कल्याणकारी कहा जाता है। खासी देवताओं में इनका स्थान सर्वोच्च है। स्थानीय लोकोक्तियों के अनुसार यह कुंज आज भी अपने आदिकालीन रूप में है। यदा कदा बकरे की बलि चढ़ाई जाती है। चेरापूंजी के समीप मौसमाई का 'लौ किनटेंग' कुंज एक महाशक्तिशाली एवं ईर्ष्यालु देव का निवास है। इस वन को नष्ट करने वाले की सजा मौत ही है। अपराध का निवारण बकरे की बलि से ही होता है। इस परिस्थितिक संरक्षण की तुलना जीवमण्डल आरक्षण कार्यक्रम से की जा सकती है।

इन लघु वनों के पेड़ पौधे केवल प्राकृतिक परिवर्तनों के आधीन हैं, कोई भी मानव द्वारा रचित (बायटिक फैक्टर) प्रभाव या परिवर्तन वर्जित है। यहां के प्रमुख वृक्ष हैं— **र्‌होडोडेन्ड्रोन आर्बोरेउम, पीरुस पाशिआ, स्कीमा खासिआना, कामेल्लिआ काडुका, मीरिका एस्कुलेंटा, कुएरकुस ग्रिफ्फिथिई, कास्टानोप्सिस कुर्जिई** आदि।

यहां पर अनेक प्रकार के दुर्लभ पौधे भी पाये जाते हैं : उदाहरणार्थ-**टाक्सुस बक्काटा, ग्नेटुम स्कान्डेन्स एवं आनेक्टोकिलुस सिक्किमेन्सिस, बालानोफोरा डिओइका,** एपीपोगिउम **रोसेउम, मिट्रास्टेमोन यामामोटोई** इत्यादि।

प्राचीन पौधों की श्रेणी में **एक्सबुक्लान्डिआ पोपुल्नेआ, कोरीलोप्सिस हिमालयाना, मान्ग्लेइटिआ इन्सिग्निस** आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

सुन्दर शोभाकारी आर्किड भी यहां पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं जैसे कि **डेन्ड्रोबिउम हुकेरिआनुम, डेन्ड्रोबिउम क्रिसांथुम, सोएलोगिने कोरीम्बोसा, सिम्बीडिउम एलेगान्स** तथा **प्लेइओने प्राएकोक्स।**

यद्यपि इस वैज्ञानिक युग में अन्ध विश्वास का स्थान नहीं है पर यह मानना पड़ेगा कि प्राकृतिक सम्पदा के संरक्षण में इसका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। आज जब कि वनों को तेजी से नष्ट किया जा रहा है और लोगों के विचारों में परिवर्तन आ रहा है, इस धर्म विश्वास, जिसे आज का वैज्ञानिक अन्ध विश्वास कहने में नहीं हिचकता, के सहारे ही देश की अतुल्य प्राकृतिक सम्पदा की अनेक स्थानों पर रक्षा हो सकी है।

30. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान

आनन्द कुमार एवं जगदीश लाल

कान्हा राष्ट्रीय उद्यान 940 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में मध्य प्रदेश राज्य के मण्डला एवं बालाघाट जिलों में स्थित है। इस उद्यान की स्थापना सन् 1955 में हुई थी, उस समय इसका मुख्य उद्देश्य बारहसिंघे की एक किस्म जो कि 'स्वैम्प डियर' के नाम से जानी जाती है एवं सारे विश्व में सिर्फ यहीं पर मिलती है, उसके अस्तित्व को नष्ट होने से बचाना था। सन् 1974 से ये उद्यान 'बाघ--परियोजना' के अन्तर्गत शामिल कर लिया गया तथा 'कान्हा बाघ आरक्षित क्षेत्र के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा और इसका मुख्य उद्देश्य बाघों की घटती हुई संख्या को रोकना हो गया। इस लक्ष्य में हुई प्रगति का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि बाघों की संख्या जो कि 'बाघ परियोजना' शुरू होने के समय अर्थात् 1974 में सिर्फ 43 थी इस समय बढ़कर 83 तक पहुंच गई है।

कान्हा राष्ट्रीय उद्यान सतपुड़ा पहाड़ियों की मेकल शाखाओं में स्थित है। यहां की पहाड़ियों की एक विशेषता यह है कि उनका ऊपरी सिरा समतल होता है, जिसे यहां के लोग 'दादर' के नाम से सम्बोधित करते हैं। यहाँ की प्रमुख तीन ऋतुएं हैं:—सर्दी (नवम्बर से फरवरी तक), गर्मी (मार्च से जून के मध्य तक) एवं बरसात (जून के मध्य से अक्टूबर के मध्य तक)। यहां की आर्द्रता अगस्त माह में सर्वाधिक (80—85प्रतिशत) होती है एवं वार्षिक वर्षा लगभग 1600 मिलीमीटर होती है। इस उद्यान में जल आपूर्ति हैलोन व सल्कम नामक दो प्रमुख नदियों एवं उनकी शाखाओं तथा बहुत से नालों द्वारा होती है। इसके अतिरिक्त यहां कई जलाशय भी हैं, जिनमें श्रवण ताल, बिसली एवं सोन्ढ़र जलाशय प्रमुख हैं, जहां वन्य जीवों को पानी पीते हुए अक्सर देखा जा सकता है।

वनस्पतियाँ:—कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में संवृत बीजी वर्ग ('आन्जियोस्पर्म') एवं अपुष्पोद्भिद वर्ग ('क्रिप्टोगैम्स') की बहुत सी जातियां पाई जाती हैं। महेश्वरी ने 1964 (**बुलेटिन आफ बाटनिकल सर्वे आफ इन्डिया 5**: 117-140) में यहाँ के संवृत बीजी एवं पर्णागो (फर्न) के ऊपर एक शोध पत्र लिखा जिसमें यहां इनकी 275 जातियों के उपलब्ध होने का उल्लेख है। सन् 1982-83 में इस उद्यान के विस्तारपूर्वक सर्वेक्षण से पता चला कि यहां संवृत बीज वर्गी पौधों की 607 जातियां, पर्णागों की 17 जातियां, हरिता (मॉस) की 30 जातियाँ एवं प्रहरितों ('लिवरवर्ट्स') की 20 जातियां मिलती हैं। जिनमें कुछ दुर्लभ वनस्पतियां जैसे **ड्रोसेरा बुर्मानी, ड्रो० ईन्डिका, ग्रेविआ सापिडा, एरिओसेमा हिमालाइकुम, इन्डिगोफेरा हामिल्टोनिई, ओलेक्स नाना, कोम्ब्रेटुम नानुम, ओफिओग्लोस्सुम ग्रामीनेउम** एवं **सेफालोजिआ हैलोंगिमाना** आदि शामिल हैं। इस उद्यान को जहां वनस्पतियों एवं वन्य जीव प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं 'जीवमण्डल आरक्षण' के अन्तर्गत घोषित कर दिया गया है।

'दादर' पर वृक्ष कम ऊंचाई के होते हैं एवं दक्षिणीय उष्णकटिबन्धी शुष्क पर्णपाती किस्म के वनों के अन्तर्गत आते हैं। ये कम घने होते हैं। 'दादर' पर सामान्यतया पाये जाने वाले वृक्षों में **स्टेर्कुलिआ उरेन्स** (कुल्लू) **राडेरमाचेरा जीलोकार्पा, लान्नेआ कोरोमान्डेलिका** ('मोयन') **बुटेआ मोनोस्पेर्मा** (पलास), **फिर्मिआना कोलोराटा** ('ओदाम'), **मधुका लान्गीफोलिआ** (महुआ), **आएग्ले मार्मेलोस** (बेल), **बुकानानिआ लन्जान** (चार), **बोस्वेल्लिआ सेर्राटा** (सलाई), **एम्बलीका ऑफ्फीसिनालिस** (आंवला), **जेरोम्फिस स्पिनोसा** (मेनहर) प्रमुख हैं। इन वनों में पाई जाने वाली क्षुपों (झाड़ियों) में **कारीस्सा स्पिनारम, एउफोर्बिआ नीवुलिआ** एवं **मुर्राया पानीकुलाटा** प्रमुख हैं। आरोही पादपों में **अकासिआ पेन्नाटा, वेन्टीलागो डेन्टीकुलाटा, क्रिप्टोलेपिस, बुकानानिई, और हेमीडेस्मुस ईन्डिकुस** कहीं-कहीं पर मिलते हैं। यहां घास काफी ऊंची-ऊंची होती हैं। यहाँ पायी जाने वाली मुख्य घासें हैं—**हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस, डीकान्थिउम आन्नुलाटुम, इसेइलेमा लाक्सुम, इ० आन्थेफोरोइडेस, थेमेडा लाक्सा थे० ट्रिआन्ड्रा एवं सीम्बोपोगॉन मार्टिनिई।**

दादर के नीचे पहाड़ियों के ऊपरी हिस्से में 'दक्षिणीय उष्ण आर्द्र पर्णपाती' वन पाये जाते हैं जो काफी घने होते हैं एवं वृक्ष भी काफी ऊंचे होते हैं। इन वनों में जगह-जगह पर आरोही पादप मिलते हैं। **डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस** (बांस) भी प्रचुर मात्रा में मिलता है एवं भू-वनस्पति काफी घनी होती है। इन वनों की संरचना का विवरण इस प्रकार है :—

ऊपरी अवतान :—**टेर्मिनालिआ अलाटा** ('साजा), **टे० चेबुला** (हर्रा), **प्टेरोकार्पुस मार्सूपिउम** (बीजा), **अडीना कोर्डिफोलिआ** (हल्दू), **सीजीजिउम कुमिनी** (जामुन), **ओडिलिआ रेटुसा** (कसाई), **अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ** (धावन), **ग्मेलिना आर्बोरेआ** (सिवान), **ग्रेविआ टीलिआएफोलिआ** (धमन) आदि।

मध्य अवतान :—**मीलिउसा टोमेन्टोसा** (कारी), **सेमेकार्पुस अनाकार्डिउम** (भिलवा), **डिओस्पीरॉस मेलानोक्सीलान** (तेन्दू), **कास्सिआ फीस्टुला** (अमलतास), **कीडिआ कालीसिना** (बारंगा), **कासेअरिआ एल्लिप्टिका** (गिरची), **माल्लोटुस फिलीप्पेन्सिस** (तिलवान), **एरिओलाएना हूकेरिआना** (बोथी), **करेया आर्बोरेआ** (कुम्ही), **गारुगा पीन्नाटा** (घरो), **इक्सोरा आर्बोरेआ** आदि।

वन-निम्न-रोह :—नेलसोनिआ कानेस्सेन्स, **फेनिक्स अकाउलिस** (छिन्द), **हेलिक्टेरेस इसोरा** (ऐंठी), **पेरीलेप्टा एड्गवोर्थिआना, ट्रिउम्फेट्टा पिलोसा, ग्रेविआ हिर्सुटा, पोगोस्टेमॉन बेन्घालेन्स, हेमीग्राफिस लाटेब्रोसा, इन्डीगोफेरा कास्सि ओइडेस, पेटालाडिउम बार्लेरिओइडेस, क्लोरिस डोलीकोस्टाचिया, कार्पीस्लिपेडिउम आस्सीमिले, ओप्लिसमेनुस बुर्मा-न्निई** आदि।

आरोही पादप :— **बुटेआ सुपेर्बा** (पलास बेल), **स्मीलाक्स जेईलानिका** (रामदातुन) **मोल्लेटिआ आउरीकुलाटा, फनेरा इन्टेग्रीफोलिआ** (मोहलेन), **ओलाक्स स्कान्डेन्स** आदि।

आर्किड :--**वाण्डा टेस्सेल्लाटा, वाण्डा टेस्टासेआ, ओबेरोनिआ फाल्कोनेरी, हाबेनारिआ कोम्मेलिनीफोलिआ** ।

पहाड़ियों के निचले हिस्सों एवं घाटियों में साल के घने जंगल पाये जाते हैं जिनमें 80-100 प्रतिशत तक साल के वृक्ष होते हैं। इन जंगलों में **फेनिक्स अकाउलिस** (छिंड), **डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस** (बांस) एवं **फ्लेमिन्जिआ सेमीअलाटा** बहुतायत में मिलता है। साल के जंगलों की संरचना निम्नलिखित प्रकार की होती है :—

ऊपरी अवतान : शोरेआ रोबुस्टा (सरई, साल), **प्टेरोकार्पुस मार्सुपिउम** (बीजा), **सीजीजिउम कुमिनी** (जामुन), **टेर्मिनालिआ अलाटा** (साज), **टे० अर्जुना** (अर्जुन), **अडीना कोर्डीफोलिआ** (हल्दू) आदि।

मध्य अवतान : **डोहलेनिआ आउरेआ** (कल्ले), **बाउहीनिआ रासेमोसा** (कटेरी), **बा० रेटुसा** (आम्टी), **कास्सिआ फीस्टुला** (अमलतास), **कोडिआ कालीसिना** (बारंगा), **डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस** (बांस), **मौलिउसा टोमेंटोसा** (कारी), **सेमेकार्पुस अनाकार्डिउम** (भिलवा), **माल्लोटुस फिलीप्पेन्सिस** (तिलवान), **क्लोरोक्सीलॉन स्वीएटेनिआ** (भिरा), **पौलिओस्टिग्मा मालाबारिकुम** (आम्टी) आदि।

वन निम्नरोह :—**फेनिक्स अकाउलिस** (छिन्ड), **फ्लेमिन्जिआ सेमीअलाटा, फ्ले० स्ट्रोबिलीफेरा, फ्ले० नाना, उरारिआ पिक्टा, क्लेरोडेन्ड्रुम सेर्राटुम, डेस्मोडिउम मोटोरिउम, कास्सिआ अब्सुस, अनागाल्लिस पुमिला, टाक्का लिओन्टोपेटालोइडेस, ओप्लिसमेनुस कोम्पोसिटुस, क्रीसोपोगॉन फुल्वुस** आदि।

आरोही पादप : **फनेरा इन्टेग्रीफोलिआ** (मोहलैन), **जिजोफुस रुगोसा** (चूरनी), **स्मीलाक्स जेइलानिका** (रामदातुन), **जास्मीनुम मुल्टीफ्लोरुम, वाल्लारिस सोलानासेआ, अटीलोसिआ वोलुबिलिस, कानावालिआ ग्लाडिआटा** आदि।

आर्किड : **वान्डा टेस्सेल्लाटा, वान्डा टेस्टासेआ, ओबेरोनिआ फाल्कोनेरी, एउलोफिआ नुडा, मालाक्सिस रहीडिई, नेर्वीलिआ अरागोआना, हाबेनारिआ मार्जिनाटा, हा० फुर्सीफेरा** आदि।

साल के जंगलों के बीच-बीच में एवं झरनों व नालों के पास काफी ऊंची-2 घास मिलती हैं, जिनमें **आरुन्डो डोनाक्स, बोथ्रिओक्लोआ इन्टेरमेडिआ, चिओनाक्ने कोएनिगिई, कोइक्स लाक्रिमा-जोबी, हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस, थेमेडा ट्रिआन्ड्रा, थीसानोलाएना-माक्सिमा, साक्कारुम स्पोन्टानेउम, फ्राग्मीटेस कार्का** आदि मुख्य हैं।

जलाशयों में पाये जाने वाले पौधों में **नेलुम्बो नुसीफेरा** (कमल), **नीम्फोइडेस क्रिस्टा-**

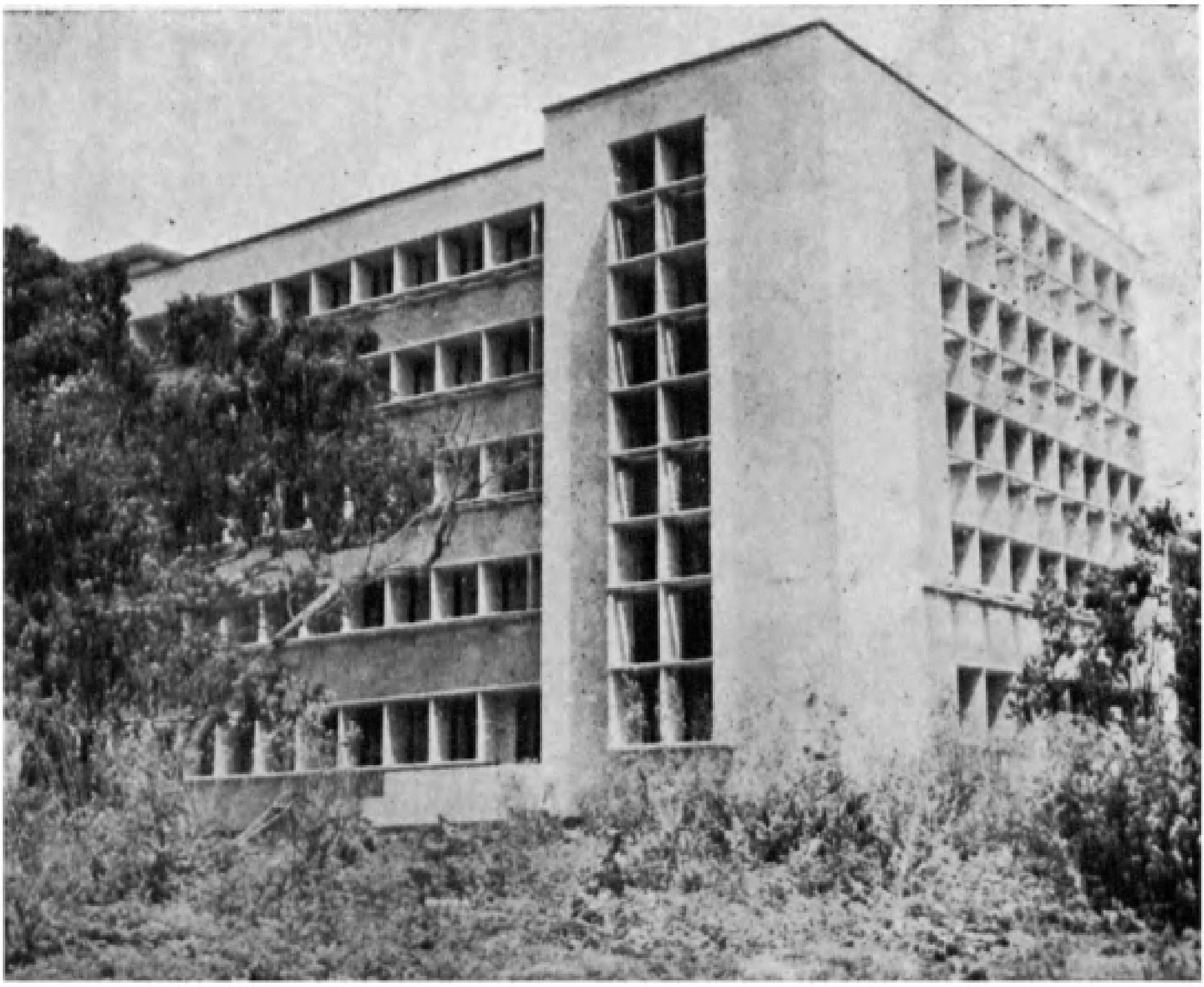

केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय

पौधों का अध्ययन तीन दशा में किया जा सकता है। उस स्थान या वन में जहां पौधा प्राकृतिक रूप से उगता है, वहां जाकर। या वन से लाकर किसी उद्यान या प्रयोगशाला में उगाए हुए पौधे से। प्रायः ही अनेक कारणों से ये दोनों सुविधा उपलब्ध नहीं होती। एक स्थान पर बैठ कर हम अनेक विदेशी पौधों का अध्ययन करना चाहते हैं। पौधों के सुखाए गए या अन्य रूप से सुरक्षित रखे गये नमूनों का अध्ययन किया जाता है। शोध कार्य के लिए सुखाए हुए नमूनों के संग्रह (पादपालय) बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

देखें लेख सं।

भारत में ऐसे कई पादपालय हैं। कलकत्ता के निकट शिवपुर, हावड़ा में भारतीय वनस्पति उद्यान के अंदर एक पांच मंजिली भवन में देश का केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय है। यहां पौधों के पन्द्रह लाख से अधिक नमूने रखे हैं तथा यहीं राष्ट्र का नया फ्लोरा लिखा जा रहा है।

रस्सी के जाल पर एन्टेरोमोर्फा की खेती। ओखा के एल्गल एक्सपेरीमेन्टल स्टेशन ओखा में यह कार्य चल रहा है। इससे क्षय रोग की रोकथाम के लिए एन्टीबायोटिक प्राप्त होने की आशा है।

खाद्य पदार्थ आदि प्राप्त करने के लिए समुद्र में तट के निकट शैवाल की कृषि प्रचलित होती जा रही है। समुद्र में रस्सियों का जाल सा फैलाकर, उन पर शैवाल उगाया जाता है।

देखें लेख सं 20

ला-लिंगडो, माफलांग का पावन लघुवन

हमारे देश में अनेक वन और वृक्ष धार्मिक विश्वास अथवा सांस्कृतिक आस्थाओं के कारण सुरक्षित रह सके हैं। ऐसे वनों को पावन लघु वन (सेक्रेड ग्रोव) कहते हैं।

देश के सब पावन वनों की सूची अभी नहीं बन पाई है किंतु दक्षिण प्रायद्वीप, पूर्वी भारत तथा राजस्थान में उनके कई दृष्टांत मिले हैं।

देखें लेख स 29

सोंढ़र जलाशय : घास चरते हुए बारह सिंहे
(स्वेम्प डियर)

देखें लेख सं 30

बड़े जानवरों, जैसे शेर, बाघ, गेंडा, हिरन आदि की संख्या
बढ़ाने या बरकरार रखने के लिए यह अति आवश्यक
है कि वह स्थान, वन या कहें समूचा परिवेश, जहां
वे जानवर प्राकृतिक रूप से बसते हैं, सुरक्षित
किया जाए । राष्ट्रीय उद्यानों तथा जीवमंडल
आरक्षित क्षेत्रों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य यही है ।

टाम, नीम्फोइडेस ईन्डिका, ऐलेओकारिस डुल्किस, मार्सीलिआ मिनुटा, होड्रिल्ला वेर्टीसिल्लाटा वालिसनेरिआ स्पीरालिस आदि मुख्य हैं। नदियों के किनारे-किनारे प्राय: मान्गीफेरा ईन्डिका (आम), सीजीजिउम कुमिनी (जामुन), टेर्मिनालिआ अर्जुना (अर्जुन), के वृक्ष पाये जाते हैं।

वन्य जीव एवं वन्य जीवों की आहार विधि :—कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में 83 बाघ, 19000 चीतल, सांभर, तेंदुए, भालू, जंगली सुअर, 'बार्किंग डिअर', जंगली भैंसे ('गौर'), लंगूर, एवं बारहसिंघे बहुतायत में मिलते हैं। बाघ एवं तेंदुए मांसभक्षी जीव हैं जो विभिन्न शाकभक्षी जीवों मुख्यतया चीतलों का शिकार करके अपनी उदर पूर्ति करते हैं। अतः इस उद्यान में बाघों की संख्या बढ़ाने के उद्देश्य को पूरा करने के लिए उसके द्वारा शिकार किए जाने वाले शाकभक्षी जीवों (चीतल, सांभर, हिरण, गौर, लंगूर आदि) की संख्या बढाने का भी लक्ष्य रखा गया है। इन शाकभक्षी जीवों की आहारपूर्ति वहां के घास के मैदानों, साल के वृक्षों एवं नवपादपों, बांस, महुआ, तेन्दू, सेमल, आंवला, जामुन, जंगली आम, लसोडा तथा कई विभिन्न वनस्पतियों द्वारा होती है जो कान्हा के साल एवं पर्णपाती वनों में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। उदाहरण के तौर पर चीतल साल की पत्तियां, फूल एवं नवपादप तथा फ्लेमिन्जिआ सेमीअलाटा की पत्तियां काफी खाते हैं। भालू को महुआ के फूल, तेन्दू फल एवं जंगली आम बहुत पसन्द हैं। साँभर को घास, शाक, क्षुप, नवपादप और बहुत सी वनस्पतियां पसन्द हैं जो यहां काफी मात्रा में वनों में मिल जाते हैं। बारहसिंघों को जलाशयों में कमल की पत्तियां खाते हुए देखा जा सकता है। इस प्रकार कान्हा उद्यान में मांसभक्षी व शाकभक्षी जीवों में संतुलन बना हुआ है और दोनों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

कान्हा राष्ट्रीय उद्यान में बाघ अपने आप को बांस के जंगलों, ऊंची-ऊंची घास वाले मैदानों एवं घने जंगलों में एकान्त एवं सुरक्षित महसूस करता है। इस उद्यान को यदि बाघों के निवास का स्वर्ग कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसके साथ ही यहां विभिन्न प्रकार की वनस्पति सम्पदा मौजूद है इसलिए यह उद्यान वनस्पति विज्ञान के छात्रों के शोध कार्य के लिए उचित स्थल है।

31. कौरबेट राष्ट्रीय उद्यान और उसकी वनस्पति

पूरन चन्द पन्त

कौरबेट राष्ट्रीय उद्यान उत्तर प्रदेश में हिमालय की तलहटी पर भाबर क्षेत्र में स्थित है। इसकी स्थापना 1935 में की गई थी। सर्वप्रथम इसे 'हैली नेशनल पार्क' और फिर 'रामगंगा नेशनल पार्क' नाम दिया गया। वर्तमान नाम कुमाऊं के प्रसिद्ध शिकारी एवं वन्य जन्तुओं के तत्कालीन प्रमुख नायक - जिम कौरबेट की स्मृति में रखा गया है। 525.8 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल का यह पार्क पौड़ी एवं नैनीताल जिलों के अन्तर्गत रामगंगा नदी की पतली दून घाटी और शिवालिक पहाड़ियों पर 900-1500 मीटर के बीच भाबर क्षेत्र में दिल्ली-रानी खेत राजमार्ग में 29° 13′ 30″ और 29° 35′ 15″ उत्तर एवं 78° 46′ और 79° 33′ पूर्व में स्थित है।

कौरबेट उद्यान के प्रवेश द्वार धनगढ़ी से आने के पश्चात् आगन्तुक का स्वागत प्रमुखत: साल वृक्ष करते हैं। उद्यान की वनस्पति पर्णपाती उष्ण एवं उपोष्ण मिश्रित वर्ग की है।

सम्पूर्ण वनस्पति तीन वितानों में देखी जा सकती है शीर्ष, मध्य व निम्न।

1. शीर्ष वितान में साल (**शोरेआ रोबुस्टा**) का प्रमुख स्थान है। साल के बाद बाकली (**अनोगेइस्सुस लाटीफोलिआ**) का बाहुल्य है। अन्य वृक्ष हैं—सैन या साज (**टेर्मिनालिआ अलाटा**) हर्र (**टे० चेबुला**), हल्दू (**अडीना कोर्डीफोलिआ**), काला सीरिस (**आल्बीजिआ ओडोराटीस्सीमा**) आदि। कहीं-कहीं चीड़ (**पीनुस राक्सबर्घिई**) के घने वन भी देखने को मिलते हैं।

2 मध्य वितान में मझोले वृक्ष, क्षुप व लतायें हैं। इनमें से कुछ निम्न हैं।

वृक्ष : धानन (**डेस्मोडिउम ग्रौसेइनेन्से**), रौली (**माल्लोटुस फिलीप्पेन्सिस**), इन्द्र जौ (**होलोर्‌हेना आन्टीडिसेंटेरिका**), चमरोर (**एह्‌रेटिआ लाएवीस**) एवं बेल (**आएग्ले मार्मेलोस**) आदि।

क्षुप : बांसा (**आडाटोडा जेइलानिका**), बिंदा (**कोलेब्रूकेआ ओप्पोसिटीफोलिआ**), कारुनीय (**मुर्राया कोएनिगिई**), **आर्डीसिआ सोलानासेआ**, मरोड़ फली (**हेलीक्टेरेस इसोरा**) घौंट (**जिजीफुस जीलोपीरुस**)।

आरोही एवं लताएँ : **क्लेमाटीस गोउरिआना**, उजलबेल (**पोराना पानीकुलाटा**), सेलास्ट्रुस **पानीकुलाटुस**, **आम्पेलोसीस्सुस डीवारीकाटा**, **डिओस्कोरेआ अन्गुइना**, **इपोमोएआ पुर्पुरेआ** एवं **बाउहीनिआ वाहलिई** ।

कुछ स्थानों पर वनस्पति अपनी विशेष छटा से सहज ही पहचानी जा सकती है । जैसे—ढिकाला के उत्तर-पूर्व में रामगंगा नदी के प्रवाह क्षेत्र में फूलई नामक स्थान शीशम (**डालबेर्जिआ सिस्सू**) की सामूहिक उपज, धनगढ़ी नाला, पतैली चौड पटेर पानी क्षेत्र में **अकानिआ काटेचू** के छोटे-छोटे काँटेदार वृक्ष, बिजरानी सुनतान खंड के ठन्डे नम स्थानों पर जामुन (**सीजीजिउम कूमिनी**), मैलानी क्षेत्र में अप्रेल-मई में तेन्दू (**डिओस्पीरॉस एक्सस्कुल्प्टा**) के पके पीले फल सभी का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं । ये फल भालू का प्रिय भोजन हैं । आम के वृक्षों के झुरमुट खिलमोडिया व ढिकाला-खिनानौली क्षेत्र में एवं जामिर नीबू (**सीट्रुस मेडिका**) ढिकाला-खिनानौली व बिजरानी के साल प्रधान वन में अक्सर दिखाई पड़ते हैं ।

अन्य लोकप्रिय वृक्षों में सेमल (**बोम्बाक्स सेइबा**), ढाक (**बुटेआ मोनोस्पेर्मा**), अमलतास (**कास्सिआ फीस्टुला**), आंवला (**फीलान्थुस एम्ब्लिका**), कचनार (**बाउहीनिआ वारीएगाटा**) व हर्रसिंगार (**निक्टान्थेस आर्बोर-ट्रिस्टिस**) होते हैं ।

3. **कौरबेट** उद्यान में अनेकों शाकीय पौधे भी पाये जाते हैं जो निम्नवितान में उगते हैं । शाकीय वर्ग में सर्वप्रथम स्थान पोआसी कुल का है । इस कुल के सदस्य संपूर्ण क्षेत्र में फैले है । कई स्थानों पर इनका बाहुल्य है । कहीं-कहीं बड़े क्षेत्र में केवल घास का ही मैदान हैं : स्थानीय भाषा में ऐसे क्षेत्र चौड़ नाम से जाने जाते हैं । इनमें ढिकाला का चौड़ सबसे बड़ा है। यह 2500 एकड़ में है । इसी में दर्शकों को शेर दिखाने की व्यवस्था, कौरबेट टाइगर प्रोजेक्ट द्वारा की जाती है ।

चौड़ों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी पोआसी कुल के पौधे पाये जाते हैं, जैसे— दूब, कुश, भाबड़ (**एउलालिओप्सिस बीनाटा**) । कुछ सदृढ़ तनों वाली घासें भी पाई जाती हैं । इनमें कुमरिया (**हेटेरोपोगोन कोन्टोर्टुस**), **थेमेडा अरुन्डीनासेआ**, नरकुल (**अरुन्डो डोनाक्स**) टाइगर ग्रास (**थीसानोलाएना माक्सिमा**) एवं खस-खस (**वेटीवेरिआ जीजानीओइडेस**) आदि प्रमुख हैं । पोआसी का सबसे बलिष्ठ सदस्य बाँस (**डेन्ड्रोकालामुस स्ट्रिक्टुस**) है जो धनगढ़ी नाला डबरिया चौड़-कुमार सोत और हाथी पानी, कांडा खंडों में प्रचुरता से उगता है ।

पोआसी के बाद फाबासी कुल के सदस्यों का स्थान है । इसके कुछ सदस्य इस प्रकार हैं—**क्रोटालारिआ मेडिकागिनेआ, इंडीगोफेरा लिनीफोलिआ, ई० लीन्नाएई, डेस्मोडिउम ट्रीफ्लोरुम** ।

तृतीय स्थान आस्टेरासी कुल का है । इस कुल के कुछ सामान्य सदस्य **अनाफालिस बुसुआ, आर्टेमीसिआ स्कोपारिआ, एक्लिप्टा प्रोस्ट्राटा** आदि हैं ।

कुछ स्थानों पर आर्किडेसी कुल के उपरिरोही पौधे मिलते हैं। जैसे सुल्तान के निकट **शोरेआ रोबुस्टा** पर पीले फूल वाला **वान्डा टेस्टासेआ** मई से जुलाई के महीनों में उगता हुआ देखा जा सकता है। इसी वर्ग में तलवारनुमा छोटी-छोटी मांसल पत्तियों व सूक्ष्म फूलों वाला **ओबेरोनिआ फाल्कोनेरी** भी पाया जाता है।

कई नम व छायादार स्थानों पर दर्णांग अपनी विशिष्ट पिच्छाकार पत्तियों में वन को सुशोभित करते हैं। इनमें **अथीरिउम जापोनीकुम, डीप्लाजिउम एस्कुलेन्टुम, हीपोडेमाटीउम क्रेनाटुम, ड्रीओप्टेरीस कॉचलेआटा, ओफिओग्लोस्सुम रेटीकुलाटुम** आदि प्रमुख हैं।

इस प्रकार 100 से अधिक कुलों की 600 से अधिक पौधों की जातियां कौरबेट उद्यान में पाई जाती हैं।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, उत्तरीय परिमंडल द्वारा विगत वर्षों में कौरबेट उद्यान के सर्वेक्षण से ऐसे पौधों की जातियां भी प्राप्त हुई हैं जो इस उद्यान में बहुत कम संख्या में पाई गई, अथवा कुछ के नमूने भी भारत के पादपालयों में बहुत ही सीमित संख्या में हैं। **फिमिआना फुलगेंस, इन्डीगोफेरा हामील्टोनीइ, डीडीमोकार्पुस पीग्माएआ, सिरपुस टेर्नाटुस, वालिचिआ डेन्सीफ्लोरा, प्सीलोटुम नुडुम** आदि ऐसे ही कुछ पौधे हैं।

32. भारत के विलुप्त प्राय पौधे

अमरसिंह चौहान

हमारा देश 'ग्रीनगोल्ड' में बहुत धनी एवं सम्पन्न है। कम व्यक्तियों को यह ज्ञात है कि भारत में लगभग 15000 किस्म के पुष्पी पौधे पाये जाते हैं जो अधिकांश देशों की तुलना में बहुत अधिक हैं। इनमें से लगभग 5000 जातियां ऐसी हैं जो केवल भारत में ही पायी जाती हैं; भारत की सीमा के बाहर, संसार भर में कहीं नहीं। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे पौधे भारत में हैं जो कि दूर-दूर के देशों, जैसे अमरीका, अफ्रीका तथा जापान आदि में पाये जाते हैं। बहुत बड़ी संख्या ऐसी वनस्पति की है जो कि हमारे देश के निकटवर्ती पड़ोसी देशों में पायी जाती हैं। कितनी बहुमूल्य निधि है यह हमारी भूमि, जल तथा वायु की प्राकृतिक स्वच्छता को स्थायी रखने में जिसका महत्वपूर्ण योगदान है।

हिमालय की चोटियां तथा घाटियां जो कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, सिक्किम तथा अरुणाचल प्रदेश तक फैली हुई हैं : बहुमूल्य औषधीय पौधों, बहुमूल्य लकड़ी वाले वृक्ष तथा सुन्दर पुष्पी पौधे जैसे **आर्किड**, **प्रिमुला**, **र्‌होडोडेन्ड्रोन** एवं अन्य विचित्र प्रकार के पौधों के लिए **प्रख्यात** हैं। इसी प्रकार अनेक उपयोगी पौधों की जातियां बंगाल, उड़ीसा व मध्य प्रदेश के वनों, तथा पश्चिमी घाट आदि में भी पायी जाती हैं। आयुर्वेद तथा यूनानी में काम आने वाली सैकड़ों जड़ी बूटियाँ यहां से एकत्रित की जाती हैं। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से देश में औद्योगिक एवं आर्थिक विकास से पर्वतीय क्षेत्रों के वन कटने, नई सड़कें व पुल आदि के बनने एवं जल विद्युत परियोजना, झूम-खेती तथा अन्य कारणों से कुछ पौधों के वितरण क्षेत्र सीमित होते जा रहे हैं। कहीं-कहीं तो वनों की ऐसी दुर्दशा है कि वहां केवल कुछ झाड़ियों तथा घास के अतिरिक्त एक भी बड़ा वृक्ष देखने को नहीं मिलता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि संसार में लगभग तीन लाख जाति के पुष्पी पौधे पाये जाते हैं। कुछ का वितरण-क्षेत्र अनेक महाद्वीपों व देशों में फैला है, कुछ जातियां सीमित क्षेत्रों में उगती हैं और कभी-कभी यह सीमा एक अत्यन्त छोटा क्षेत्र जैसे एक प्रांत, जिला या मात्र एक पर्वत या घाटी भी हो सकती है। बालसम, **इम्पाटिएन्स खासिआना, इ० आकुमिनाटा, इ० लाएविगाटा, आग्लाइआ खासिआना, आकोनीटुम लेथाले, कोप्टिस टीटा** (मिश्मी तीता), **र्‌होडोडेन्ड्रोन सान्तापाउई**, आदि केवल उत्तर पूर्वी भारत में, **आकोनीटुम लुरिडुम, एडलोफिया ओब्टूसा, गालेआरिस स्ट्राचेयी, कालामाग्रोस्टिस स्टोलिज्काई, एउलालिआ स्टेन्टोनिई, फेस्टुका लैबिन्गेई, पुक्सीनेल्लिआ थॉम्सोनिई** आदि उत्तर पश्चिम एवं उत्तरी भारत में, **हीड्रिल्ला पोलिस्पेर्मा, सीडा स्यागिई** आदि राजस्थान तथा कच्छ की खाड़ी और **इम्पाटिएन्स रिबुली-फोला, इ० विरीडीफ्लोरा, आग्लाइआ कनारेन्सिस, सोएलोगिने आन्गुस्टीफोलिआ, एरिआ आल्बीफ्लोरा** व **सीकास बेड्डोमेई** आदि जातियाँ केवल दक्षिण भारत में ही पाई जाती हैं।

पिछले कुछ वर्षों में वनस्पति सर्वेक्षण से यह देखा गया है कि पौधों की कुछ जातियां लुप्त प्राय हैं और अनेक का अस्तित्व खतरे में है। इनमें से 2000 के लगभग जातियाँ ऐसी हैं जो अत्यन्त संकट ग्रस्त हैं। कुछ जातियां तो अनेक वर्षों की खोज के उपरान्त भी नहीं मिल पायी हैं। ऐसा अनुमान है कि कुछ जातियां अवश्य ही इस धरती से विलुप्त हो चुकी हैं। औषधीय पौधों के संकटग्रस्त या लुप्त होने का मुख्य कारण उनकी कृषि न होना तथा समूची मांग स्वतः उगने वाले पौधों से पूरी करने की चेष्टा में पौधों की संख्या व क्षेत्रों का कम होता जाना है। अनेक ऐसे पौधे जैसे **अकोनीटुम** की अधिकांश जातियाँ, **कोप्टिस टीटा**, **बेरबेरिस खासिआना**, **बे० मीक्रोपेटाला**, **बे० प्राएसिपुस**, **साउस्सुरेआ**, **पोडोफील्लुम**, **नार्डोस्टाकिस** आदि ऐसे दृष्टांत हैं जिनकी गणना अब संकटग्रस्त या लुप्त प्राय पौधों में की जाती है।

वनों के कटने के पश्चात् विनाश का जो क्रम आरम्भ होता है उससे सामान्य व्यक्ति भी परिचित है। वनों के विनाश का कुपरिणाम जानते हुए भी वे अनेक कारणों से वृक्षों और वनों को नष्ट करने पर बाध्य होते हैं। वन-विभाग भी प्राकृतिक वनों को प्रायः काटकर उनके स्थान पर **एउकालिप्टुस** या झाऊ के जल्दी उगने वाले वृक्ष लगाता है। भूमि तथा जल व प्राकृतिक वनस्पति और जीव जन्तुओं की रक्षा करने में प्रायः ये वन उतने सक्षम नहीं होते। कहीं-कहीं पर इस प्रकार के वनों में कई विदेशी (एक्जोटिक) पौधे जैसे **एउपाटोरिउम**, **पार्थेनिउम**, **मिकानिआ** तथा **लान्टाना** आदि का अधिक विस्तार हो जाता है और देशीय पौधे ठीक से नहीं उग पाते जिसके कारण हमारे देश के बहुत से पौधे संकटग्रस्त हैं। इसके अतिरिक्त पुष्पी पौधों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण कुल जिसके फूल सुन्दर व मनमोहक होते हैं— आर्किड कुल है। इस कुल की लगभग 1000 जातियाँ हमारे देश में पाई जाती हैं। इस कुल की अनेक शोभनीय जातियां वृक्षों के ऊपर तनों और शाखाओं पर उगते हैं। उनमें से कुछ थोड़े से क्षेत्र में पाये जाते हैं। कभी-कभी पुराने तथा बहुत बड़े वृक्षों पर इनकी कई एक जातियाँ एक साथ उग आती हैं। अरुणाचल प्रदेश के नामडाफा बायोस्फेयर-रिजर्व, में एक ऐसे वृक्ष पर लगभग 30 विभिन्न आर्किड की जातियाँ देखी गयीं। जब इस प्रकार के वन तथा वृक्ष काट दिये जाते हैं, तो उनके साथ ही आर्किड, मॉस, लिवरवर्ट तथा लाइकेन की बहुत सारी जातियाँ भी सर्वदा के लिये विलुप्त हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त भारत में भी आर्किड के पौधों का कुछ व्यापार है। किन्तु प्रायः निर्यात के लिये पौधों को वनों से ही एकत्रित किया जाता है। जिसके फलस्वरूप अनेक सुन्दर फूल वाली जातियाँ अब वनों में भी ढूढ़ने से नहीं मिलती हैं। **डेन्ड्रोबिउम**, **बुल्बोफील्लुम**, **वान्डा काएरुलेआ**, **पाफिओपेडीलुम** (लेडी स्लीपर), **सोएलोगिने** तथा **सिम्बीडिउम** आदि की कई एक जातियाँ लुप्त प्राय या संकट ग्रस्त हो गई हैं।

इसी प्रकार से अनेक पौधे जैसे **नीम्फाएआ टेट्रागोना** (सफेद लिली); **लिलिउम माक्लीनिआए**, (सिरोही लिली), **मान्टीसिआ स्पाथुलाटा**, **मा० साल्टाटोरिआ**, **आप्रोस्टिस वार्डिई**, **फेस्टुका रुबा**, **नेपेन्थेस खासिआना**, (पिचरप्लान्ट) **मिट्रास्टेमोन यामोमोटोइ**, **साप्रिआ हिमालयाना**, **र्‌होफालोफनेमिस फाल्लोइडेस**, **र्‌होडोडेन्ड्रॉन नुटालिई**, **आल्ड्रोवान्डा**, **अकोनीटुम सुरिडुम**, **ईरिस कुमिई**, **सीम्बोपोगॉन फलेक्सुओसुस** आदि पौधे भी लुप्त प्राय या संकट-ग्रस्त हैं।

लुप्त प्राय तथा संकट ग्रस्त पौधों के अध्ययन और संरक्षण पर वनस्पति सर्वेक्षण विभाग कार्य कर रहा है और सैकड़ों प्रकार के संकटग्रस्त पौधे उद्यानों या विशेष प्रकार की परीक्षण शालाओं या वनों, जीन सेन्चुरी, बायोस्फेयर रिजर्व (जीव मण्डल-निचय) में उगाये जा रहे हैं तथा ऐसे संकटग्रस्त पौधों को जो अपने प्राकृतिक स्थानों पर विलुप्त होने वाले थे या हैं किसी न किसी प्रकार बचाने का प्रयत्न किया जा रहा है। पिछले चार वर्षों से बहुत से वैज्ञानिक एक प्रोजेक्ट "प्रोजेक्ट आन स्टडी सर्वे एण्ड कन्जर्वेशन आफ एनडेन्जर्ड स्पिसीज ऑफ फ्लोरा"[1] में ऐसे विलुप्त प्राय तथा संकटग्रस्त पौधों तथा उनके संरक्षण के लिए आवश्यक कार्य कर रहे हैं। वनस्पति शास्त्र पर साहित्य तथा पादपालयों (हरबेरियम) में रखे नमूनों के अध्ययन से एवं वनों में हाल की खोज से ऐसा प्रतीत होता है कि सैकड़ों जातियों के एक मात्र नमूने उनके सर्वप्रथम एकत्रित नमूने (जिन्हें प्ररूप या टाइप कहते हैं) ही उपलब्ध हैं। एक बार के बाद वे पौधे फिर एकत्रित ही नहीं किये गये अतः विलुप्त प्राय या संकटग्रस्त हैं। इन पौधों की एक विस्तृत सूची तैयार की जा रही है जिससे उनके सम्बन्ध में अध्ययन किया जा सके। सर्वप्रथम जैन एवं शास्त्री[2,3] ने ऐसी जातियों का विवरण तैयार किया।

हमारे देश के उष्ण कटिबन्धी सदाहरित वनों का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण है। किस जाति से कोई उपयोगी तत्व कब प्राप्त हो जायेगा, कौन जाति हमारी फसलों की उन्नति या उसमें रोगों की रोकथाम में काम आयेगी या उसके उपयोगी गुण संकरण में लाभदायक होंगे तथा इनमें धान, मक्का, नींबू, गन्ना, केला तथा पीपर आदि की सैकड़ों जंगली जातियाँ उपलब्ध हैं, जिनका मानव जीवन से बहुत महत्वपूर्ण एवं घनिष्ट सम्बन्ध है। अब सबसे जटिल समस्या है कि विरले तथा लुप्त प्राय पौधों की सुरक्षा किस प्रकार की जाय।

सर्वप्रथम देश के सभी स्थानों की वनस्पति का अध्ययन किया जाय तथा इस प्रकार के लुप्त प्राय और संकटग्रस्त पौधों की एक सम्पूर्ण सूची बनायी जाय। इस कार्य को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग कर रहा है और लगभग 75 प्रतिशत कार्य पूरा हो गया है। आशा है कि एक या दो वर्ष में यह कार्य पूरा हो जायेगा। इस प्रकार की वनस्पतियों का संरक्षण किया जाना अति आवश्यक है। हमारे देश के लुप्त प्राय तथा संकटग्रस्त पौधों व उनके संरक्षण के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य हुआ है और इस सम्बन्ध में बहुत सारे लेख तथा कई एक गोष्ठी व सभायें आयोजित की हैं जिससे स्पष्टतः बहुत लाभ हुआ है तथा जागरूकता आ गई है। पिछले 4,5 वर्षों से देखा गया है कि विरले या लुप्त प्राय जातियों के संरक्षण के कार्य में वनस्पति उद्यानों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के उद्यान जो शिलांग, बारापानी, पौड़ी (गढ़वाल), पूना, एरकाड (तमिलनाडू), पोर्टब्लेयर, इलाहाबाद और हावड़ा (प० बंगाल) में स्थापित है, इस कार्य को पूरा करने की चेष्टा कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त

---

1. इस प्रोजेक्ट के मुख्य संचालक सुधांशु कुमार जैन, निदेशक हैं।
2. जैन एस० के० एवं ए० आर० के० शास्त्री (1980), **थ्रेटेण्ड प्लांट्स आफ इण्डिया—ए स्टेट आफ द आर्ट रिपोर्ट**—नई दिल्ली।
3. ——————— एवं———————————— (1983), **मटेरियल्स फार ए केटालॉग आफ थ्रेटेण्ड प्लांट्स आफ इण्डिया**—हावड़ा।

जीवित पौधों के छोटे संग्रहालय भी कुछ स्थानों जैसे शिलांग, कोयम्बटूर, देहरादून और हावड़ा में स्थापित हो चुके हैं या हो रहे हैं जिनमें केवल इसी प्रकार के लुप्तप्राय या संकट ग्रस्त पौधों का ही संरक्षण किया जा रहा है। नैशनल बोटेनिकल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, लखनऊ, फोरेस्ट रिसर्च इन्स्टीच्यूट देहरादून के वनस्पति उद्यान भी इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे वनों का जहाँ औषधीय तथा अन्य विरले पौधों का बाहुल्य है, विशेष रूप से और सम्पूर्ण संरक्षण किया जाना अति आवश्यक है। इस दिशा में शासकीय तथा गैर शासकीय स्तरों पर कुछ कार्य हो रहा है, किन्तु समस्या का विशाल रूप देखते हुए यह अभी अपर्याप्त है। आज इस बात की आवश्यकता है कि कई एक स्थानीय वनस्पति उद्यानों की स्थापना की जाय तथा विश्व विद्यालय व महाविद्यालय भी अपने वनस्पति उद्यानों में ऐसे विरले व लुप्तप्राय पौधों के संरक्षण को प्राथमिकता दें जो अपने प्राकृतिक स्थानों में संकट ग्रस्त हैं या उन जातियों के प्राकृतिक उत्पत्ति स्थान नष्ट होने की स्थिति में हैं। जिन स्थानों में औषधीय पौधों के ऊपर शोधकार्य हो रहा है —जैसे जम्मू, जोरहाट, लखनऊ व कलकत्ता आदि, उपरोक्त कार्य को अधिक प्रोत्साहन दिया जाये तथा अन्य स्थानों पर भी इस प्रकार का शोध कार्य आरम्भ हो जिससे ऐसे पौधों की अधिक खेती का जा सके।

इस प्रकार के लुप्तप्राय या संकटग्रस्त पौधों की संख्या भी अन्य आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों जैसे 'सीड कल्चर', टिसू कल्चर आदि से बढ़ाई जानी चाहिए व बीजों को वातानुकूलित परिस्थिति में रखकर लम्बे समय तक उनकी क्षमता बनाये रखने की भी चेष्टा की जानी चाहिए। हमें अपने देश को समृद्धशाली बनाने एवं स्वच्छ पर्यावरण के लिए, जो जातियाँ इस पृथ्वी पर जीवित हैं और हमारी सहवासी हैं, उन्हें फलने-फूलने तथा स्वस्थ रखने की दिशा में कार्य करते रहना होगा। इसमें हमारा, तथा हमारे देश का ही हित नहीं, वरन् एक मानवीय कर्त्तव्य भी है।

आभार

लेखक डा० सुधांशु कुमार जैन, निदेशक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण, हावड़ा का विशेष आभारी है, उनके अनेक प्रकाशित लेखों से सहायता ली गई है।

शोरेआ रोबुस्टा वन

फुलई में सघन वेन्डलान्डिआ हेनेइ

देखें लेख सं 31

बाउहीनिग्रा वाहलिई

कोलेब्रूकेग्रा ग्रोप्पोसिटीफोलिग्रा

देखें लेख सं 31

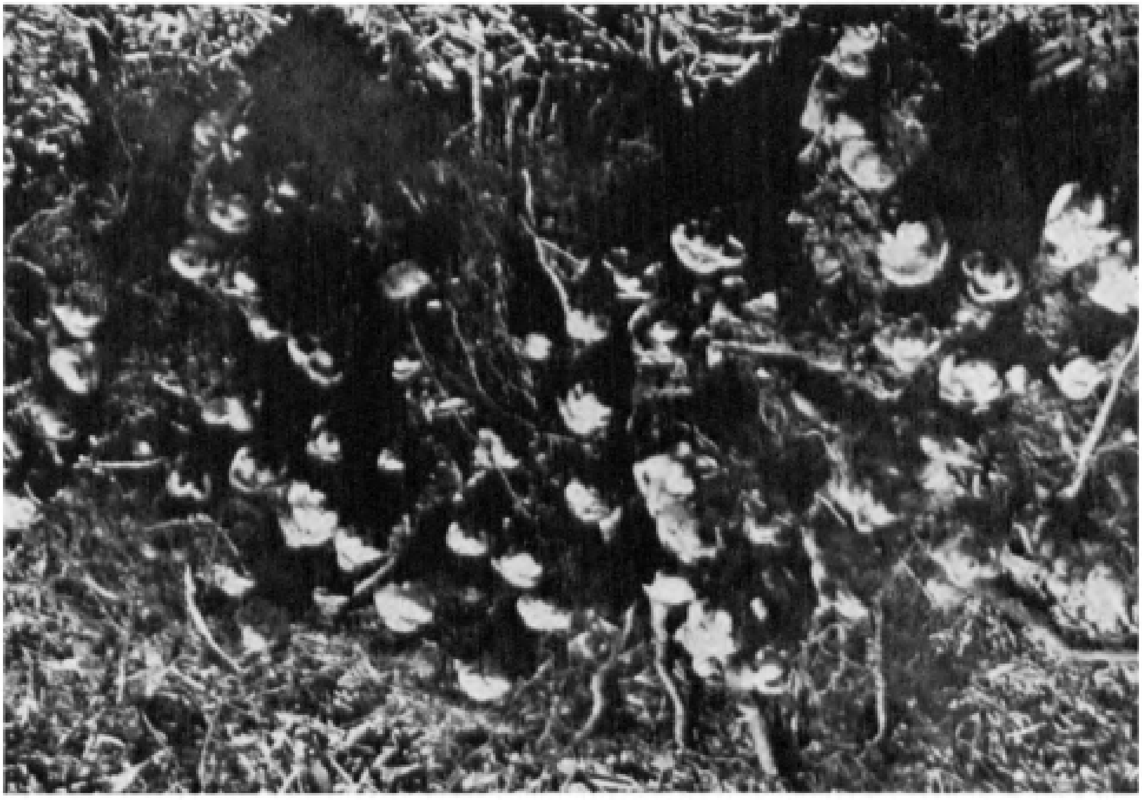

मिट्रास्टेमोन यामामोटोई

साप्रिया हिमालयाना

देखें लेख सं 32

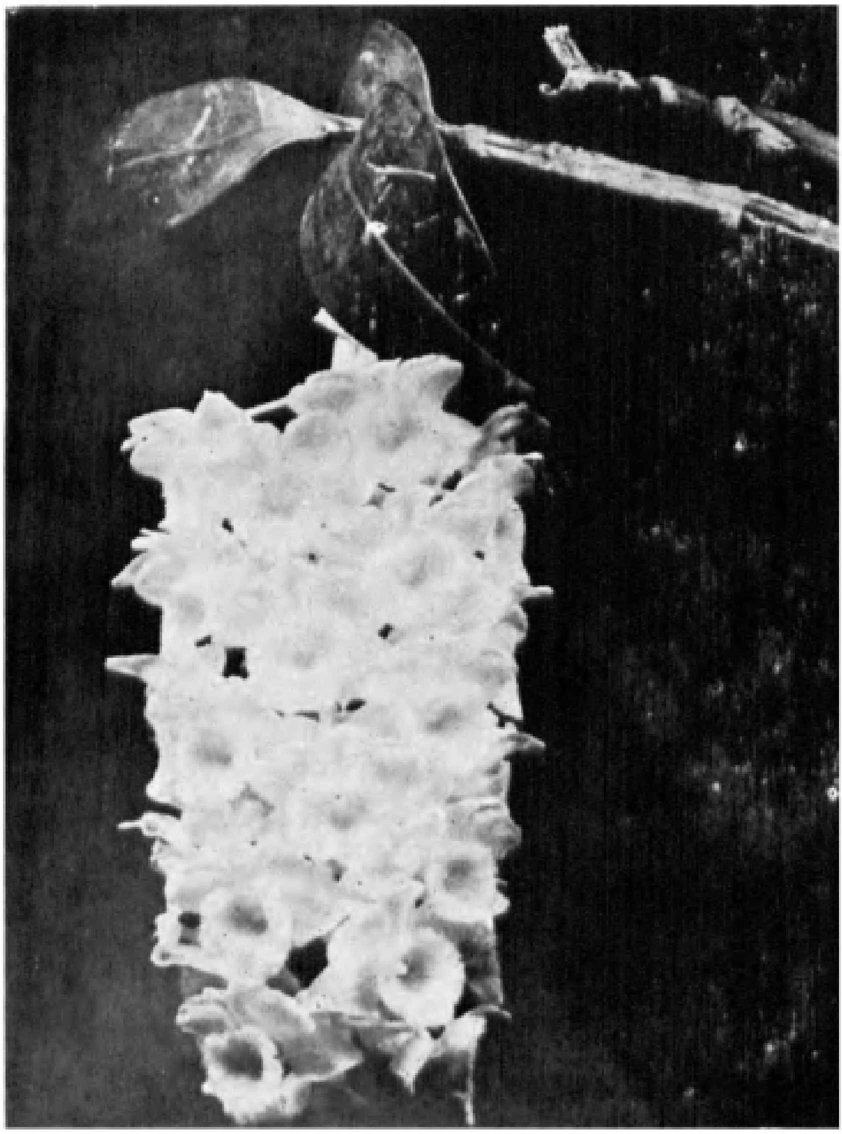

डेन्ड्रोबिउम डेन्सीफ्लोरुम

देखें लेख सं 32

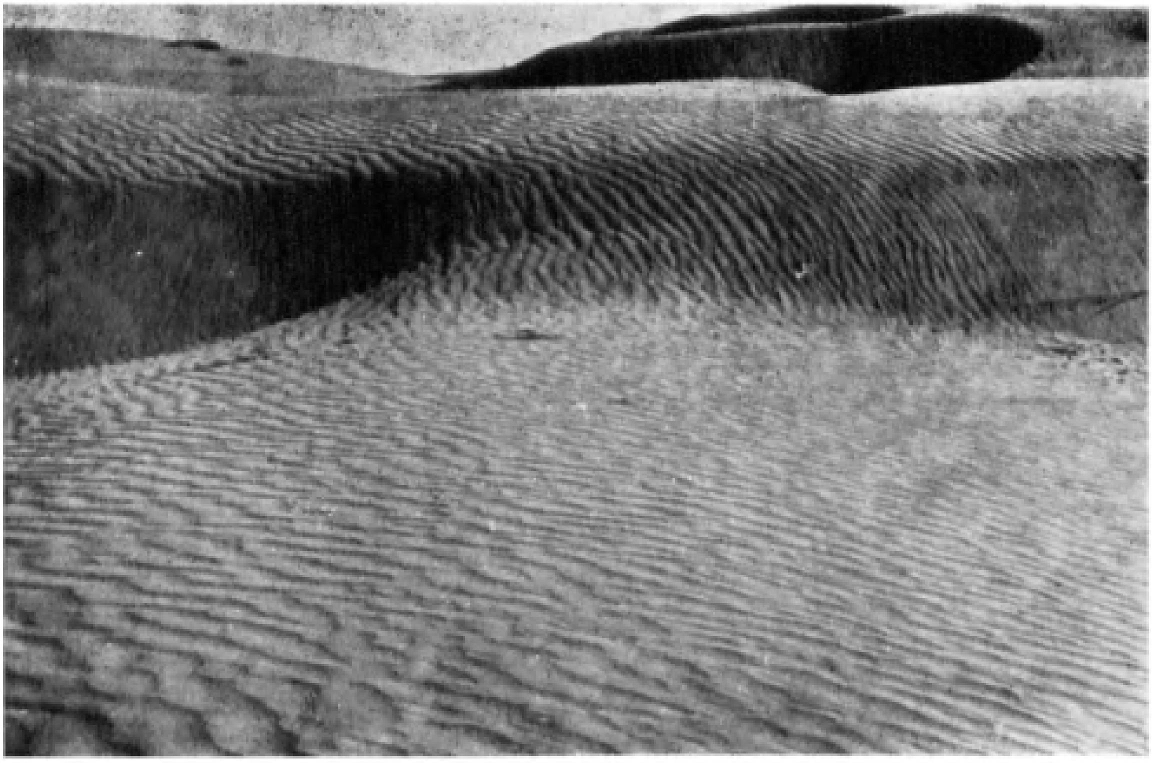

मरुस्थल के अस्थिर रेतीले टीबे ।

आकलवुड फॉसिल पार्क में पाये जाने वाले अनावृत बीजी वृक्षों के जीवाश्म

देखें लेख सं 34

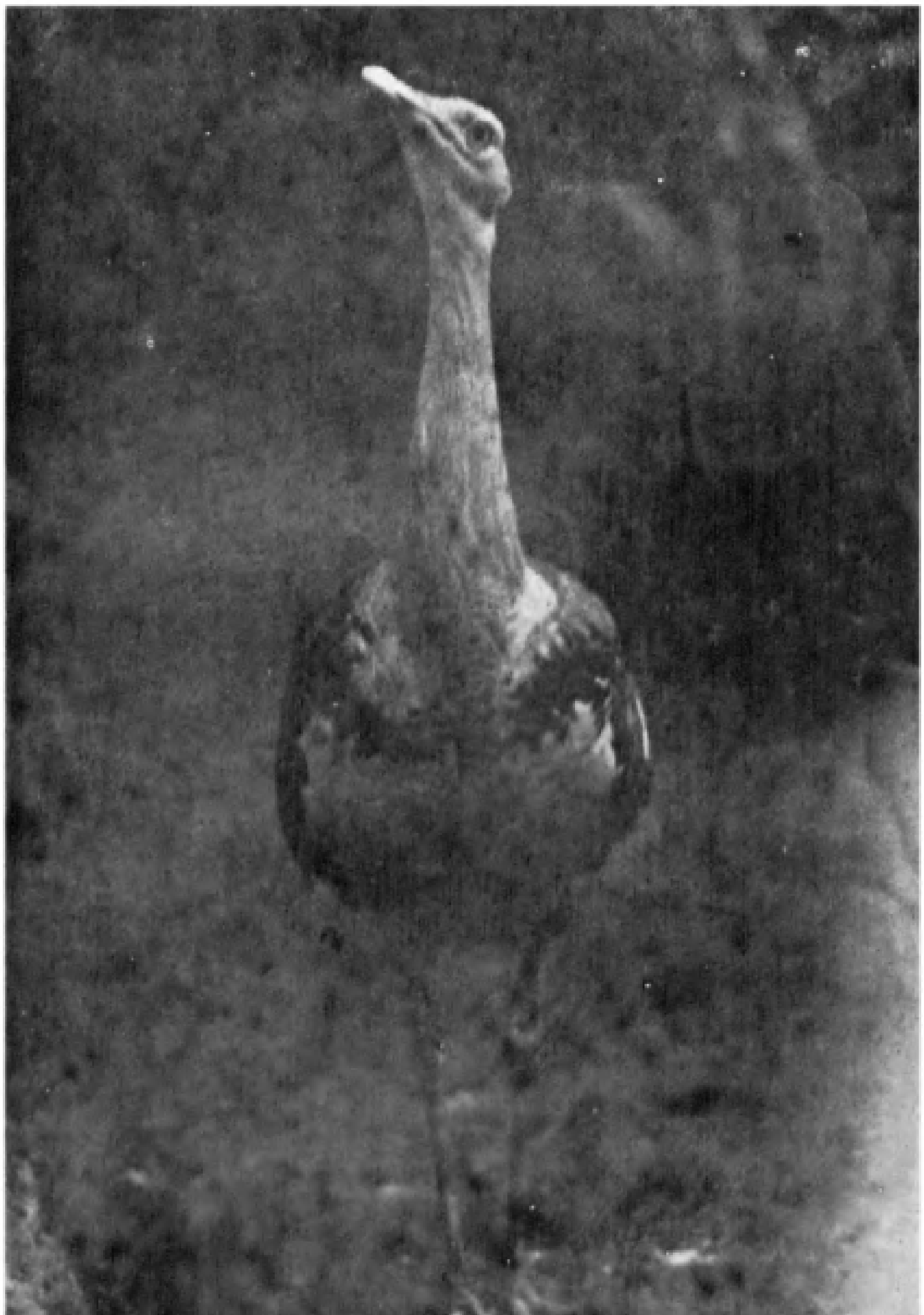

लुप्त प्राय पक्षी : गोडावण

देखें लेख सं 34

पौष्टिक तत्वों से भरपूर सेंवण घास।

तुम्बा

देखें लेख सं 34

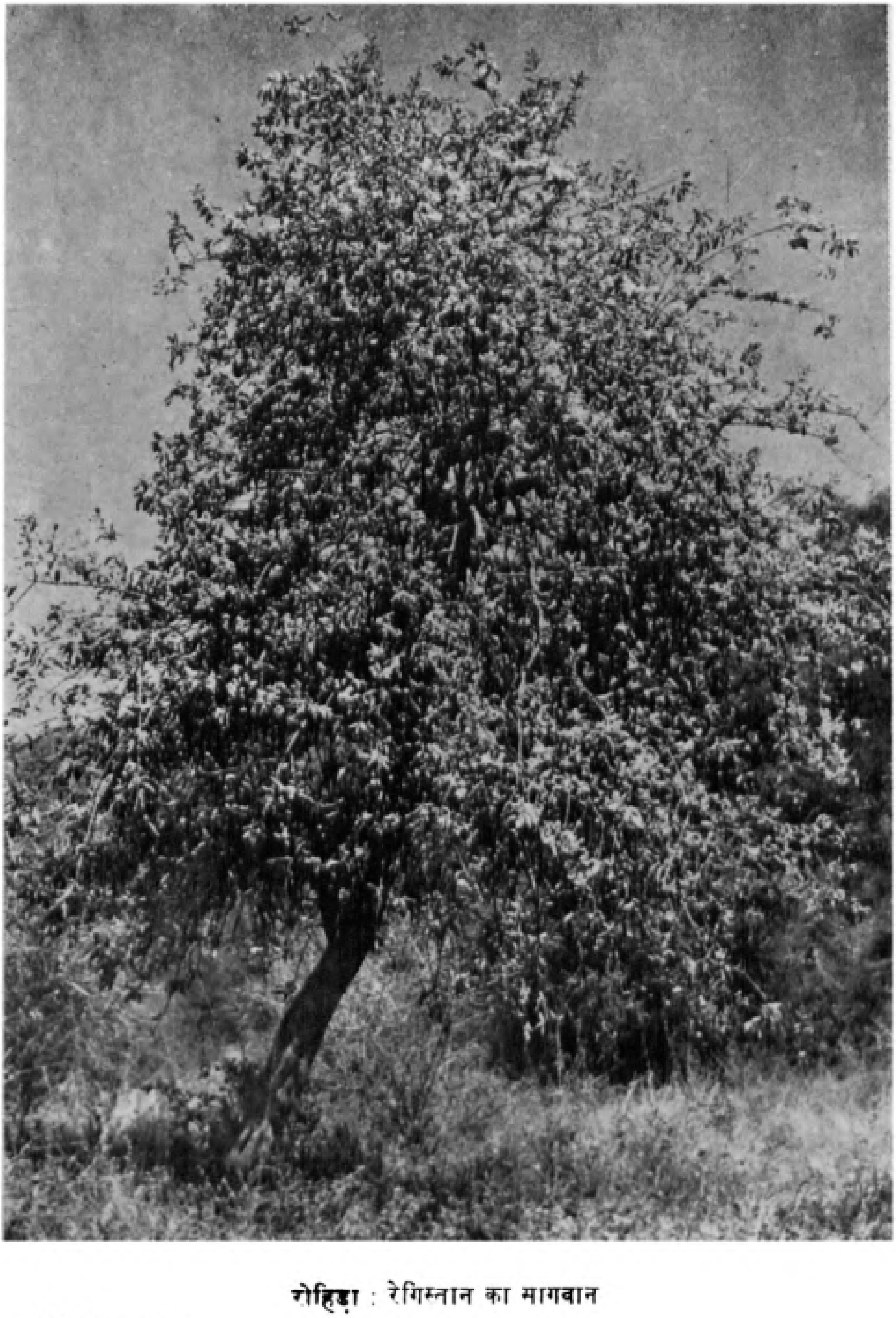

गोहिड़ा : रेगिस्तान का सागवान

देखें लेख सं 34

33. भारत के सीमित क्षेत्री पौधे

अजय मेहरोत्रा

देश की नैसर्गिक संपदा में वनों का महत्वपूर्ण योगदान है। वैज्ञानिक अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि यहां पुष्पी पौधों की करीब 15,000 जातियां पाई जाती हैं जो संसार के अधिकांश क्षेत्रों की तुलना में बहुत अधिक हैं। इनमें से लगभग 3,350 जातियां एकबीजपत्रीय और शेष द्विबीजपत्रीय हैं।

यह कम ही लोगों को ज्ञात होगा कि पौधों की करीब 5,000 जातियां ऐसी हैं जो केवल भारत में ही पाई जाती हैं और संसार भर में कहीं नहीं। कभी-कभी तो ये एक अत्यन्त छोटे क्षेत्र जैसे एक प्रांत, जिला या मात्र एक पर्वत या घाटी में ही पाये जाते हैं। इस प्रकार के पौधों को 'सीमित क्षेत्री पौधे' कहते हैं।

प्राय: यह प्रश्न किया जाता है कि सीमित क्षेत्री पौधों के अध्ययन से क्या लाभ है ? ऐसे देखा जाये तो हर पौधे का महत्व है। वह भूमि की रक्षा करता है और वातावरण में आक्सीजन का संतुलन बनाये रखता है। लेकिन सीमित क्षेत्री पौधों के अध्ययन से किसी भी क्षेत्र के पौधों का इतिहास जानने में सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण बात यह है कि किसी कुल या वंश के क्षेत्रीय पौधों का एक विशेष क्षेत्र में पाया जाना इस बात का द्योतक है कि उस विशेष कुल या वंश का विकास वहीं हुआ है। उदाहरण के लिए, उड़ीसा प्रदेश के जेपूर नाम के स्थान में धान की कई ऐसी जातियां मिली हैं जो सीमित क्षेत्री हैं और वैज्ञानिक निष्कर्ष के अनुसार भारत में धान का विकास इसी क्षेत्र में हुआ है। उद्यानों के सुन्दर पुष्पों और औषधीय जड़ी बूटियों, फसलों आदि की संस्करण द्वारा उन्नत किस्में तैयार करने में इन्हीं सीमित क्षेत्री पौधों की सहायता ली गई है।

इसके अतिरिक्त उन्नत किस्मों को रोगमुक्त करने के लिये भी इनका उपयोग किया जाता है। जंगलों में पाई जाने वाली बांस वंश की सीमित क्षेत्री जातियों की सहायता से ही आज ईख की फसल को रोगग्रस्त होने से बचाया जा सका है। धान की प्रचलित जाति को भी रोगमुक्त रखने में भारत में पाई जाने वाली एक क्षेत्री घास की मदद ली गई।

भारत में सीमित क्षेत्री पौधे मुख्यत: हिमालय, असम, मेघालय, नागालैंड, मनीपुर, अरुणाचल, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र के सघन वनों में पाये जाते हैं। इन पौधों के विस्तृत अध्ययन के लिए वनस्पति सर्वेक्षण विभाग कार्य कर रहा है। लगभग 1,500 जातियों की अस्थाई सूची बनायी गई है और अनेक जातियों की सूची तैयार की जा रही है।

ये सीमित क्षेत्री पौधे अमुक प्रकार की परिस्थिति में ही पाये जाते हैं। अब कुछ इसी प्रकार के पौधों के बारे में जानकारी प्राप्त करें। **आकोनीटुम, अट्रोपा नार्डोस्टाकिस, पोडो-फील्लुम, साउस्सुरेआ** आदि औषधीय गुण के लिए विख्यात हैं। इनकी कई जातियां उत्तर-पश्चिम हिमालय में ही सीमित हैं हिमालयी ब्लू पोपी (**मेकोनोप्सिस अकुलेआटा**), **माहोनिआ, जाउनसारेंसिस, एरेमोस्टाचिस सुपेर्बा, प्रिमुला क्लार्केई, ईरिस डुथिई** आदि अपने सुन्दर पुष्पों से पर्यटकों का मन मोह लेते हैं।

आर्किड और **र्होडोडेन्ड्रोन** के फूलों की छटा ही निराली होती है। आर्किड प्रायः विचित्र परिस्थितियों में उगते हैं। इनके पुष्प रूप में कभी तितली के समान तो कभी स्लीपर के आकार के, कभी मकड़े जैसे आदि होते हैं। **आनोएक्टोचिलुस, आएरीडेस, कालान्थे सोएलोगिने** और **डेन्ड्रोबिउम** आदि की बहुत सी जातियां पूर्वी हिमालय में सिक्किम, अरुणाचल, असम, मेघालय और मनीपुर के घने जंगलों में ही पायी जाती हैं। इनकी सुन्दर पुष्पों के कारण संसार भर में मांग है इसलिये इनको वनों से निरंतर उखाड़ा जाता रहा है, फलस्वरूप इन वंशों की कई जातियां दुर्लभ हो गई हैं। र्होडोडेन्ड्रोन की भी कुछ सुन्दर जातियां जैसे—**र्होडोडेन्ड्रोन एलिओट्टाईई, र्हो० सान्तापाउई** और **र्हो० सुबानासिरिएन्स** इत्यादि केवल मनीपुर, मिजोरम और अरुणाचल प्रदेश के कुछ स्थानों में ही सीमित हैं।

सामान्यतः पौधे अपना भोजन स्वयं तैयार करते हैं किन्तु यह कम लोगों को ज्ञात होगा कि कुछ पौधे सिर्फ छोटे-छोटे कीड़ों का भक्षण कर जिंदा रहते हैं। **नेपेंथेस खासिआना** इसी तरह का पौधा है और मेघालय में खासी और गारो पहाड़ियों के कुछ विशिष्ट स्थानों में पाया जाता है। **ऊट्रीकुलारिआ** वंश की भी कुछ जातियां मेघालय और असम में ही पाई जाती हैं।

बांसों का महत्त्व सर्वविदित है। कुछ महत्वपूर्ण वंश जैसे **अरुन्डीनारिआ, चीमोनो-बांबुसा, बाम्बुसा** और **डेन्ड्रोकालामुस** की कई जातियाँ मनीपुर, मेघालय, नागालैंड, मिजोरम और अरुणाचल के वनों में ही सीमित हैं। वहां के कुछ स्थानों में इनकी कुछ जातियों के नये व कोमल तनों को खाया जाता है। **ओक्लान्ड्रा** वंश का बांस सिर्फ भारत के दक्षिणी भाग में ही पाया जाता है संसार भर में और कहीं नहीं। इसकी कुछ जातियों का कागज उद्योग में भी उपयोग किया जाता रहा है। इनके अतिरिक्त, केले जैसे महत्वपूर्ण फल की बहुत सी जातियां भी उत्तर-पूर्वी भारत में ही सीमित है। औषधीय पौधे जैसे **कोप्टिस टीटा** और **डीओस्कोरेआ** की क्षेत्री जातियां भी उत्तर-पूर्वी भारत में पायी जाती हैं।

नारियल कुल के कुछ वंशों जैसे **लिविस्टोना** और **फेनिक्स** की कुछ जातियों के तने सिक्किम और अरुणाचल प्रदेश के आदिवासियों के द्वारा खाये जाते है। सुपारी की एक जंगली किस्म **अरेका नागेन्सिस** नागालैंड में पायी जाती हैं। वहां के कुछ भागों में इसके फलों का सुपारी की तरह उपयोग किया जाता है।

मुख्यतः फर्नीचर के लिये लकड़ी कई वृक्षों जैसे **डालबर्जिआ लाटीफोलिआ, शोरेआ रोबुस्टा** और **टेक्टोना ग्रान्डिस** से प्राप्त की जाती है किन्तु, **प्टेरोकार्पुस** की कई जातियों से

उत्तम किस्म की प्लाईवुड बनाई जाती हैं और ये जातियां सिर्फ अंडमान व निकोबार द्वीप समूह में ही पायी जाती हैं। **कालामुस**, जिसे सामान्य भाषा में बेंत कहते हैं, की भी कई क्षेत्री जातियां जैसे **कालामुस अंडमानिकुस** और **का० निकोबारिकुस** की लकड़ी का फर्नीचर बनाने में बहुतायत से उपयोग किया जाता है। इसकी कुछ किस्में दक्षिणी भारत के जंगलों में भी सीमित रूप से पायी जाती है।

केरल, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र प्रदेश के अर्द्धसदाहरित और पतझड़ वृक्ष वाले वनों में भी कई तरह के सीमित क्षेत्री पुष्पी पौधे पाये जाते है। नारियल कुल का एक पौधा **बेनटिंकिआ कोंडापन्ना** केरल में तिरुनेल्वेली की पहाड़ियों में ही सीमित है। **हब्बार्डिआ** नाम की नाजुक सी घास सिर्फ कर्नाटक के जोग प्रपात के निकट ही पायी गई थी। पिछले कई वर्षों में इसकी खोज असफल रही है। इसी तरह दो और घास **लिमनोपोआ** केरल के एरनाकुलम जिले में और **डीकान्थिउम पंचगानिएन्से** महाराष्ट्र के पंचगनी नाम के एक पहाड़ी स्थल में ही सीमित हैं। खूबसूरत लाल पुष्प वाला **फ्रेरेआ ईन्डिका** पूना के पास एक जंगल के अतिरिक्त और कहीं भी नही पाया जाता। तमिलनाडु में नीलगिरि क्षेत्र का इन क्षेत्री पौधों के कारण विशेष महत्व है। सैकड़ों सीमित क्षेत्री पौधे सिर्फ नीलगिरि के जंगलों में ही पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए सुन्दर पुष्पों वाला **लीलिउम नीलग्हेरेन्सिस, आस्पारागुस फौसोनी, सोएलोग्गिने आंगुस्टीफोलिआ** आदि। ताड़ के पेड़ों में सामान्यतः कोई शाखा नहीं होती किन्तु उसी कुल के पेड़ में शाखाओं के कारण उसे ब्रांच्ड पाम (**हीफाएने डीकोटीमा**) कहते हैं। यह अनोखा पेड़ गुजरात और दियू के समुद्री तटों के अतिरिक्त और कहीं नहीं पाया जाता।

इस तरह हम देखते हैं कि सीमित क्षेत्री पौधे हमारी वन संपदा की अमूल्य निधि हैं। कुछ पौधों का उपयोग हम जानते हैं और बहुत से पौधों का उपयोग जानना शेष है। इस दिशा में अनुसंधान हो रहा है। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वनों की अनियोजित कटाई से खासकर सीमित क्षेत्री पौधों का जो नुकसान हो रहा है उसकी पूर्ति असम्भव है। शायद भविष्य में इन पौधों में से कुछ ऐसे निकल आयें जो हमारी खाद्य और ईंधन की समस्या को दूर करने में सहायक हों। अतः सीमित क्षेत्री पौधों को संरक्षण की विभिन्न विधियों द्वारा बचाये रखने की चेष्टा अपेक्षित है। यह न केवल हमारा मानवीय कर्तव्य है वरन् इसी में हमारा अपना हित भी है।

आभार

मैं डा० सुधांशु कुमार जैन निदेशक, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण का आभारी हूं जिन्होंने अपने सुझावों व परामर्श द्वारा लेखन कार्य में सहायता प्रदान की।

34. राष्ट्रीय मरु उद्यान एवं मरुस्थल में पौधों को सुरक्षित रखने की सम्भावनाएं

राजेन्द्र प्रसाद पांडे

मरु प्रदेश में किसी उद्यान की कल्पना करना आकाश से चांद-सितारे तोड़ लाने की कल्पना के समान अव्यवहारिक नहीं है। वास्तव में राजस्थान के पश्चिम प्रदेश में फैले थार मरुस्थल के बारे में आम आदमी की कल्पना में जो चित्र उभरता है वह वनस्पति विहीन ऐसे रेतीले मैदान का है जहां दूर दूर तक रेत एवं रेतीले वातावरण के अलावा कुछ नहीं है। एक ऐसा प्रदेश जो मृत्यु सा खामोश और वीराने की तरह उजाड़ हैं, जहां जीवन का कोई भी चिन्ह नहीं है। पर यह बात सत्य नहीं है। यहां का वातावरण जीवन की विषम परिस्थितियों का परिचय कराता है। इस प्रकार राजस्थान के पश्चिमी भाग में स्थित थार रेगिस्तान प्रकृति की अनुपम देन है। इस क्षेत्र में जहां हजारों किलोमीटर वनस्पति विहीन रेतीले टीबे हैं वहीं वन्यजीवों के लिये उपयोगी सेवण घास तथा बहुत से मरुस्थलीय पेड़-पौधे भी हैं।

लुप्त हो रहे, पौधों व प्राणियों के संरक्षण और उनके विकास के लिये भारत में अपने किस्म का पहला, ',राष्ट्रीय मरुउद्यान" पश्चिमी राजस्थान के जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में स्थापित किया गया है। उद्यान लगभग 3, 162, वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल में फैला हुआ है। यह मरुद्यान 70° 20' से 70° 46' पूरब व 25° 51' से 2 50' उत्तर अक्षांश के बीच स्थित है। मरुउद्यान में मुख्यतया निम्न लिखित स्थान आते हैः डब, कनौई, सम, सुदासरी, बिदां, डबरीपार, कोरिया, हट्टार, मियाजलर, सुन्दरा, हरसानी, गिराब, हाफिया (सांखेली), सिगडार, बन्द्रा, सातो, तेजरार, बर्सीयाली, खुरी, बरण, धनेली, सीपला इत्यादि। मरुउद्यान को कानूनी संरक्षण प्रदान करने के लिये इसे 1979 में राजस्थान वन्य जीव अधिनियम के अर्न्तगत अभयारण्य घोषित किया गया है। 1980 में राज्य सरकार ने इसे राष्ट्रीय मरुउद्यान बनाने के आशय की घोषणा कर दी। सरकार द्वारा इस उद्यान के लिये छठी पंचवर्षीय योजना अवधि के लिये दो करोड़ 47 लाख रुपये की राशि स्वीकृत की गयी है। इस उद्यान की मुख्य विशेषता इसमें पाये जाने वाले रेगिस्तानी पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों तथा आकृतियां बदलते हुए उड़ते-फिरते रेतीले टीबों वाले सुनसान, उजाड़ इलाकों के प्राकृतिक स्वरूप को ज्यों का त्यों कायम रखा जाना है। इसके लिये मानव हस्तक्षेप रोकने का भी कड़ा प्रबन्ध किया गया है।

मरुस्थल तथा मरुउद्यान में भिन्नता केवल इतनी है कि आगन्तुक रेगिस्तान के सभी खतरों—भूख, प्यास, गर्मी और रेतीली आंधियों से बचकर मरुस्थल की भू-आकारिकी भौगोलिक विशेषताओं तथा इसमें पाये जाने वाले पेड़-पौधों व अन्य प्राणियों का अध्ययन कर सकते हैं। इस प्रकार विश्व के सबसे जीवन्त रेगिस्तान थार में बना यह राष्ट्रीय मरु उद्यान न केवल इस क्षेत्र के लिए ही उपयोगी होगा वरन् विश्व के उन सभी रेगिस्तानी राष्ट्रों के लिए भी महत्वपूर्ण सिद्ध होगा जो प्राकृतिक दृष्टि से भारतीय रेगिस्तान से साम्यता रखते हैं।

जेसलमेर जिले का नाम संसार के मानचित्र में सबसे पहले 1971 के भारत-पाकिस्तान युद्ध के दौरान, फिर 1974 में पोकरण के पास परमाणु विस्फोट व अनुसंधान तथा अभी कुछ वर्ष पूर्व "आकल वुड फोसिल पार्क" बन जाने से बहुत उत्सुकता व विशेष महत्व से जाना जाता है। वुड फोसिल पार्क जैसलमेर से 18 कि० मी० दूर देवीकोट सड़क पर आकल में स्थित है। यहां पाये जाने वाले जीवाष्म यह बतलाते हैं कि आज पश्चिम भू-भाग में जहाँ दूर दूर तक रेगिस्तान फैला हुआ है वहां 18-20 करोड़ वर्ष पहले समुद्र-तटीय घना जंगल था। नम वातावरण के उस घने जंगल के अवशेष जैसलमेर के निकट रेत के टीलों व पहाड़ियों के नीचे दबे पाये गये हैं। आकल वुड फोसिल पार्क में पाये जाने वाले पेड़ों के तनों के जीवाष्म नग्नबीजी (जिम्नोस्पिर्म) पेड़ों के हैं। इन बहुमूल्य जीवाष्मों को वैज्ञानिक अध्ययन एवं भावी पीढ़ी के ज्ञानवर्धन के लिए आकल वुड फोसिल पार्क में सुरक्षित रखा गया है। इन जीवाष्मों के शोध से हमें जीवन की उत्पत्ति एवं विकास की महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होगी।

उपरोक्त सभी कारणों के अलावा जैसलमेर जिले में राजस्थान नहर के बन जाने के परिणाम स्वरूप इस राष्ट्रीय मरु उद्यान की उपयोगिता और भी ज्यादा बढ़ गयी है।

प्राकृतिक परिवेश

रेगिस्तान की प्राकृतिक संरचना दुनिया से भिन्न है। मरु उद्यान की मुख्य विशेषता इसमें पाये जाने वाले स्थिर, अर्ध-स्थिर, चलायमान, ओंखलीनुमा रेतीले टीबे व इनके बीच में पाये जाने वाला रेतीला भू-भाग है। स्थिर रेतीले टीबे दूर से किसी पहाड़ी प्रदेश की झलक प्रस्तुत करते हैं। चलायमान टीबे दक्षिण-पश्चिम की ओर 70-80 कि० मी० प्रति घण्टा की तेज चाल से दौड़ते अंधड़ों के साथ बहकर आने वाली रेत से निर्मित होते एवं बिगड़ते रहते हैं। इनके नित्य बदलते स्वरूप प्रकृति की अद्भुत कारीगरी का अनुपम उदाहरण है। इस मरुस्थलीय प्रदेश में दूर-दूर तक फैले हुए रेतीले मैदान हैं। इन मैदानों के बीच में पथरीली व कंकड़ युक्त भूमि के टुकड़े हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में "तालर" कहते हैं एवं छोटी-छोटी पहाड़ियां हैं। यहाँ के क्षारीय मैदान की भूमि में क्षार की मात्रा बहुत अधिक है। इसीलिए यहां वनस्पति कम है।

वातावरण

यह मरुउद्यान रेगिस्तान में स्थित होने के कारण यहाँ धूप बहुत तेज चमकती है तथा तापमान में बहुत परिवर्तन होता रहता है इसलिए यहां दोपहर बहुत गर्म तो रात्रि में बिलकुल ठंडक रहती है। यहां विभिन्न ऋतुओं के तापक्रम में भी भारी अन्तर है, शरद ऋतु में तापमान 2° सेन्टीग्रेड से शून्य डिग्री तथा गर्मी में कई बार मई-जून के महीनों में 47° सेन्टीग्रेड तक बढ़ जाता है। पूरे वर्ष भर वातावरण में नमी बहुत कम रहती है। यहां औसत वार्षिक वर्षा 200 मि० मी० से भी कम होती है। उसमें भी स्थायित्व नहीं है। अधिकांश स्थानों पर वर्षा नहीं के बराबर होती है। प्रायः लगातार दो तीन वर्ष तक वर्षा का अभाव रहता है। स्वाभाविक रूप से, इस रेगिस्तान में पेयजल का काफी अभाव है।

पशु-पक्षी

रेगिस्तान का सबसे उल्लेखनीय पक्षी गोडावण (ग्रेट इंडियन बस्टर्ड) है। राष्ट्रीय पक्षी चयन में मयूर के बाद इसका ही स्थान रहा है। आजकल इसका अस्तित्व खतरे में है। उद्यान के विकास से इसके बचने की उम्मीद बंधती है। इसी उद्देश्य से राजस्थान सरकार ने गोडावण को "राजकीय पक्षी" बनाने की घोषणा की है। इसके अलावा राष्ट्रीय मरुउद्यान में सियार, भेड़िया, रेगिस्तानी लोमड़ी, धारीवाली चकचुंदरी, रेगिस्तानी बिल्ली, चिंकारा, काला हिरण, खरगोश, रेगिस्तानी चूहा आदि स्तन धारी; मोर, गोडावण, होवेरा बस्टर्ड, कामन सेन्डग्राऊज, रिंगनेक डोव, बुलबुल आदि पक्षी पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त दूसरे पक्षी जैसे स्पेनिस स्पेरो, इम्पीरियल सेन्डग्राउज, डिमोसिली, क्रेन्स, कोमन, क्रेन एवं बहु चर्चित तिलोर, इम्पीरियल इगल, रेड फुटेड फाल्कन, पी फाउल, कबूतर एवं शिकारी पक्षियों में बाज, चील आदि पाये जाते हैं। सांडा, रेतीली छिपकली, मरुमछली, पीणा--(इन्डियन मोनीटर), इन्डियन डेजर्ट मोनीटर, इन्डीयन क्रेट, धामन आदि रेंगने वाले जन्तु (रेप्टाइल्स) पाये जाते हैं अकशेरूकी जीवों की अनेक जातिया भी इस उद्यान में मिलती है।

मरुउद्यान में पायी जाने वाली वनस्पति

प्रस्तुत लेख में जिन वनस्पतियों व पौधों का वर्णन किया गया है वह 1975-81 तक किये गये पांच वनस्पतिक अन्वेषणों के आधार पर हैं। इस बीच संग्रहित किये गए पौधों को भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग, जोधपुर (बी० एस० जे० ओ०) के पादपालय में तथा केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय (सी० ए० एल०) कलकत्ता में संग्रहित किया गया है। पौधों व अन्यजीवों के हिन्दी नामों के साथ कोष्ठक में इनके लेटिन नाम भी दिये गये हैं।

पशु-पक्षियों के अलावा मरुउद्यान में पेड़ पौधों की भी अनगिनत किस्में हैं, जिन्हें विस्तृत अध्ययन द्वारा ही पहचाना जा सका है। भूमि की संरचना के आधार पर मरुउद्यान में पाये जाने वाले पेड़-पौधों को चार प्रमुख भागों में बांटा गया है।

1. रेतीले टीबे व इनके बीच का रेतीला भू-भाग
2. समतल व ऊबड़ खाबड़ रेतीले मैदान
3. कंकरीट पत्थरों के समतल मैदान (तालर)
4. छोटी-छोटी पहाड़ियां व चट्टानें ।

रेतीले टीबे व इनके बीच का भू-भाग

राष्ट्रीय मरू उद्यान में बहुतायत से पायी जाने वाली यह एक प्रमुख संरचना है। उद्यान का मुख्य भाग रेतीले टीबों का ही बना है। यहां रेतीले टीबे भिन्न-भिन्न ऊंचाइयों तथा रचनाओं के पाये जाते हैं। इनमें से कुछ टीबे स्थिर, अर्धस्थिर, ओखलीनुमा एवं चलायमान है। ओखलीनुमा टीबे यहां की मुख्य विशेषता है। इन विभिन्न प्रकार के टीबों पर पाये जाने वाले वृक्ष व झाड़ियां निम्न हैं : फोग (**काल्लीगोनुम पोलीगोनोइडेस**), बुई (**अएर्वा जावानिका**) आक (**कालोट्रोपिस प्रोसेरा** उपजाति **हामिल्टोनिई**), केर (**काप्पारिस डेसीडुआ**), अर्नी (**क्लेरोडेन्ड्रुम फ्लोमिडिस**), लाना (**हालोक्सीलोन सालिकोर्निकुम**), मोरली (**लीसिउम बरबारुम**)। कुछ स्थिर टीबों पर कुमटीया (**अकासिआ सेनेगल**), खेजड़ी (**प्रोसोपिस सिनेरारिआ**), पीलू-जाल (**साल्वाडोरा ओलेआइडेस**) भी मिलते हैं। खुरी के पास के कुछ टीबों पर 3-4 वृक्ष सागुरा (**मोरिन्गा कोन्कानेन्सिस**) के भी देखे गये हैं। इनके अलावा टिबों पर अन्य शाकीय पौधे भी पाये जाते हैं जैसे तुम्बा (**सिट्रूल्लुस कोलोसीन्थिस**), सिणीया (**क्रोटालारिआ बुर्हिआ**), लांपी (**डीप्टेरीजिउम ग्लाउकुम**), हिरन चाबो (**फार्सेटिआ हामिल्टोनिई**), नील (**इन्डीगोफेरा आर्जेन्टेआ**), बेकरियो (**इ० कोर्डीफोलिआ**), लाम्बीयो बेकरियो (**इ० लिनीफोलिआ**), खीप (**लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्नीका**), चीड़ी घास (**पोलीगाला एरिओप्टेरा**), काली बुई (**सेरिकोस्टोमा पाउसीफ्लोरुम**), बिराटीओ **टेफरोसिआ फॉल्सीफार्मिस**), बाकड़ा (**ट्रिबुलुस लोन्गीपेटालुस** उपजाति **लान्गीपेटालुस** और **माक्रोपेटालुस**)। इन टीबों पर एक जड़ पर जीवी लोंकी मूली (**सिस्टान्चे टुबुलोसा**) भी पाया जाता है। यहां पर घास की निम्न जातियाँ भी मिलती हैं : लाम्परो (**आरिस्टिडा अड्स्केन्सिओनिस**), लाम्प (**अ० फुनीकुलाटा**), भुरट (**सेन्क्रूस बीफ्लोरुस**), धामन (**से० सेटीगेरुस**), लाम्बीया भुरठ (**से० प्रीएउरिई**), बुरारो (**सिम्बोपोगान ज्वारान्कुसा**), दोब (**सीनोडॉन डाक्टीलोन**), मकारो-मांची (**डाक्टीलोक्टेनिउम आएजोप्टिउम**), टाटीया (**डा० सीन्डिकुम**), डाब (**डेस्मोस्टाचिआ बीपिन्नाटा**), उन्धर पूंछ (**एराग्रोस्टिस सीलिआरिस**), **ए० डिआरहेना**, **ए० टेनेल्ला**, चिड़ियों का खेत (**ए० ट्रेमुला**), **सेवण** (**लासीउरुस सिन्डीकुस**), **लाटीपेस सेनेगालेन्सिस**, धोरा दुब (**ओक्थोक्लोआ काम्प्रेस्सा**), गरमानो (**पानीकुम आन्टीडोटाले**), मुरेढ़ियो घास (**पानीकुम टुर्जीडुम**), घोलियो लाम्प (**स्टीपाग्रोस्टिस हिर्टीग्लुमा**) और मन्टुसी (**सिपेरुस कोन्ग्लोमेराटुस**)।

टीबों के बीच के रेतीले भू-भाग में उपरोक्त पौधे बहुत ज्यादा संख्या में मिलते हैं। उसका कारण अधिक नमी है। इसलिए यहां हरियाली भी अधिक नजर आती है। यहां पर मुख्य रूप से वृक्षों व झाड़ियों की निम्न जातियां पाई जाती है : – **भूबावली** (**अकासिआ**

जाक्वेमोन्टिई), कुमठीया, खेजड़ा, पील्-जाल, रोहिड़ा (**टेकोमिल्ला उन्डुलाटा**), आक, कैर और झाड़-बेर (**जिजीफुस नुम्मुलारिआ**)।

कभी-कभी छोटी-छोटी पहाड़ियों के निचले भाग में आंधियों से चलने वाली रेत से रूकावटी टीबे बन जाते हैं। यहां पर मुख्य रूप से कुमठीया, धाव (**अनोगेईस्सुसपेन्डूला**) गुगल (**कोम्मीफोरा वाइटिई**), कंकेड़ा (**माइटेनुस एमार्जीनाटुस**) आदि मिलते हैं। दूसरे पाये जाने वाले पौधे वही होते हैं जो टीबों पर मिलते हैं।

टीबों पर पाये जाने वाले उपरोक्त पौधों का जो वर्णन किया गया है उनमें सेवण घास यहां का जीवन है। कम पानी एवं गर्म वातावरण में यह घास काफी फैलती है। पौष्टिक तत्वों की दृष्टि से भी यह घास पशुओं के लिए लाभदायक है। तथा यहां का सारा रेतीला भाग इस घास से भरा पड़ा है। खेजड़े का वृक्ष यहां की दूसरी मूल्यवान वनस्पति है। यह वृक्ष रेगिस्तान में किसान का सिंध कहलाता है और सबसे ज्यादा मात्रा में पाया जाता है। इस वृक्ष की पत्तियां चारे के रूप में, हरी फलियां सब्जी के रूप में तथा पकी हुई फलियाँ भी आम आदमी द्वारा खाई जाती है। इसी प्रकार रोहिड़ा, कैर, कुमठीया, पीलू व झाड़-बेर भी घरेलू उपयोग में लाये जाते हैं। (फोटो न. 4, 5)

समतल व उबड़ खाबड़ रेतीले मैदान

इन मैदानों में निम्न वृक्ष व झाड़ियां पाई जाती हैं—कुमठीया, फोग, आक, कैर, कंकेड़ा, खेजड़ा, पीलू-जाल, रोहिड़ा, झाड़-बेर इत्यादि। इनके अलावा छोटे शाकीय पौधे भी यहां पाये जाते हैं। जैसे बुई, रामबुई (**आर्नेबिआ हिस्पिडोस्सिमा**), चीनावरी (**बोएरहाविआ डिफ्फुसा**), बड़ी चीनावरी (**बो० एलेगान्स**), सांखेरी (**कोन्वोल्वुलुस प्रोस्ट्राटुस**), सिणीया, हिरन-चाबो, छोटी सान्खेरी (**हेलिओट्रोपिउम स्ट्रिगोसुम**), बेकरीया, खींप, चीड़ी या घास (**पोलीगाला एरिओप्टेरा**), सरपंखो (**टेफरोसिआ पुरपुरेआ**) आदि। यहां पर कुछ जमीन पर रेंगने वाली लताएं भी मिलती हैं जैसे लम्बा, मतीरा (**सिट्रुल्लुस लानाटुस**), काचरा (**कुकुमिस मेलो प्र० कल्टा**) और कंत काचरो (**'कुकुमिस प्रोफेटारम**)। कुछ लताएं जैसे गोलन (**कोक्सीनिआ ग्रान्डिस**), जंगली करेला (**मोमोर्डिका डीओइका**), आंख फूटनी (**मुकिआ मडेरा-स्पताना**), गडरिया की बेल (**पेर्गुलारिआ डाएमिआ**) इत्यादि भी मिलती है। सारे मरु-उद्यान में बड़ी कठिनाई से सिर्फ एक ही नग्नबीजी (जिम्नोस्पर्म) पौधे की जाति मिलती है जिसका नाम सुवोफोगरो या अंधो खींप (**एफेड्रा फोलिआटा**) है। मन्टुसी व मोथे (**सीपेरस आरकिन्सोनिई**)। घरों के पास तथा तालाबों के किनारे विलायती बबूल (**अकासिआ नीलोटिका उपजाति इंडिका**) भी मिलता है। दलदलों व नम जगहों जैसे तालाब, पोखर, नाले आदि में निम्नलिखित पौधे मिलते हैं: जल भांगरो (**अम्मानिआ बाक्सीफेरा**), भाँगरो (**बेंजिआ अम्मान्नीओइडेस**), नोली (**बिस्टेल्ला डिगीना**), काला भांगरा (**एक्लिप्टा आल्बा**), सफेद फूली (**एनिकोस्टेमा हिस्सोपीफोलिआ**) आदि। इस दलदल में निम्न घास की जातियां भी मिलती हैं: मोरलो (**स्कीर्पुस रोइलेई**), मोथ (**सी० पेरस ईरिआ**), मोथो (**सी० रोटुन्डुस**),

कराड (**डीकान्थिउम आन्नुलाडम**), जिरायो (**एकीनोक्लोआ कोलोनुम**) इत्यादि। सूखे तालाबों व पोखरों की तलहटी जहां पर जमीन तथा दरारें पड़ी होती हैं वहां पर धोलकनी (**ग्लीनुस लोटोईडेस**) लाल फूली (**पोलीगोनुम प्लेबेइउम**), सफेद ईइरु (**पुलीकारिआ क्रिस्पा**) इत्यादि बहुतायत से पाए जाते हैं।

कंकरीट/पत्थरों के समतल मैदान (तालर)

इस राष्ट्रीय मरुउद्यान में दूर-दूर तक फैले समतल रेतीले मैदान के बीच पथरीली व कंकरीट भूमि के टुकड़े हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में "तालर" कहते हैं। इस प्रकार के तालर सम, गांगा, फलेरी, कोरिया, बरज, हट्टार, फूलिया इत्यादि गांवों में मिलते हैं। एसे स्थान में आक, कैर, डण्डा थोर **एउफोर्बिआ काडुसिफोलिआ**), कंककेड़ा, खेजड़ा, पीलू जाल, झाड़-बैर इत्यादि वृक्ष व झाड़िया मिलते हैं। उपरोक्त पौधों के साथ शाकीय पोधों में धुनिया (**आन्टीचारिस सेनेगालेन्सिस**), उंट कंटालो (**ब्लेफारिस लिनाराएफोलिआ**), चिनावारी, बुई (**बोउचेआ मार्कवीफोलिआ**), माधीयो (**क्लेओमे ब्राचीकार्पा**), चामकस (**कोर्कोरुस डिप्रेस्सुस**), वज्रदंती (**डीकोमा टोमेन्टोसा**), दूधी (**एउफोर्बिआ क्लार्किआना**) धामासीयो (**फागोनिआ ईन्डिका** प्र० (**इवेनर्फ्यिई**), दूधा (**ग्लोस्सोनेमा वारिआन्स**), घोटीं सांन्थेरी, बेकरिया, आडियो बेकरियो (**इन्डीगोफेरा होच्स्टेट्टेरी**), सांपरी (**लीमेउम ईन्डिकुम**), चिड़ीपेरो खेत (**मोल्लुगो सेर्वीआना**), रगिटियो खार (**मो० नुडीकाउलिस**), सरपंखों, गोखरू (**ट्रिबुलुस टेरेस्ट्रिस**) इत्यादि मिलते हैं। तालर में प्रमुख प्रकार की घास की निम्न जातियां हैं: खरगोश पूंछ (**एन्नेआपोगोन ब्राचीस्टाचीउस**), **ए० स्चिम्पेरानुस**, **मेलानोसेन्क्रिस अबीस्सीनिका**, **मे० जाक्युमोन्टिई**, मुरसिया (**ओरोपेटिउम थोमाएउम**) कांगीयो भूरठ (**ट्रागुस रोक्सबर्घिई**) आदि। जब कभी भी इन कंकरीट के समतल मैदानों पर बालू रेत जमा होने लगती है तब रेतीले समतल पर पाये जाने वाले पौधे यहाँ पर भी उगने लगते हैं।

छोटी-छोटी पहाड़ियां व चट्टानें

इस प्रकार की संरचना मरुउद्यान में बहुत कम जगह पर पायी जाती है जैसे सुदासरी, सम, गांगा, हट्टार इत्यादि। यहां पर कुछ चट्टानें तो बिलकुल ही पौधे विहीन हैं तथा जो कुछ भी अल्प वनस्पति यहां मिलती है वह भी बहुत दूर-दूर तक फैली हुई है। यहां का प्रमुख पौधा डण्डा थोर है। इसके साथ दूसरे पाये जाने वाले पौधों में कुमठीया, घाव, कैर, गुगल, गांगरेन (**ग्रेविआ टेनाक्स**), कंककेड़ा, झाडबेर इत्यादि हैं। यहां पर पायी जाने वाली लताओं में प्रमुख लाल-चिर्मी (**आब्रुस प्रेकाटोरिउस**), सतावारी (**आस्पारागुस रासेमोसुस**) बड़ी सान्थेली (**बोएरहाविआ वेर्टीसिल्लाटा**), कपाल फोड़नी (**कार्डिओस्पेर्मुम हालीकाकाबुम**), रोटा बेल (**इपोमोएआ सिन्डीका**), आंख फुटनी, चिड़ी मोतिया (**रहिन्कोसिआ मिनिमा**), रोटा बेलरी (**रोबेआ हिपोक्राटेरीफार्मिस**) आदि। इनके अलावा दूसरे शाकीय पोधों में आंधी जालो (**आर्कीरान्थेस आस्पेरा**), धुनियाचापरी (**बार्लेरिआ अकान्थोइडेस**), उंठ कटालो, चिनावरकी,

माधीयो, गंधीयो (**क्लेओमे विस्कोसा**) सफेद बूंटी (**डीप्टेराकान्थुस पाटुलुस प्र० आल्बा**), धामातीयो, काली बुई (**हेलिओट्रोपियम बाक्सीफेरम**), बेकरीओ, आवल कांगीयो (**लेपीडा-गाथिस ट्रीनर्विस**), पीली बूंटी (**लिन्डेनबर्जिआ ईन्डिका**), पीली फूली (**पेवोनिआ जेइलानिका**) पनीर पता (**श्वेइन्फुर्थी पापीलिओनासेआ**), **सेड्डेरा** लाटीफोलिआ, ढाकरी (**सीट्जेनिआ लानाटा**), आड़ियो थात (**सीडा कोर्डाटा**), संरपंखो, झीनों-बियोना (**टेफ्रोसिआ अस्ट्रिगोसा**) पीली भंगरो (**ट्रीडाक्स प्रोकुम्बेन्स**) आदि पाए जाते हैं। इनके अलावा घास की निम्न जातियां भी मिलती हैं:—**लाम्परो एन्नेआपोगॉन** जातियां, **मेलानोसेन्क्रिस जाक्युमोन्टिई**, सुरगोया, धोलिया लाम्प, कन्टीयों भूरठ आदि।

उपरोक्त स्थानों के अलावा कुछ पौधे की जातियां फसलों के साथ खेतों में भी पायी जाती हैं।

मरुउद्यान में पाये जाने वाले लुप्त प्राय पौधे

इस मरुउद्यान की मुख्य उपयोगिता रेगिस्तान में पाये जाने वाले लुप्तप्राय पौधे व अन्य प्राणियों को संरक्षण प्रदान करना ही है। गुगल व रोहिड़ा जो कि थार रेगिस्तान में कभी बहुतायत से मिलते थे, अब यहां के निवासियों द्वारा इनकी कटाई करने के कारण लुप्तप्राय अवस्था में पहुंच गये हैं। रोहिड़े की लकड़ी को तो 'रेगिस्तान का सागवान' कहा गया है। इसकी लकड़ी घरेलू सामान बनाने के काम आती है तथा काफी टिकाऊ व मजबूत भी होती है। इसी प्रकार गुगल के गोंद का उपयोग अगरवत्ती, धूप, दवा आदि में होता है। उपरोक्त उपयोगिता के कारण ही ये दो पौधे तेजी से लुप्त प्राय अवस्था में हैं। इन पौधों के अलावा दूसरी लुप्तप्राय पौधों की जातियां निम्नलिखित हैं :—**अम्मानिआ डेसेर्टोरुम, डीप्काड़ी एरीथ्राएउम**, **एन्नेआपोगान श्राचीस्टाचीउस, एफेड्रा फोलिआटा, ग्लोस्सोनेमा गरिआन्स, हेलिओट्रोपिउम रारीफ्लोरुम, लोमेउम ईन्डिकुम, मोरिन्गा कोन्कानेन्सिस, रहिन्को-सिआस्वीशिम्पेरी, सेड्डेरा लाटीफोलिआ, सेसुविउम सेसुविओइडेस, टेफरोसिआ फाल्सीफॉर्मिस ट्रिबुलुस राजस्थानेन्सिस** और **जिजीफुस ट्रुन्काटा**। मरुउद्यान में इन लुप्त प्राय पौधों की जातियों के अलावा पूरे राजस्थान में लगभग 32 और लुप्त प्राय पौधे मिलते हैं। इन पौधों को भी राष्ट्रीय मरुउद्यान में लगाने के प्रयत्न करने चाहिए, अन्यथा इनका भी अस्तित्व पृथ्वी पर से समाप्त हो जायेगा।

राष्ट्रीय मरुउद्यान एवं संरक्षण

मरु प्रदेश के इस जीवन्त पर्यावरण को पिछले वर्षों में काफी हानि पहुंची है। वनस्पतियों का ह्रास हुआ है तथा वन्य जीवों के अवैध शिकार ने कई जातियों को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया है। इसका दुष्प्रभाव प्राकृतिक संतुलन पर पड़ा है। प्राकृतिक सन्तुलन को बनाये रखने एवं पर्यावरण की रक्षा के लिए राष्ट्रीय मरु उद्यान की स्थापना की गई है। इस उद्यान के द्वारा ही यहां के पर्यावरण के अध्ययन एवं अनुसंधान हेतु आधार तैयार

किया गया है। इससे लुप्त प्राय पौधों व प्राणियों की जातियों जैसे गोडावण, चिंकारा, सोडा, काला हिरण, भेड़िया, सोन चिड़िया आदि को संरक्षण प्रदान करने, इनकी वंश वृद्धि एवं परिपालन करने की दृष्टि से मरु उद्यान की स्थापना की गयी है।

राष्ट्रीय मरुउद्यान की स्थापना के बाद इस क्षेत्र के वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रयास प्रारम्भ किये गये हैं। वन्य जीवों के लिए सुरक्षित क्षेत्रों का निर्माण किया जा रहा है ताकि वे भय-मुक्त वातावरण में निश्चित होकर विचरण कर सकें एवं अपनी जाति का संवर्द्धन कर सके। सुरक्षित क्षेत्रों में वन्य जीवों के लिए भोजन व पानी की समुचित व्यवस्था की जा रही है। इन क्षेत्रों में तार बन्दी करके सेवण घास व अन्य मरुस्थलीय वृक्ष जैसे खेजड़ा रोहिड़ा आदि लगाये जा रहे हैं। अच्छे व सुचारू प्रबन्ध हेतु पूरे उद्यान क्षेत्र में दस स्थानों पर सुरक्षा चौकियां बनायी गयी हैं तथा पर्यटकों व वैज्ञानिकों के रहने हेतु "डेजर्ट हट्स' बनायी गयी हैं। प्रत्येक मरुउद्यान की प्रत्येक सुरक्षा चौकी पर वायरलेस यंत्र लगाये जा रहे हैं। इस प्रकार जीवन्त पर्यावरण को संरक्षण देने के लिए पूरी व्यवस्था की जा रही है।

इसी प्रकार का एक मरुउद्यान जोधपुर शहर में कायलाना झील के पास बनाया गया है जिसका नाम "माचिया डेजर्ट सफारी पार्क" है। इसका उद्देश्य भी प्राकृतिक संतु-लन बनाये रखना व वन्य जीवों व वनस्पति को संरक्षण प्रदान करना ही है। उपरोक्त दोनों ही प्रकार के मरुउद्यान से जहां एक ओर वनस्पति व प्राणियों को संरक्षण प्राप्त होगा वहीं दूसरी ओर जैसलमेर व जोधपुर शहरों में देश-विदेश के पर्यटकों के लिए भी आकर्षण कई गुना बढ़ जायेगा।

इस प्रकार इस भू-भाग में प्राथमिक वन संपदा के विकास का एक लाभ यह भी होगा कि यहां शीत ऋतु में बाहर से आने वाले पक्षी जैसे साईबेरिया के तिलोड़, इम्पीरियल सेन्डग्राऊज और सारस आदि यहां शरद ऋतु में विश्राम करने आ सकेंगे। स्थानीय तीतर और अन्य पक्षियों की जातियों की भी वृद्धि होगी और "घना पक्षी विहार" की भांति यह क्षेत्र भी देश-विदेश के पर्यटकों का आकर्षण स्थल बन जायेगा।

अन्त में वन्य प्राणियों व थार वनस्पति के बचे रहने के अवसर आने वाले वर्षों में और भी कम हो जायेंगे, कारण जैसलमेर जिले में राजस्थान नहर लगभग बन चुकी है। नहर के बन जाने से यहां कृषि बहुतायत से होने लगेगी। इसके साथ ही आबादी बढ़ेगी। इसी प्रकार की स्थिति आज से 30-40 वर्ष पहले गंगानगर जिले में भी हुई थी। वहां पहले जैसलमेर व बाड़मेर जिलों की तरह थार रेगिस्तान था। लेकिन आज वहां नहरों से सिंचाई व्यवस्था हो जाने के कारण वहां की थार वनस्पति करीब करीब लुप्त हो चुकी है। तथा उसके स्थान पर पड़ोसी राज्यों की वनस्पति, फसलों के बीजों के साथ व नहरों के पानी के साथ आकर उगने लगी है। इस प्रकार आने वाले वर्षों में इस राष्ट्रीय मरुउद्यान की उपयोगिता और भी बहुत अधिक बढ़ जायेगी।

35. वन निधि संरक्षण एवं जन संचार विधि

विष्णु शरण अग्रवाल

भारतीय वन केवल भारत के लिए ही नहीं सम्पूर्ण विश्व के लिए महत्वपूर्ण हैं। किन्तु, पिछले 100 वर्षों में नये-नये औद्योगिक शहर व बस्तियों की स्थापना तथा अनियन्त्रित कटाई के कारण लगभग 55% जंगल काटे जा चुके हैं। यह समस्या इतनी गम्भीर हो चुकी है कि नियन्त्रण के लिए 3.70 लाख वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र भारतीय अधिनियम के अन्तर्गत सुरक्षित करना पड़ा है। इसमें से 2.4 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र जंगलों के अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय उद्यान के रूप से आरक्षित हैं तथा अतिरिक्त 3.4 लाख वर्ग कि० मी० मिश्रित जंगल हैं।

भारत की अर्थ-व्यवस्था जंगलों पर काफी मात्रा में निर्भर है। देश के अनेक आदिवासियों का काम जंगलों से ही चलता है। देखा गया है कि हजारीबाग और पालामऊ के जंगलों में कई ऐसे पेड़ हैं, जिनके फल को आदिवासी इकट्ठा करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं। करंज (पोन्गामिआ) के एक पेड़ के फल से एक वर्ष में 300 से 400 रु० तक की आय हो सकती है क्योंकि इसके फलों का तेल दवाई आदि के काम आता है। सिराजू (बिहार) नाम के गांव में लगभग आधे गांववासी करंज का तेल निकालकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जा चुका है कि एक करोड़ से अधिक आदिवासी व ग्रामीण जंगल से प्राप्त वस्तुओं की आय से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यदि जंगल न रहें तो इनको काम देने व नौकरी देने की समस्या खड़ी हो जाएगी जिससे देश की अर्थ व्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है।

जंगलों द्वारा दैनिक जीवन में काम आने वाली अनेक वस्तुओं की पूर्ति होती है। लकड़ी तो प्रधान है ही परन्तु जंगलों द्वारा साढ़े तीन लाख रुपयों से भी अधिक पशु खाल एवं अन्य वस्तुएं जो पशुओं से प्राप्त होती हैं, 12 लाख रुपये के दवाई के काम में आने वाले पौधे, एक करोड़ रुपये का चारा जो जानवरों को खिलाने के काम में लाया जाता है, रबड़ बनाने के काम में आने वाला लगभग 20 हजार रुपये का दूध, रंग व राल और गोंद 20 लाख रुपये का, सुगन्धित वस्तुएं, 84 लाख रुपये की, तेल व तेल देने वाले बीज एक करोड़ रुपये के तथा लगभग 4 करोड़ रुपये मूल्य की अन्य वस्तुएं प्राप्त होती।

भारत में जंगलों से 34 लाख क्यूबिक मीटर फर्नीचर आदि के लिए अच्छा काष्ठ (सांन लकड़ी), 16 लाख क्यूबिक मीटर औद्योगिक लकड़ी तथा लगभग दो करोड़ रुपये की ईंधन के काम में आने वाली लकड़ी प्राप्त होती है। भारत में कोयला समाप्त हो सकता है परन्तु जंगल एक ऐसी धरोहर है जो शायद कभी समाप्त न हो। कारण, पेड़ काटने पर दूसरा

उगाया भी जा सकता है। तात्पर्य यह है कि भारत की अर्थव्यवस्था के लिए हमारे जंगल 'कामधेनु गाय' हैं।

जंगलों से प्राप्त होने वाली लकड़ी का अधिकांश भाग तो भारत में ही खप जाता है परन्तु लगभग 80 लाख रुपये मूल्य की साल लकड़ी बाहर भेजी जाती है। कौन नहीं जानता कि साल की लकड़ी से इमारतों की बीम, नाव, पुल की धुरिएं तथा रेल लाईन पर पड़े स्लीपर, सागौन या टीक की लकड़ी से घरों व उद्योगों का फर्नीचर तथा रेडियो व टेलीविजन के कैबिनेट, चीड़ की लकड़ी से डिब्बे, चंदन की लकड़ी से खिलौने तथा सजावट की वस्तुएं आदि बनती हैं। शायद ही कोई ऐसा घर होगा जहां लकड़ी की बनी कोई वस्तु न मिले।

आधुनिक अनुसंधानों से पता चला है कि कई प्रकार की जंगली लकड़ी को ईंधन व इमारती साज सामान के अतिरिक्त भी व्यवहार किया जा सकता है। असम में मिलने वाली **आक्वीलारिआ अगालोचा** (अगर लकड़ी) इत्रों के आधारभूत तेल व दवाई आदि के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों में इस लकड़ी का दाम 10 हजार रुपये प्रति किलोग्राम से भी अधिक है। दक्षिण भारत की चन्दन लकड़ी बहुत प्रसिद्ध है। लाखों रुपये का चन्दन लकड़ी से निकला तेल बाहर भेजा जाता है। **जीलिआ जीलोकार्पा** नामक लकड़ी लोहे के समान पुख्ता होती है। और लड़ाई के काम में आने वाले विभिन्न हथियारों तथा बन्दूक के हैन्डिल बनाने के काम के लिए प्रसिद्ध है। यह लकड़ी भी दक्षिण भारत में केरल के जंगलों में पाई जाती है। भारत में **एउकालीप्टुस** की लकड़ी से आजकल रेयोन बनाया जा रहा है जो कपड़े बनाने के काम में आता है। रेयौन के बने कपड़े भारत में तो व्यवहार होते ही हैं अफ्रीका, मध्य एशिया आदि को भी भेजे जा रहे हैं। अच्छे किस्म का कागज तैयार करने के लिए **बोजसोनेटिआ** नामक वृक्ष की लकड़ी का उपयोग किया जाता है। मध्य प्रदेश के जंगलों में इस प्रकार की लकड़ी काफी मात्रा में मिलती हैं। उत्तरी भारत में उगने वाली चीड़ की लकड़ी से राल निकाली जाती है जो काफी मात्रा में बाहर भी भेजी जाती है। इसके अतिरिक्त जंगल की लकड़ी से दियासलाई उद्योग, पैन्सिल उद्योग, रेशा उद्योग एवं अन्य कई प्रकार के लघु उद्योग भी चलते हैं। लकड़ी पर आधारित खिलौना उद्योग, खेल का सामान बनाने वाले उद्योगों, माला व दाने के उद्योगों में लाखों लोगों को रोजगार मिला हुआ है। 1982 वर्ष में ही खेल कूद के समान एवं खिलौनों के निर्यात से भारत को लगभग 2.5 करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई है।

लकड़ी के अतिरिक्त बांस भी जंगलों से ही प्राप्त होता है। बताया जाता है कि भारत में बांस के जंगलों का सबसे बड़ा भण्डार है। बांस के अधिकांश जंगल पूर्वी भारत व द्वीपों में पाए जाते हैं परन्तु बांस की कुछ ऐसी जातियां भी हैं जो हिमालय व मैदानी क्षेत्रों आदि में भी मिलती हैं। भारत वर्ष में लगभग 100 लाख हेक्टेयर में बांस के जंगल हैं। जंगलों के 22.8 प्रतिशत भाग में बांस पाये जाते हैं। बांस कागज उद्योग, खेल का सामान, बिजली का सामान, पुल, औजारों के हैन्डिल, बेड़ा, मछली पकड़ने की छड़ी, गुड्डियां, टोकरियां, टोपी,

फूलदान, खिलौने, तीर कमान, चटाई, सीढ़ियां, ब्रुश आदि बनाने के काम में लाये जाते हैं। बांस की आयु 2 से 120 वर्ष की होती है और एक बार बोने से 120 वर्ष तक बराबर बांस मिलता रहता है, क्योंकि एक बार काट देने से उसी जगह दूसरा बांस उग जाता है और उसका राइजोम कई वर्षों तक चलता है।

अनुसन्धान के उपरान्त बांस का आधुनिक अपक्षरण उपयोग भी किया जा रहा है। बड़े बागों की सुरक्षा के लिए बांस की बाड़ लगाई जा रही है। इसकी जड़ें जटिल होने के कारण अपक्षरण रोकने के लिए, खेतों व जंगलों में मिट्टी बांधने के लिए इसकी खेती की जा रही है। बांस से कागज, रेशा जो कपड़े बनाने के लिए काम में आता है तैयार किया जाता है। ये इसके आधुनिकतम उपयोग हैं। बांस के पत्ते मवेशियों के खाने के लिए काम में लाए जाते हैं। लगभग 5 लाख के बांस प्रतिवर्ष विदेश भी जाते हैं। बांस के कोमल भाग को काटकर मुरब्बा भी तैयार किया जाता है जिसकी यूरोप में बहुत मांग है। कई आदिवासी बांस के बीजों को पीसकर आटे के रूप में व्यवहार करते हैं बांस से 'वंशलोचन' भी मिलता है जो कैलशियम का प्राकृतिक रूप है व दवाई बनाने के काम में आता है। पिछले कई वर्षों से 3-4 लाख रुपये का वंशलोचन बाहर भेजा जा रहा है। **डेन्ड्रोकालामुस जीजांटेअ** नामक बांस तरकारी व अचार बनाने के काम में भी आता है और बाहर भेजा जा रहा है। **डेन्ड्रोकालामुस हैमिल्टोनिई** नामक बांस 'एफ्रोडिसिक' है और इसका भी निर्यात होता है। भारत में बांस के जंगलों द्वारा लगभग 20-25 करोड़ रु० की आय होती है और लाखों लोगों को व्यवसाय मिलता है।

जंगलों में उगने वाले साल के बीज का तेल योरोप भेजा जा रहा है। यह तेल चाकलेट, टाफी, केक आदि के उद्योग में सर्वोत्तम माना गया है। तेजपात के टूटे हुए पत्तों व **एउकालीप्टुस** के पत्तों से तैयार किया गया तेल भी काफी मात्रा में बाहर भेजा जा रहा है और भारत में भी कोस्मेटिक उद्योग में काम आता है। इस प्रकार अरबों रु० का सामान हमारे जंगलों से प्राप्त होता है। अतः जंगलों को भारत की अर्थव्यवस्था का आधार शिला मानना अनुचित न होगा।

आजकल वन संरक्षण के उद्देश्य से राष्ट्रीय उद्यान बनाये गये हैं, जहां पर पौधों की जातियों के काटने पर रोक लगा दी गई है। चित्र में देवदार के उत्तरी भारत के जंगलों में जंगल काटने पर रोक लगाने के बाद की स्थिति दिखलाई गई है। जम्मू कश्मीर में 200 वर्ग किलोमीटर से भी अधिक में फैला हुआ डाचीगाम राष्ट्रीय उद्यान है। पंजाब में पिन्जौर का राष्ट्रीय उद्यान जो चण्डीगढ़ के पास है लगभग 100 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। हिमाचल प्रदेश में भी कई राष्ट्रीय पर्यटक अरण्य बनाए गए हैं जिनमें 4000 मीटर की ऊंचाई पर स्थित कूलू मनाली उद्यान, डलहौजी आरक्षित वन जो 2036 मीटर की ऊंचाई पर है तथा चम्बा (जो डलहौजी से 56 किलोमीटर है तथा घाटियों और तराई का क्षेत्र है) एवं चैल राष्ट्रीय उद्यान जो शिमला से 45 किलोमीटर है और 250 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्रफल में फैला हुआ है। उत्तर प्रदेश में लखीमपुर के पास

लगभग 500 वर्गकिलोमीटर में फैला हुआ दुधवा राष्ट्री उद्यान है। कौर्बेट राष्ट्रीय उद्यान शिवालिक पहाड़ी शृंखला में 500 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। कोसानी राष्ट्रीय उद्यान जो नैनीताल की तराई में स्थित है लगभग 100 वर्ग किलोमीटर से अधिक क्षेत्र में फैला हुआ है। राजस्थान में मुख्य तीन राष्ट्रीय उद्यान हैं—सरिस्का, भरतपुर व सवाई माधोपुर जो क्रमशः 210 वर्ग किलोमीटर, 150 वर्ग किलोमीटर एवं 125 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए हैं और कई झीलों से भी लगे हुए हैं। भरतपुर के राष्ट्रीय पक्षी उद्यान में कदम्ब के वृक्षों का सुहावना दृश्य देखते ही बनता है। मध्य प्रदेश में टामियां उद्यान पंचमढ़ी क्षेत्र में 200 वर्ग किलोमीटर में है जहां पौधों की कई असामान्य जातियां भी है। यह उद्यान पातालकोट घाटी के दोनों ओर स्थित है। कान्हा राष्ट्रीय उद्यान जो पर्यटकों के लिए रमणीक स्थान माना जाता है, 250 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यहां पर तुन एवं महागोनी जैसे वृक्ष सुरक्षित कर दिये गये हैं। इन दोनों वृक्षों की लकड़ी रजत ग्रेन मय होती है और अनेक शोभा वाले स्थानों को सजाने, कुर्सी मेज बनाने, पैनल लगाने आदि के काम में आती है। पहले लाखों रु० की लकड़ी बाहर भी भेजी जाती थी जिसके फलस्वरूप तुन के वृक्ष आज केवल पट्टियों में ही सीमित रह गये हैं जबकि 40 वर्ष पहले सम्पूर्ण उत्तरी-दक्षिणी एवं उत्तरी भारत में फैले हुए थे। मध्य प्रदेश में शिवपुरी और माधवा नामक राष्ट्रीय उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध हैं। शिवपुरी उद्यान ग्वालियर के पास लगभग 400 मीटर की ऊंचाई पर 160 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला हुआ है जिसके तीन ओर सुन्दर झीलें हैं। इस उद्यान के कुछ भागों में सेमल के लम्बे वृक्ष बहुतायत से पाये जाते थे। इस उद्यान को संरक्षण में लेने के बाद यहां की कई भारतीय जातियों को सुरक्षित किया जा सका है। माधवा उद्यान भी मध्य भारत में ग्वालियर के दक्षिण की ओर 112 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यहां पर 90-95 वर्ग किलोमीटर की एक बड़ी झील (जिसको 'भदथ्याकुण्ड' कहते हैं) इस उद्यान को तीन ओर से घेरे हुए हैं। बिहार राज्य में हजारीबाग व पालामऊ राष्ट्रीय उद्यान संरक्षण के अन्तर्गत आते है। हजारीबाग उद्यान लगभग 60 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है और यहां पौधों की अनेक जातियां सुरक्षित की गई हैं। पालामऊ राष्ट्रीय उद्यान रांची से 160 किलोमीटर है और इस उद्यान का केवल 26 वर्ग किलोमीटर ही आरक्षित किया गया है। लोहार डांगा के क्षेत्र में काफी मात्रा में साल के जंगलों को साफ किया जा रहा है। यहां वृक्षों के पास क्लेरोडेंड्रम की जातियां उगती देखी गई है जिनके फलस्वरूप पेड़ों की वृद्धि कम होती जा रही है तथा जहां जंगल कट चुका है वहां अगावे (घृतकुमारी) जैसे पौधों ने जगह ले ली है और सम्पूर्ण भूमि मरुस्थल जैसी हो चली है। आशा है कि शीघ्र पालामऊ राष्ट्रीय उद्यान के अंतर्गत चैनपुर लोहारडांगा, लतेहार आदि क्षेत्रों को ले लिया जायेगा। उद्यान के अन्तर्गत चैनपुर, लोहारडांगा, लतेहार आदि क्षेत्र ले लिया जाएगा।

इन जंगलों से प्रतिवर्ष लाखों रु० का 'लाख' प्राप्त होता है जो बाहर भी भेजा जा रहा है। 'लाख' कुसुम, बेर, पलास आदि वृक्षों पर कीट की क्रिया द्वारा बनता है और ये सभी प्रकार के वृक्ष इन क्षेत्रों में बहुतायत से मिलते हैं।

पश्चिम बंगाल में मुख्य राष्ट्रीय उद्यान जलदापारा 100 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। सिमलीपाल लगभग 900 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ विशाल राष्ट्रीय उद्यान है। इन दोनों उद्यानों में लम्बी घास पाई जाती है। जिससे अनेक ग्राम वासी खिलौने, टोकरियां, माला आदि बनाकर अपना जीवन उपार्जन करते हैं। इसी प्रकार की घास सिम्बोपोगोन, बेंत (कालामुस), बांस (बाम्बुसा) पिथ (साक्कारुम की जातियां) आदि की अनेक वस्तुएं बनाई जाती हैं। इन उद्यानों का प्राकृतिक सौंदर्य देखते ही बनता है जहां अनेकों घाटियां, लम्बे वृक्ष, चाय के बागान, घास के मैदान आदि हैं। बंगाल का सुन्दरबन क्षेत्र अब आरक्षित कर दिया गया है जहां की मेनग्रोव वनस्पति एक विशेषता है। इस प्रकार के पौधे चित्र में दर्शाए गए हैं। आविसेनिआ नामक पौधे दलदल को पाटते हैं तथा इसके फल से औषधीय तेल भी निकलता है। पशु व अन्य वन्य प्राणी फल को खाते भी हैं। इन पौधों द्वारा जलवायु के प्रकोप को भी रोका जा सकता है। चित्र में ऐसा 'डायरैमा' चित्र दिखाया गया है जहां पौधों के साथ-साथ ग्रामीण फल भी इकट्ठा कर रहे हैं। इस प्रकार के डायरैमा को जन संचार के लिए माध्यम भी बनाया जा सकता है।

उड़ीसा में एक छोटा राष्ट्रीय उद्यान बनाया गया है जो लगभग 30 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है और यह उद्यान अर्ध प्राकृतिक है क्योंकि बहुत सी पौधों की जातियां बाहर से लाकर उगाई गई हैं। इस नन्दन कानन में पुष्पीय वृक्ष व शाकीय पौधों की भरमार है तथा वसंत ऋतु में इस कानन का दृश्य अत्यन्त मनभावन लगता है और समस्त वातावरण सुगन्धित फूलों से सुहावना बन जाता है। असम में काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान वानस्पतिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि यहां पर पौधों की 100 से भी अधिक कुछ ऐसी जातियां हैं जो केवल इस क्षेत्र में ही सीमित हैं, विश्व के अन्य भागों में नहीं होती। कई सौ किलोमीटर में फैला यह उद्यान भारत के लिए वरदान है। अनुसंधान द्वारा पौधों की जातियों के 'जीन पूल' भी बनाये गये हैं और इन जातियों का मूल तत्व रूप सुरक्षित किया जा सका है। मानस राष्ट्रीय उद्यान भी 270 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ पूर्वी भारत का विशेष उद्यान है जहां पर अनेक प्रकार के लाभदायक पौधों का समावेश है। महाराष्ट्र व गुजरात में गिर, तरोबा एवं माधवन राष्ट्रीय उद्यान हैं जो क्रमशः 100, 110 व 104 वर्ग किलोमीटर में फैले हुए हैं।

इन उद्यानों में कम पानी में उगने वाले अनेक पौधे हैं जो सीमित वितरण के अन्तर्गत आते हैं। तरोबा उद्यान के मध्य में एक बड़ी झील भी है। कर्नाटक में 880 किलोमीटर में फैला हुआ प्राचीन बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान है यह नीलगिरि की तराई में मैसूर से 80 किलो मीटर की दूरी पर स्थित है इस उद्यान का अधिकांश भाग समतल है और समुद्र तल से 1000 मीटर की ऊंचाई पर है। यहां पर चन्दन के पेड़, लाल चन्दन (प्टेरोकार्पस सान्टालीनुस) व विदेशी एउकालीप्टुस आदि की जातियां बहुतायत में मिलती हैं जो इस राष्ट्रीय उद्यान के द्वारा संरक्षित कर दी गई है। तालगोघा का राष्ट्रीय उद्यान नया बनाया गया है जहां प्राकृतिक झरने आदि हैं, इसकी भूमि में काफी नमी है। यहां पर पौधों की अनेक सीमित वितरण वाली

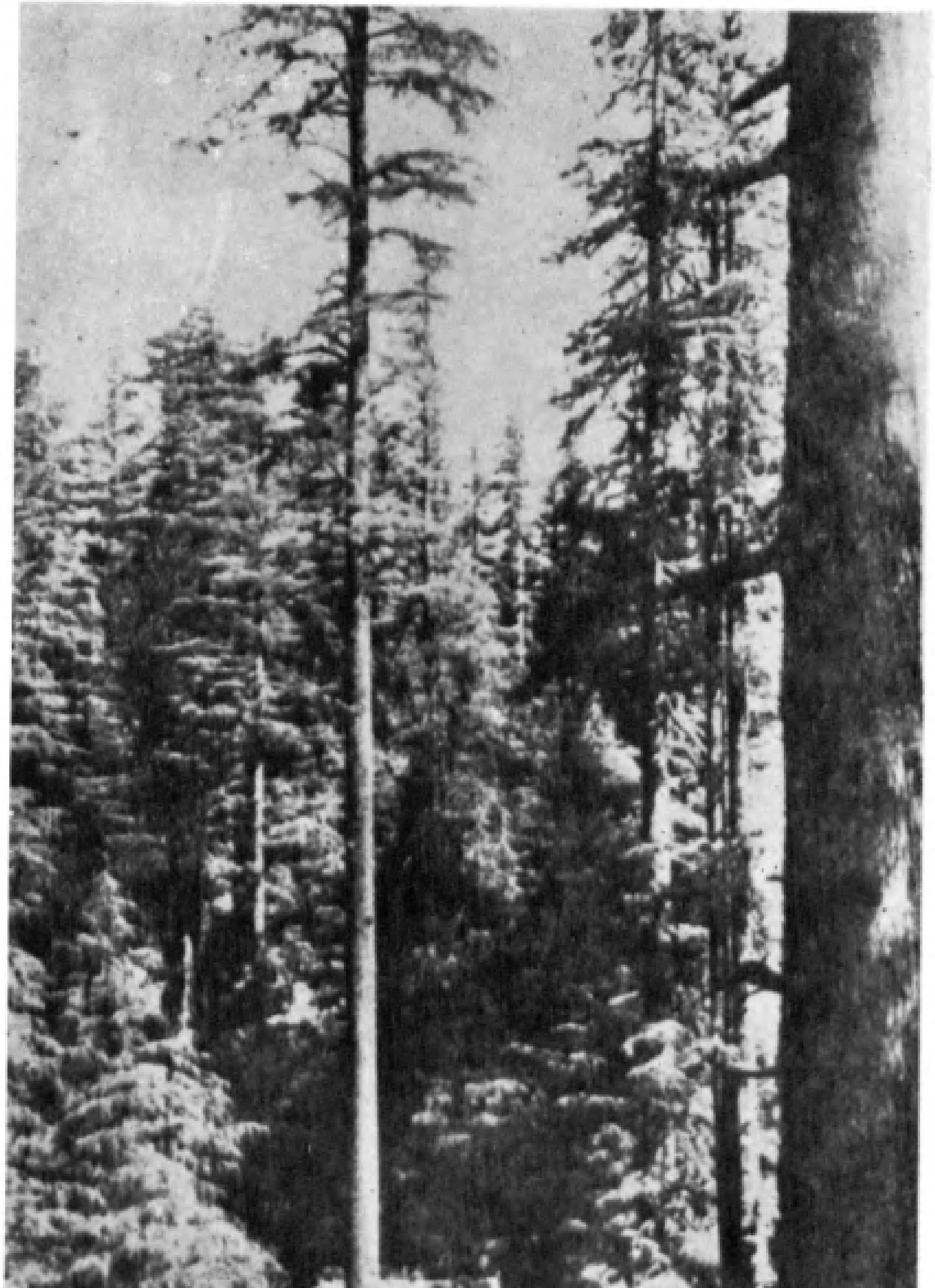

उत्तरी भारत के उद्यानों में देवदार के घने वृक्ष। यह स्थिति राष्ट्रीय उद्यानों में वृक्ष काटने पर रोक लगा देने के कारण बन सकी है।

देखें लेख सं 35

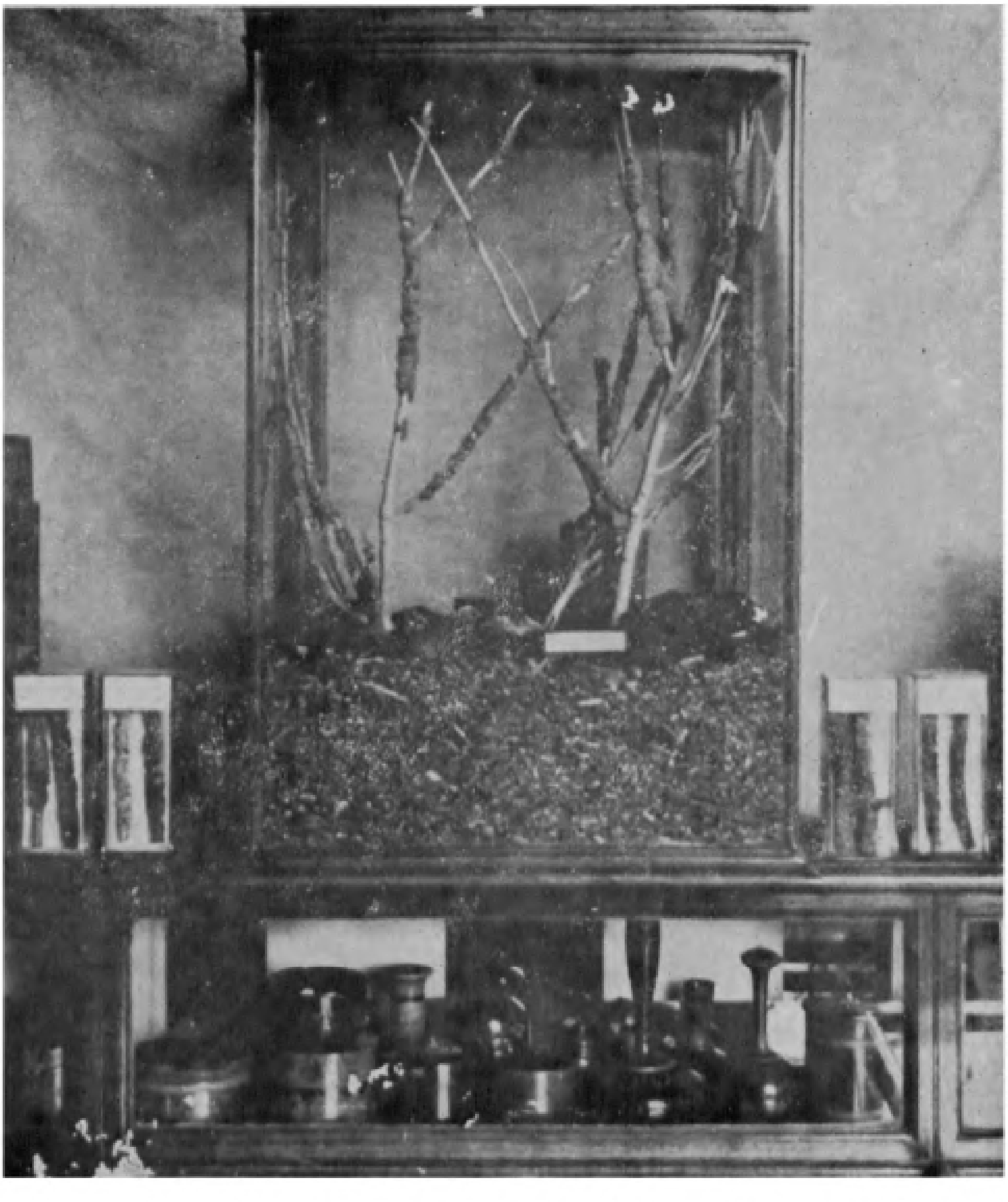

कुसुम के वृक्ष की टहनी पर लगे लाख की पर्तें। नीचे : लाख से बने कुछ बर्तन।
देखें लेख सं 35

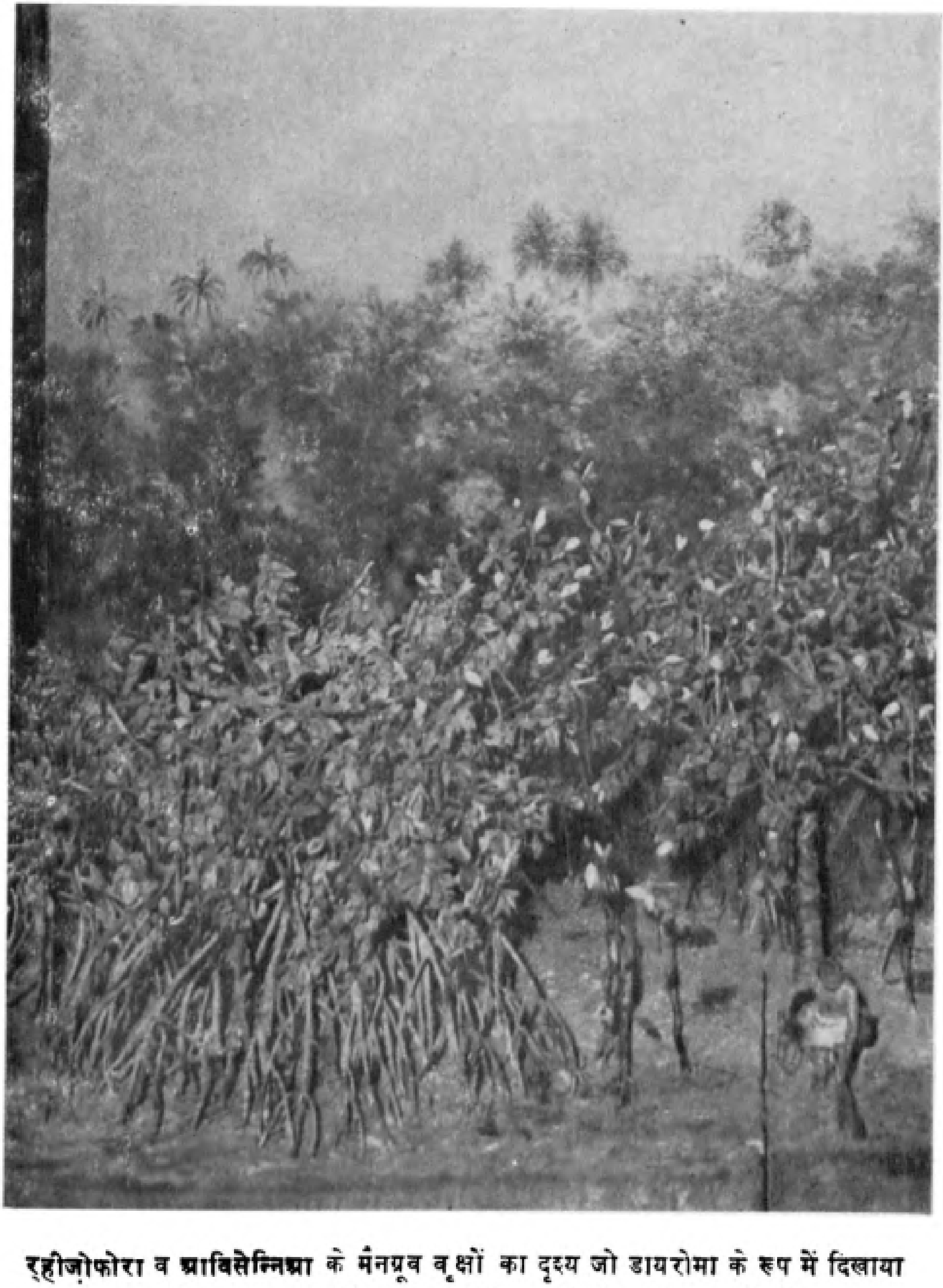

र्‌हीज़ोफोरा व आविसेन्निआ के मैनग्रूव वृक्षों का दृश्य जो डायरोमा के रूप में दिखाया गया है। ग्रामीण तेल निकालने के लिये फलों को इकट्ठा कर रहे हैं।

देखें लेख सं 35

विशाल वट वृक्ष का एक भाग

देखें लेख सं 40

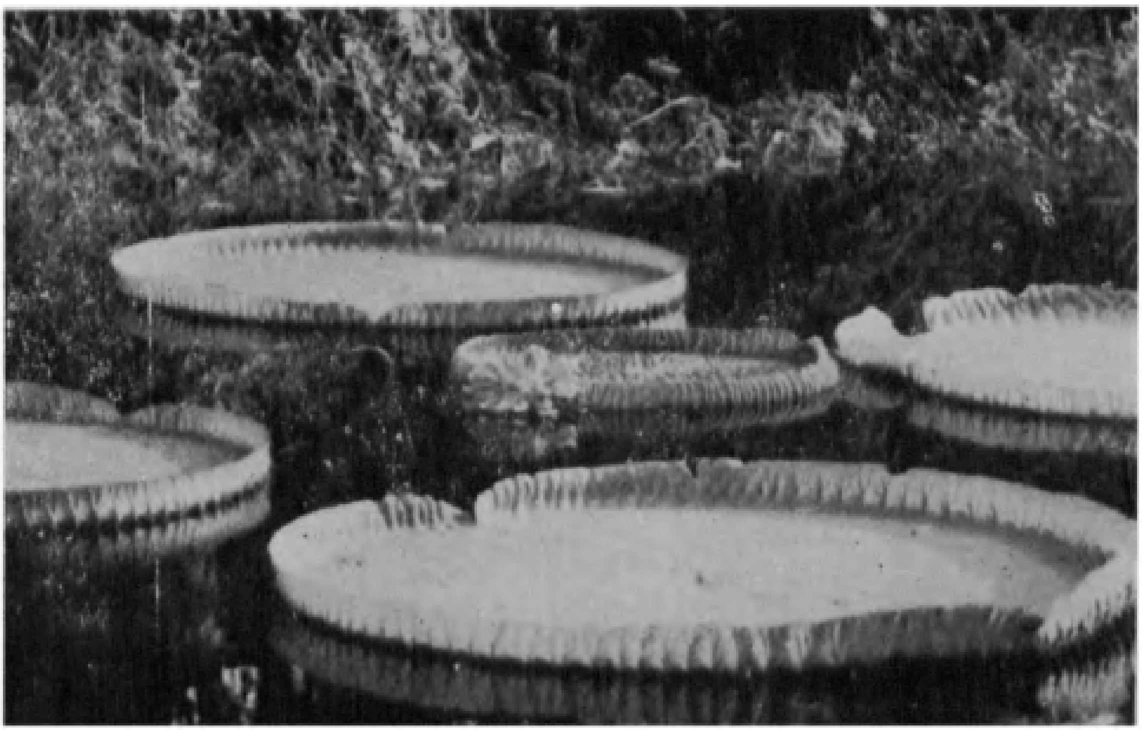

विशाल पत्तों वाली कुमुदिनी (जाइन्ट लिली)

किड स्मारक

देखें लेख सं 40

शाखिन ताड़

देखें लेख सं 40

कोउरोउपिटा गुइआनेंसिस का पुष्प । नागफन जैसे पुंकेसर से घिरा शिवलिंग जैसा जायांग बीच में स्पष्ट है ।

देखें लेख सं 40

घटपर्णी (नेपेन्थेस खासिआना)

देखें लेख सं 43

जातियां आरक्षित हो गई हैं। इस क्षेत्र की जलवायु को नियंत्रित करने में इन जंगलों का काफी योगदान है। तमिलनाडू में पाइन्ट कालीमेर का छोटा सा राष्ट्रीय उद्यान हैं जहां जीलिआ जैसी पौधों की कई मुख्य जातियां आरक्षित की गई है। केरल में 'पेरियार बाघ संरक्षण क्षेत्र' नामक 700 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ राष्ट्रीय उद्यान है। यहां अनेक उष्णीय जलवायु वाली पौधों की जातियां सुरक्षित की गई हैं। मधुमलाई नामक एक अन्य राष्ट्रीय उद्यान भी केरल में है जो 300 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है तथा देश के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित है। यहां पर काजू (अनाकार्डिउम) के अनेक वृक्ष हैं और समुद्र तट पर कई प्रकार के महत्वपूर्ण शैवाल की जातियां भी पाई जाती हैं।

उपरोक्त वर्णन में भारत के राष्ट्रीय उद्यानों में प्रमुख उन उद्यानों का उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा पौधों की अनेक जातियों का संरक्षण किया जा सका है।

इन उद्यानों द्वारा पर्यटकों के लिए काफी शिक्षा सामग्री बनाई जा सकती है जिससे कि पौधों के संरक्षण को योजना की और कारगर बनाया जा सकता है। पौधों की अनेक लुप्त प्राय: जातियों को संग्रहालयों में रखा जा सकता है जिससे जन साधारण में उनकी उपयोगिता के प्रति चेतना उत्पन्न की जा सके। फलस्वरूप कुछ पौधों को घरों पर भी उगाने जैसी व्यवस्था की जा सके और पौधों की जातियों को समूल नष्ट होने से बचाया जा सके। कई प्रकार के फोल्डरों, लेखों और समाचार पत्रों द्वारा भी जन समुदाय को पौधों द्वारा पर्यावरण-दूषण की रोकथाम, जलवायु का संतुलन तथा आक्सीजन का वायुमण्डल में उचित अनुपात बनाये रखने सम्बन्धी क्षमता, भूमि अपक्षरण को रोकने में उपयोगिता तथा पौधों के आर्थिक महत्व से अवगत कराया जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नही कि मानव को सुरक्षा एवं उसका जीवन बिना पौधों के दूभर ही नही अपितु असम्भव भी हो जायेगा।

36. भारत में नृवनस्पति विज्ञान का अध्ययन

वीना चन्द्रा

आदिवासियों एवं गाँववासियों के साथ पेड़-पौधों का सम्बन्ध ही नृवनस्पति है। ये पौधों के अज्ञात उपयोगों को उजागर करने में लाभदायक हैं। एथनोबोटनी (नृवनस्पति विज्ञान) शब्द का सबसे पहले प्रयोग हार्स बर्गर ने 1896 में किया था। शुल्ट्स (1962) के अनुसार नृवनस्पति आदिवासी समाज तथा पौधों द्वारा उसके चारों ओर बनाये गये पर्यावरण के बीच का पारस्परिक सम्बन्ध है। साधारण भाषा में नृवनस्पति, वनस्पति शास्त्र का मानवशास्त्रीय मार्ग है। यह एक बहुमुखी अध्ययन है जिसमें कई रुचिपूर्ण एवं उपयोगी पहलू जैसे वनस्पति विज्ञान, इतिहास, मानव शास्त्र, संस्कृति एवं साहित्य का समावेश है। नृवनस्पति शास्त्री प्राय: निम्न जानकारी इकट्ठी करते हैं।

(1) **घरेलू या जंगली जानवरों से सम्बन्धित पौधे :—**

वे पौधे जो प्राय: मवेशियों, औषधियों, खाद्य अथवा पालतू जानवरों के चारे के रूप में प्रयोग किये जाते हैं।

(2) **पौधे जो खाने के काम आते हैं :—**

इसमें सब्जी एवं फल चाहे वे रोपित हों अथवा स्वजात हों।

(3) वे पौधे जो चर्बी के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं या मसालों के रूप में काम में आते हों।

(4) वे पौधे जो शर्बत-शराब बनाने अथवा इन्हें सुगन्धित करने के काम आते हों।

(5) घरेलू औजार एवं फर्नीचर बनाने के काम आने वाले पौधे।

(6) ईंधन एवं खाद के रूप में इस्तेमाल होने वाले पौधे।

(7) कपड़े बनाने अथवा शरीर ढकने योग्य पौधे।

(8) सौन्दर्य बढ़ाने में उपयोगी पौधे।

(9) रेशे के लिए इस्तेमाल आने वाले पौधे।

(10) मनोरंजन अथवा औजार, खिलौने एवं लाठी इत्यादि बनाने के काम आने वाले पौधे।

(11) औषधि के रूप में प्रयोग आने वाले पौधे।

भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है जिसमें आदिवासी भी काफी संख्या में हैं जो जंगलों के भीतरी भागों में रहते हैं। मध्य एवं पूर्वी भारत में ही काफी संख्या में आदिवासी रहते हैं। भारत के विभिन्न आदिवासियों की भिन्न-भिन्न परम्परायें, मान्यतायें आवश्यकतायें संस्कृति एवं पेड़-पौधों की विविधता आदि के वर्णन अनेक आदिवासी लोक-कथाओं में मिलते हैं।

भारत में सर्वप्रथम नृवनस्पति विज्ञान का कार्य प्रारम्भ करने वालों में जानकी अम्माल हैं। उन्होंने दक्षिण भारत के कुछ आदिवासियों के निर्वाह के लिये उपयोगी पौधों का अध्ययन किया। सन् 1960 से जैन ने मध्य भारत के आदिवासियों में गहन क्षेत्रीय अध्ययन शुरू किया। इस विषय में अनेक सभायें तथा गोष्ठियां आयोजित हुई और इनमें पढ़े गये अनेक शोध-पत्रों को जैन ने संकलित एवं सम्पादित किया है। विभिन्न संस्थाओं एवं विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के विभिन्न क्षेत्रीय कार्यालयों में भी नृवनस्पति पर अध्ययन हो रहे हैं। हाल ही में पर्यावरण विभाग ने इस तरह के अध्ययन के लिए एक "आल इण्डिया कोआर्डिनेटेड रिसर्च प्रोजेक्ट आन एथ्नोबायोलॉजी की शुरुआत की है। इस प्रोजेक्ट के अन्तर्गत भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के चार कार्यालयों (कलकत्ता, शिलांग, कोयम्बटूर एवं पोर्ट ब्लेयर) में कार्य हो रहा है। अभी तक भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने कुछ स्थानों जैसे अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, आन्ध्र प्रदेश, अरुणांचल प्रदेश, बिहार, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मनीपुर, मेघालय, उड़ीसा, राजस्थान तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश एवं पश्चिम बंगाल के आदि-वासियों—असुर, भील भुनजी, चेंचुस, गारो, गोंड, नोशी, अपातानी, खासी, जैनतिया, नागा, निकोबारी, ओंग, खोंड, संनल एवं सोम्पेन का अध्ययन किया। अभी तक विभिन्न उपयोगों में आने वाले लगभग 2000 पौधों की जानकारी एकत्र हो चुकी है।

भारत में जंगली पौधों का सर्वेक्षण करने से ज्ञात होता है कि यहां पाये जाने वाले सभी जाति के पेड़-पौधों में से करीब एक तिहाई आदिवासियों अथवा ग्रामीणों द्वारा एक या दूसरे रूप में प्रयोग किये जाते हैं। मध्य भारत, पश्चिमी घाट एवं हिमालय के विशाल क्षेत्र में विभिन्न आदिवासियों का बसेरा है जो अपनी संस्कृति, धर्म, स्थानीय मान्यताओं, सामाजिक प्रतिबन्ध एवं भाषा इत्यादि में भिन्न हैं। भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र में आदिवासियों का काफी प्रतिशत होने के कारण यह क्षेत्र नृवनस्पति ज्ञान के सम्बन्ध में काफी समृद्ध है। अकेले अरुणांचल प्रदेश में ही करीब 20 जनजातियां एवं 80 उपजनजातियां हैं किन्तु किसी एक पर भी विस्तार पूर्वक अध्ययन नहीं हुआ है।

नृवनस्पति पर शोध की विधियां :—

नृवनस्पति को प्रायः आदिवासियों द्वारा कुछ पौधों के औषधि गुणों का ज्ञान ही माना जाता है किन्तु वास्तव में अपने पूर्ण रूप में इसके अन्तर्गत मानव शास्त्र, समाज शास्त्र, वनस्पति विज्ञान तथा औषधि एवं व्यावहारिक वनस्पति शास्त्र आते हैं।

नृवनस्पति में शोध के कुछ विशिष्ट तरीके निम्न हैं।

(1) **विभिन्न क्षेत्रों का सर्वेक्षण**—विभिन्न क्षेत्रों में जाकर कुछ विशिष्ट एवं विश्वसनीय स्थानीय लोगों द्वारा सूचना एकत्रित की जाती है। इस प्रकार के अध्ययन में पौधों का प्रयोग आने वाला भाग जैसे जड़, तना, पत्ती इत्यादि का इकट्ठा करना, उसका प्रक्रम, औषधि बनाना, उसकी मात्रा आदि की जानकारी प्राप्त की जाती है। पौधों का स्थानीय नाम भी लिखा जाता है एवं हरबेरियम के लिए नमूने भी इकट्ठे किये जाते हैं।

(2) **साहित्य** :—नृवनस्पति ज्ञान का दूसरा स्रोत प्राचीन या अन्य अप्रकाशित, छपे या हस्त लिखित साहित्य हैं। काफी पौधे साहित्य में अपने प्रचलित नाम से पाये जाते हैं। यह भी देखा गया है कि काफी पौधों की पहचान आज भी संदेहास्पद एवं विवादास्पद है। उदाहरण के तौर पर "सोम"। करीब 20 विभिन्न पौधों को "सोम" कहा जाता है। इसी प्रकार ब्राह्मी, पुनर्नवा, जटामांसी, कल्प वृक्ष भी आज तक विवादास्पद ही हैं। इस तरह के पौधों की वैज्ञानिक पहचान जानने में सबसे बड़ी कठिनाई है प्राचीन साहित्य में उनकी उचित व्याख्या एवं चित्रांकन का अभाव। पौधों के स्थानीय नाम इतने वर्षों में इतने बदले हैं कि उनके प्राचीन नामों का वर्तमान नामों से सामंजस्य कर पाना मुश्किल है।

(3) **पादपालय एवं संग्रहालय**—हरबेरियम पत्र, संग्रहालयी नमूने तथा उनके ऊपर लिखी टिप्पणी भी नृवानस्पतिक सूचना के बहुत अच्छे स्रोत हैं। इस तरह के आंकड़ों के कई लाभ हैं। चूंकि इस तरह की सूचना पौधों के साथ ही मिलती है अतः उनके पहचान में गलती की आशंका नहीं रहती। भारत में अग्रवाल एवं साहा[1] ने भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता के पादपालय से 65 औषधीय पौधों का अभिलेख किया है तथा जैन एवं दाम[2] ने इसी प्रकार का कार्य कांजीलाल पादपालय से किया है।

(4) **पुरातात्विक अवशेष** :—पुरातात्विक अवशेष भी नृवानस्पतिक अध्ययन का एक स्रोत हैं। भारत इस तरह की मूर्तियों का खजाना है। ये मूर्तियां पौधों की खोज करने में काफी सहायक हैं। हाल ही में सियोले[3] ने सांची के स्तूप आदि के ऐसे पौधों को पहचानने की कोशिश की है।

---

1. अग्रवाल वी. एल. एवं एस. साहा (1968), अनरिपोर्टेड मेडिसिनल प्लान्ट्स आफ इण्डिया **जर्नल आफ आन्ध्र प्रदेश एकेडमी आफ साइंसेज** 2 : 21-33.
2. जैन एस. के. एवं एन. दाम (1979), सम इथ्नो बोटनिकल नोट्स फ्रोम नार्थ इस्टर्न इंडिया। **इकोनोमिक बोटनी,** 33 : 52-56.
3. सियोले. आर. वी. (1976) प्लान्ट्स रिप्रेजेण्टेड इन एन्सियेन्ट इण्डियन स्कल्प्चर्स, **जीओफाइटालॉजी** 6 : 15-26

भारतीय आबादी की काफी संख्या गांवों, जंगलों के भीतरी भागों और शहरों में भी कभी-कभी घरेलू औषधियों पर ही निर्भर करती है अतः यह आवश्यक है कि इस प्रकार की जानकारियां जल्द से जल्द इकट्ठी की जायें और वैज्ञानिक परीक्षण के बाद पारस्परिक औषधि-प्रणाली में इस्तेमाल की जायें ।

नृवनस्पति शोध एक नया क्षेत्र है और यदि इस क्षेत्र का पूर्ण एवं सही ढंग से अध्ययन किया जाये तो अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण नतीजों पर पहुंचना सम्भव होगा जिनसे आदिवासियों सम्बन्धी कार्य करने वालों, पुरातत्त्व वेत्ता, मानवशास्त्री, वनस्पति शास्त्री इत्यादि को तथा अंत में औषधिविज्ञों को काफी सहायता मिलेगी ।

37. भारत में पाये जाने वाले साल-कुल के वृक्ष

प्रकाश कुमार तिवारी

कुछ वृक्ष अपनी विशेष उपयोगिताओं के कारण अपने कुल को बड़ा ही विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। ऐसा ही एक कुल है डीप्टेरोकार्पासी, जिसका मानव समाज की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

ब्लूम ने सर्वप्रथम 1825 ई० में इस कुल का नामकरण किया। इस कुल की विशिष्ट उपयोगिताओं के कारण अनेक वैज्ञानिकों का ध्यान इसके अध्ययन की ओर गया और परिणामस्वरूप इसके 16 वंशों और करीब 580 जातियों का पता चल सका। इस कुल को तीन उपकुलों में बांटा गया है जो क्रमश: विश्व के तीन महाद्वीपों-अफ्रीका अमेरिका और एशिया में पाये जाते हैं। वैसे तो अफ्रीका और अमेरिका में पाए जाने वाले उपकुलों मोनोटोइडी और पाकाराइमोइडी के क्रमश: दो वंश (**मोनोटेस, मारकुईसिआ**) एवं एक वंश (**पाकाराइमेआ**) ही इन महाद्वीपों में पाए जाते हैं परन्तु एशिया में पाये जाने वाले उपकुल डीप्टेरोकारपोइडी के तेरह वंश (**उपुना, अनीसोप्टेरा, कोटीलेलोबियम, डीप्टेरोकार्पुस, ड्रीओबालानोप्स, नेओबालानोकार्पुस, पाराशोरेआ, वाटेरिआ, वाटेरिऑप्सिस, वाटिका, शोरेआ, स्टेमेनोपोरस, होपेआ**) इस महाद्वीप के गर्म और आर्द्र जलवायु वाले देशों में मिलते हैं। सुमात्रा, मलाया, बोर्नियो और फिलीपाइन्स में ये प्रचुरता से मिलते हैं।

डीप्टेरोकार्पासी कुल की उत्पत्ति के बारे में वैज्ञानिकों का विभिन्न मत है। कुछ वैज्ञानिकों का कहना है कि अफ्रीका महाद्वीप के जंगलों में इसकी दो शाखाओं का जन्म हुआ जिनमें से एक शाखा अमेरिका महाद्वीप की ओर और दूसरी एशिया महाद्वीप में भारत, श्री लंका, मलेशिया होते हुए बोर्नियो आदि देशों तक पहुंचकर पूर्णतया विकसित हो गई परन्तु अनेक वैज्ञानिक इस बात से सहमत हैं कि इस कुल की उत्पत्ति मलेशिया और बोर्नियो आदि देशों के घने जंगलों में हुई। जहां से ये भारत, श्रीलंका होते हुए अफ्रीकी महाद्वीप पहुंचे। यद्यपि जीवाश्म अवशेषों के अध्ययन के आधार पर वितरण सम्बन्धी ये दोनों मान्यताएं सही प्रतीत नहीं होती।

डीप्टेरोकारपोइडी उपकुल के पौधे हमारे देश में माइयोसिन काल में आए और तब से अब तक के पारिस्थितिक परिवर्तनों के फलस्वरूप इनका साम्राज्य हमारे वर्तमान जंगलों में 5 वंशों और करीब 31 जातियों के रूप में स्थित है। ये पांच वंश हैं—**डीप्टेरोकार्पुस, वाटेरिआ, वाटिका, शोरेआ और होपेआ।**

देशजता इस कुल की अपनी एक विशेषता है जिसका प्रदर्शन भारत में पाई जाने वाली करीब 52 प्रतिशत सीमित क्षेत्री जातियों से होता है। इसके अलावा श्री लंका में पाया जाने वाला एक वंश **स्टेमेनोपोरुस**, अफ्रीका और अमेरिका में पाया जाने वाला एक-एक उप-कुल, मोनोटोइडी और पाकाराइमोइडी, जो क्रमशः श्री लंका, अफ्रीका और अमेरिका में ही सीमित हैं—इस बात के साक्षी हैं। भारत में इनकी जातियां दक्षिण भारत (आन्ध्र प्रदेश, केरल, कर्नाटक और तमिलनाडु) उत्तर-पूर्व भारत (असम, अरुणांचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, मणिपुर और त्रिपुरा) तथा अंडमान द्वीप समूह में पाई जाती हैं। प्रायः इन क्षेत्रों में पाई जाने वाली जातियां अपने-अपने क्षेत्रों में ही सीमित हैं। इनकी कुछ जातियां बंगाल राज्य में पाई जाती हैं। इनकी एक मुख्य जाति **शोरेआ रोबुस्टा** 'साल' देशजता के नियम के विरुद्ध, भारत के अधिकांश राज्यों जैसे कि असम, आन्ध्रप्रदेश, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, पंजाब, बिहार, बंगाल, मध्यप्रदेश, मेघालय, सिक्किम, त्रिपुरा आदि में मिलती है।

इस उपकुल के वृक्ष, देश के विभिन्न भागों में सीमित रहते हुए भी अपनी विशिष्ट उपयोगिताओं के कारण आम जन-जीवन के अंग रहे हैं। शुरू से ही भारतीय वन विभाग अपनी विभिन्न शाखाओं द्वारा दक्षिण भारत में 'बोगी' उत्तर और मध्य भारत में 'साल' उत्तर पूर्व भारत में 'होलोंग' और अंडमान द्वीप समूह में 'गर्जन' की विशेष निगरानी रखता आया है। ये 'बोगी', 'साल', 'होलोंग' और 'गर्जन' क्रमशः **होपेआ पार्वीफ्लोरा, शोरेआ रोबुस्टा, डीप्टेरोकार्पुस ग्रासीलिस, डीप्टेरोकार्पुस ग्रांडीफ्लोरुस** के ही तो स्थानीय नाम हैं।

मुख्यतः इन वृक्षों के तनों से प्राप्त लकड़ी का प्रयोग मकानों की खिड़कियां, दरवाजे आदि बनाने में किया जाता है। घरों की साज-सज्जा का सामान जैसे पलंग, मेज, कुर्सी वगैरह भी इन्हीं वृक्षों की लकड़ी से बनता है। समुद्रों में चलने वाले जहाज और छोटी नदियों में चलने वाली नौकाएं भी इनकी लकड़ियों से बनाई जाती हैं। रेलवे स्लीपर के लिए बहुधा इन वृक्षों को चुना जाता है। अपने देश की 50 प्रतिशत रेलवे स्लीपर, साल जाति के वृक्षों से ही प्राप्त की जाती है। कुछ वृक्ष जैसे **डीप्टेरोकार्पुस बोर्डीलोनी** और **वाटेरिआ इन्डिका** का उपयोग मुख्यतः माचिस बनाने में किया जाता है। प्लाईवुड के कारखानों में **डीप्टेरोकार्पुस रेटुसुस, वाटेरिआ इन्डिका** और **शोरेआ आसामिका** का उपयोग किया जाता है।

'साल' हमारे देश के उपयोगी वृक्षों में अग्रगण्य है। उपर्युक्त उपयोगिताओं के अतिरिक्त इसके छाल (टैनिन निकालने के बाद) का प्रयोग बोर्ड बनाने में किया जाता है। इससे बाजार में बिकने वाले गोंद भी तैयार किए जाते हैं। इन छालों से निकले टैनिन का प्रयोग टैनिन कारखानों में बड़े पैमाने पर किया जाता है। छाल से लाल और काला रंग भी प्राप्त किया जा सकता है। असम, उड़ीसा और बंगाल आदि राज्यों में इसकी पत्तियों का प्रयोग बीड़ी बनाने में होता है। साल के फूल से निकले शहद और इसके बीज (तलने के बाद) का प्रयोग मनुष्य कुछ हद तक आहार में करता है। इन बीजों से निकले तेल का प्रयोग बहुतायत से साबुन बनाने में, चाकलेट बनाने में और घी के निर्माण आदि में होता है। साल के वृक्षों का

प्रयोग मुख्यतः बिहार और असम आदि राज्यों में तासार के कीड़े पालने में किया जाता है। तासार सिल्क के कपड़े बनाने में, विश्व में भारत का तीसरा स्थान है। अतः यह कहना उचित ही है कि इस कुल के पौधे कपास के पौधों की तरह सीधे तो न सही पर परोक्ष रूप से ही मानव समाज की दूसरी प्राथमिक आवश्यकता (कपड़ा) की पूर्ति में अपना सहयोग देते हैं।

शोरेआ वंश की ही एक अन्य जाति **शोरेआ राक्सबर्घिई** का प्रयोग लाख के कीड़े पालने में किया जाता है।

डीप्टेरोकारपोइडी उपकुल की प्रायः सभी जातियों से रेज़िन की प्राप्ति होती है, पर इनमें से कुछ मुख्य जातियां जैसे **वाटेरिआ इन्डिका, शोरेआ रोबुस्टा** (ओलियो रेज़िन) और **होपेआ ओडोराटा** आदि से प्राप्त रेज़िन का प्रयोग अधिकांशतः वार्निश बनाने में किया जाता है।

कुछ भारतीय डीप्टेरोकार्प जातियां, मनुष्य जाति की आम बीमारियों के निवारण में, अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। जैसे **डीप्टेरोकार्पुस अलाटुस, वाटेरिआ इन्डिका** और **होपेआ ओडोराटा** के छाल का प्रयोग र्‍यूमैटिस्म, कफ, एनीमिया, अल्सर, डिसेन्ट्री, कान और मूत्र सम्बन्धी बीमारियों में किया जाता है। **डीप्टेरोकार्पुस कोस्टाटुस, वाटेरिआ इन्डिका, शोरेआ रोबुस्टा, शोरेआ तुम्बुग्गाइआ, होपेआ ओडोराटा** आदि के रेज़िन का प्रयोग अल्सर, दस्त, पेचिश, गोनोरिया, त्वचा की बीमारियों आदि में होता है। इसी तरह कई वृक्ष जैसे **डीप्टेरोकार्पुस अलाटुस, डी० इन्डिकुस, डी० टर्बिनाटुस,** डी० **ग्रासीलिस** आदि से प्राप्त ओलियो रेज़िन का प्रयोग गोनोर, गोनोरिया, र्‍यूमैटिस्म, अलसर, कृमि जैसी बीमारियों में होता है।

उपर्युक्त सारी बातें इस बात की द्योतक हैं कि साल कुल के पौधों का हमारे जीवन में कितना महत्व है। द्वितीय महायुद्ध के समय इन वृक्षों का भरपूर प्रयोग हुआ। इसी दौरान टायरमैन महोदय ने दक्षिण भारत (कर्नाटक और केरल) में कई जगह इनके उद्यान लगाये जो आज भी "टायर मैन प्लॉट" के नाम से जाने जाते हैं; हमें भी इन बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि अपने व्यवहार के लिए हम इन वृक्षों को जितना काटें उससे अधिक इन्हें लगायें ताकि आने वाले समय में हमें प्रकृति का प्रकोप न सहना पड़े और प्रकृति में इनका संतुलन बना रहे।

इस कुल के वृक्षों की ये विशेषता है कि जब तक ये वृक्ष अपनी पूरी ऊंचाई न प्राप्त कर लें, तब तक फल या फूल नहीं देते और देते भी हैं तो काफी सीमित समय के लिए। अतः अक्सर लोग पेड़ों के नीचे गिरे पत्ते और फलों से उनकी पहचान करने की कोशिश करते हैं जो सर्वथा गलत है। भारतीय सर्वेक्षण विभाग की विभिन्न शाखाओं में रखे इन जातियों के पादप संग्रह द्वारा वृक्षों की सही पहचान करने में मदद मिली है। इस विभाग के संरक्षण में कलकत्ता के भारतीय वनस्पति उद्यान में इनकी कुछ जातियों के वृक्ष जैसे **डीप्टेरोकार्पुस अलाटुस, शोरेआ रोबुस्टा, शोरेआ राक्सबर्घिई, होपेआ ओडोराटा** आदि लगे हुए हैं जिनसे इस कुल के सदस्यों के अध्ययन में सहायता मिलती है। विभाग में नये सिरे से भारतीय डीप्टेरोकार्प जातियों का सर्वेक्षण भी किया जा रहा है, जिससे हमें इस कुल के वृक्षों के बारे में और अधिक विस्तृत जानकारी मिल सकेगी।

38. भारत में गोधूमि कुल के उपयोगी पौधे

गिरिजा प्रसाद राय

गोधूमि कुल के पौधे संसार में विस्तृत रूप में फैले हुए हैं। इन्हें साधारण भाषा में 'घास' कहते हैं। इस कुल के पौधे दलदल, समुद्र तट, रेगिस्तान, ऊसर भूमि, अम्लीय भूमि तथा विषुवत् प्रदेश से लेकर बर्फ से ढके ध्रुवों तक फैले हैं।

जातियों की संख्या के आधार पर गोधूमि कुल संसार के पुष्पी पौधों में तीसरे नम्बर पर आता है। भारतवर्ष में उपयोगिता की दृष्टि से इस कुल का प्रथम स्थान है। हमारे देश में लगभग 240 वंशों की घास प्राकृतिक रूप से आती है तथा 77 वंशों की खेती की जाती है। भारत में करीब 1200 जातियां पाई जाती हैं। प्रकाशित साहित्य, हरबेरियम रिकार्ड तथा लेखक के स्वयं अनुभव से प्रतीत होता है कि उत्तरी भारत से अधिक जातियां दक्षिण भारत में तथा पश्चिम से अधिक जातियां पूर्वी भारत में पाई जाती हैं। एक राज्य में भी जैसे राजस्थान में या उत्तर प्रदेश में पश्चिमी क्षेत्र की तुलना में पूर्वी भाग में घासों की अधिक जातियां पाई जाती हैं।

मनुष्य के विकास तथा सभ्यता पर गोधूमि कुल का प्रभाव महत्वपूर्ण रहा है। कुछ जन्तुओं का जीवन अस्तित्व ही इस कुल के पौधों के साथ जुड़ा है। घासों से जीवन की अनेक उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति जैसे भोजन, दवा, मकान बनाने के फूस इत्यादि प्रारम्भिक काल से ही प्राप्त होते रहे हैं। बहुत सी चिड़ियां व जानवर घासों के बिना अपने अंडे व बच्चे नहीं पाल सकते। इनमें बन मुर्गी, मोर, बतख, कबूतर, हिरन, सियार, लोमड़ी, जंगली कुत्ते, भेड़िया, खरगोश आदि हैं।

यद्यपि एक भी घास की जाति ऐसी नहीं प्रतीत होती है जिसका कोई प्रयोग न हो फिर भी यहां केवल अधिक उपयोगी जातियों का उल्लेख किया जायेगा।

मनुष्य के भोजन के काम आने वाली घासें

धान, गेहूं, जौ, जई, राई, ज्वार, बाजरा, मक्का, मडुआ या रागी, टांगुन (**सेटारिआ इटालीका**)। यह सभी पौधे जलवायु तथा मिट्टी के आधार पर भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उगाये जाते हैं। इन मुख्य घासों के अतिरिक्त और भी कुछ घासें दाने के लिए उगाई जाती हैं, जिनका प्रयोग सीमित है। कुटकी (**पानीकम मीलिआसेउम**) मध्य प्रदेश के आदिवासी, चावल की तरह उबाल कर खाते हैं। **डीजीटारीआ क्रूसीआटा** खासी पहाड़ी पर दाने और चारे के लिए उगाते हैं। कोदों (**पास्पालुम स्क्रोबीकुलाटुम**) दक्षिण भारत में खाने के लिए उगायी जाती है। **एकी-**

लम्पा (हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस) : जंगली घास

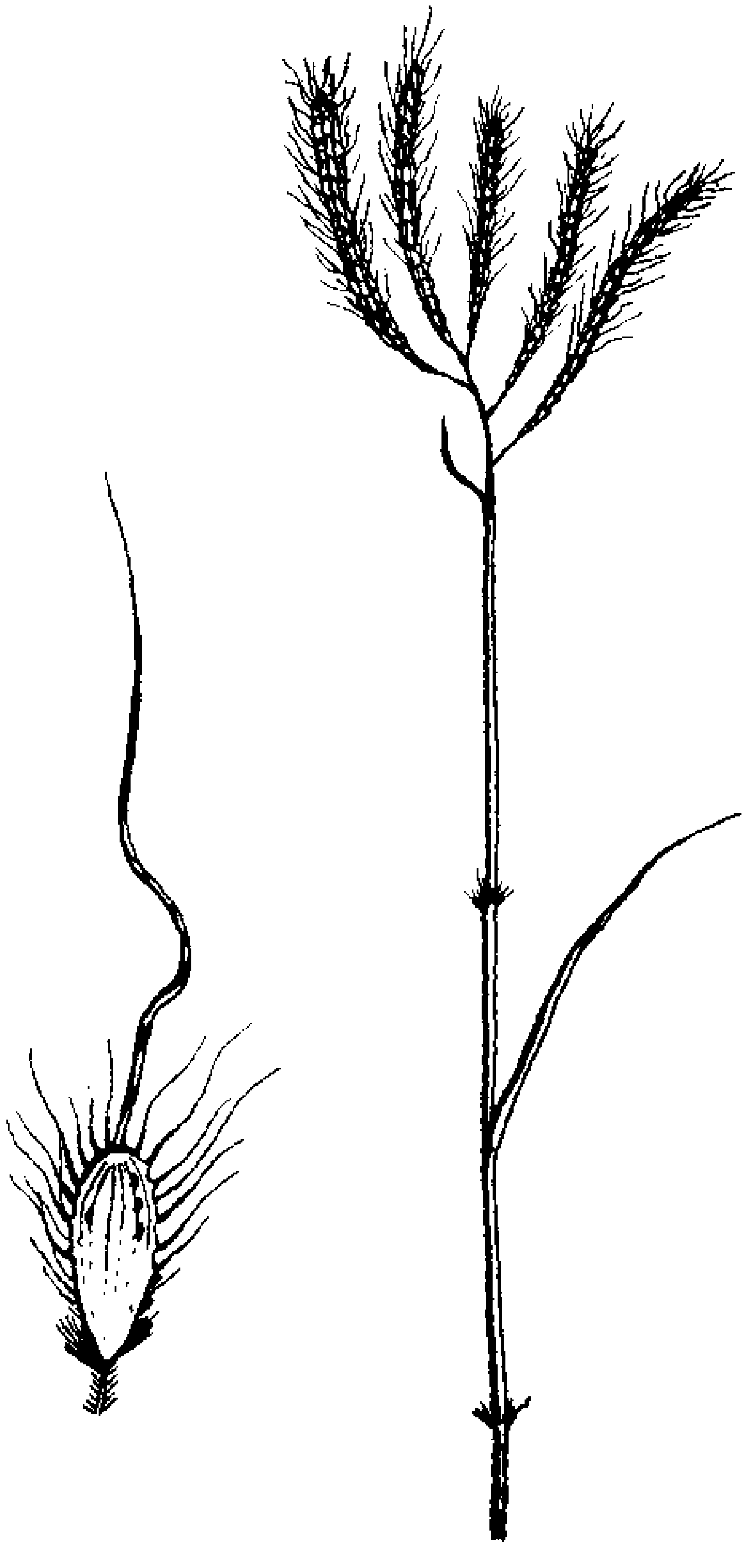

जनेवर (डीकान्थियम आन्नुलाटुम) : चारा के लिए

सोक्लोआ फ्रूमेन्टासेआ घास उत्तरी पूर्वी भारत में उगाई जाती है। इसके दाने से मदिरा बनाते हैं। इन घासों के अतिरिक्त अकाल के समय **पानीकुम मीलिआगे, एचीनोक्लोआ, ब्राची-आरीआ डेफ्लेक्सा** की जातियों के दाने खाने के काम आते हैं।

गन्ने के तने से रस निकालकर गुड़ और चीनी भी बनाते हैं तथा पीते भी हैं। पश्चिमी देशों में मक्का से चीनी और तेल निकालते हैं। कुछ देशों में जैसे चीन, जापान, कोरिया इत्यादि में बांस के नये तनों की भाजी तथा अचार बनाते हैं। चावल की शराब जापान में साकी के नाम से प्रसिद्ध है। पूरे यूरोप, अमेरिका तथा कनाडा में जौ, मक्का, जई तथा राई से शराब बनाई जाती है। भारत में बिहार आदि के आदिवासी चावल की शराब बनाते हैं। **कोइक्स लाक्रीमा जोबी** पहाड़ी क्षेत्र में बीयर बनाने के काम आती है।

चारे की घासें

भारत में प्रायः चरने के मैदान जिसमें अच्छी जाति की घासें लगाई जायें और जानवर अधिक चाव से खायें नहीं बनाए जाते। प्राकृतिक रूप से घासें उगती हैं, जानवरों को उन्हीं को चरना पड़ता है।

आंड्रोपोगॉन अस्कीनोडीस, अार्थ्रासीन प्रीओनोडेस, बोथ्रीओक्लोआ पेर्टुसा, ब्राची-आरिआ, की सभी जातियां, **क्लोरिस गायाना, क्रीसोपोगॉन आसीकुलाटुस, एचीनोक्लोआ कोलोनुम, एलेउसीने ईन्डिका, हेटेरोपोगॉन कोन्टोर्टुस, पानीकुम आन्टीडोटाले, रोट्टबोएल्लिआ एक्साल्टाटा, सोर्गोन आक्टोलोन, डीकान्थिउम आन्नुलाटुम, डीकान्थिउम कारीकोसुम, डीजीटारीआ** की सभी जातियां, **सेटारीआ** की सभी जातियां, **सोर्घुम** की सभी जातियां आदि घासें चारे के लिए अच्छी मानी जाती हैं।

बहुत सी घासें जो दाने के लिए उगाई जाती हैं, वह चारे के काम भी आती हैं।

सुगंधित तेल की घासें

बोथ्रीओक्लोआ, रोशा, (सीम्बोपोगॉन) खसखस (**वेटीवेरिआ**) की जातियां तथा और भी घासों से सुगन्धित तेल निकलता है। ये तेल वाष्पीकरण द्वारा निकाले जाते हैं। यह तेल, पत्ती, शीथ, ग्लूम तथा जड़ों की विशिष्ट कोशिकाओं में एकत्रित होते हैं।

कागज के लिए उपयुक्त घासें

बहुत सी घासों का प्रयोग करके देखा गया है कि उनसे अच्छे कागज तैयार किये जा सकते हैं। जैसे—बांस (**बाम्बुसा**), सबाई (**एउलालिओप्सिस बीनाटा**) कांस (**साक्कारुम स्पोन्टानेउम**), नाल, (**अरुन्डो डोनाक्स**) **फाग्मीटेस कार्का, स्क्लेरोस्टाकीआ फुस्का, बोथ्री-ओक्लोआ इन्टेरमेडिआ, सीम्बोपोगॉन मार्टीनी, एरीआन्थुस राबेन्नाए, इम्पेराटा सीलिन्ड्रिका, डेस्मोस्टाकिआ बीपीन्नाटा**।

गन्ने के तने से जूस निकालने के बाद बचे हुए फाइबर से घटिया कागज तथा दफ्ती बनाये जाते हैं।

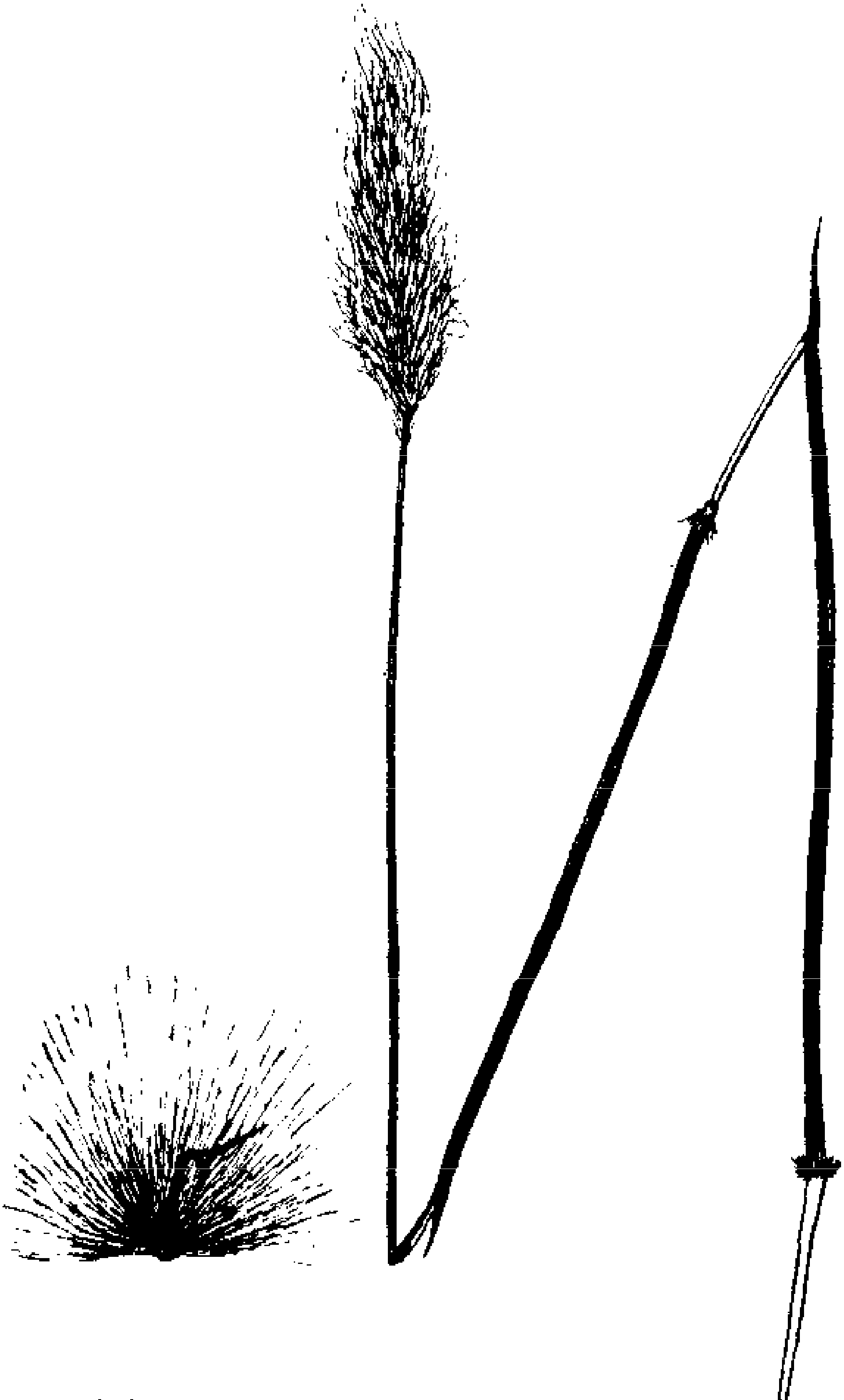

दाब (इम्पेराटा सीलिंड्रिका) : मिट्टी बांधने वाली, लॉन तथा औषधोपयोगी घास

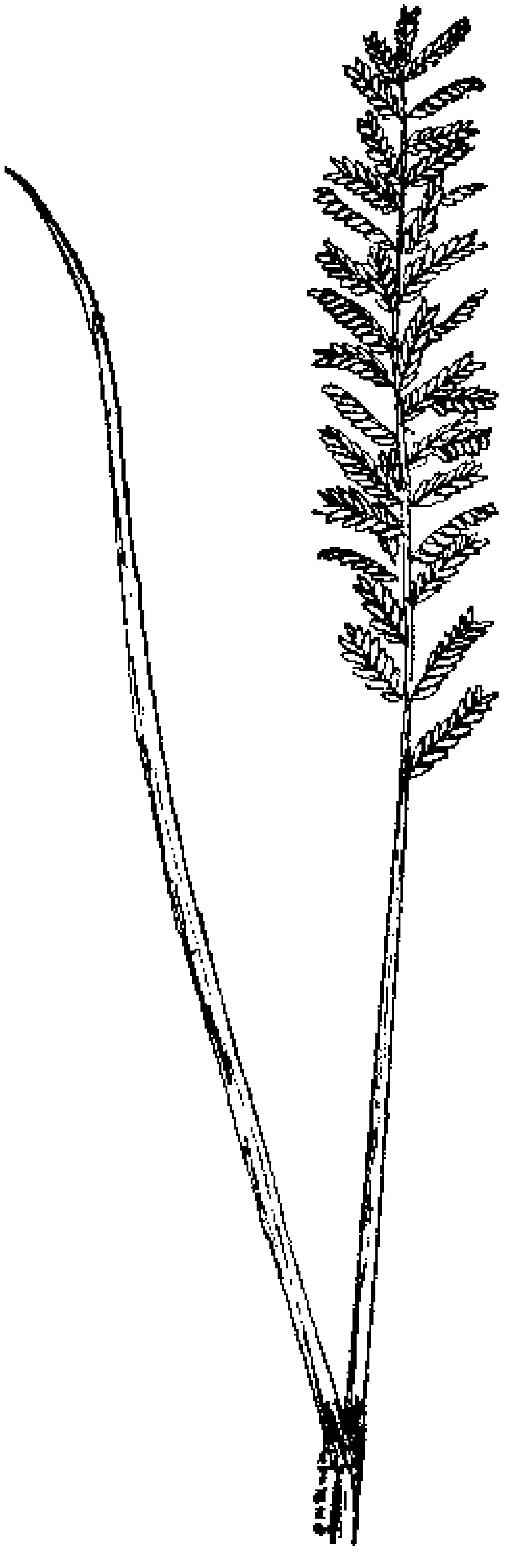

कुश (डेस्मोस्टाचिआ बीपिन्नाटा) : मिट्टी बांधने वाली औषधोपयोगी तथा धार्मिक अनुष्ठानों में काम आने वाली घास

सजावट के काम आने वाली घासें

बहुत सी घासें अपनी रंगीन पुष्प शाखा, चितकबरी पत्ती, सुन्दर तने तथा बहुत पुराने दीखने वाले फूलों के लिए उगाई जाती हैं। आम तौर पर घासें बाग में या घरों में अच्छी तरह उगती हैं। **र्हीन्कोलीट्रुम रेपेन्स** की गुलाबी पुष्प शाखा बहुत सुन्दर लगती है। **लागारूस ओवाटुस** की ऊनी पुष्प शाखा विभिन्न रंगों में रंग दी जाती है और सजावट के काम करती है। **अरूंडो डोनाक्स, प्र० वेर्सीकोलोर, फालारीस अरून्डीनासेआ, प्र० पिक्टा, होल्कुस मोल्लिस प्र० वारीएगाटुस**, एउलालिआ सोआरेन्सीस, ए० **मोल्लीस** तथा बहुत सी और घासें सजावट के काम आती हैं।

लान वाली घासें

'लान' के लिए जलवायु के अनुसार अलग-2 घासें उपयोगी होती हैं। अधिक वर्षा वाले स्थान में **इम्पेराटा सीलिन्ड्रिका, क्रीसोपोगॉन आसीकुलाटुस, आक्सोनोपुस कोम्प्रेस्सुस** तथा छाया में **ओप्लिस्मेनुस बुर्मान्निई** उपयोगी हैं। ऊंचे स्थान के लिए पेन्नीसेटुम **क्लांडेस्टीनुम** प्रयोग की जाती है। उत्तरी भारत में सूखे स्थानों में **डीकान्थिउम आन्नुलाटुम, बोथ्रीओक्लोआ पेर्टुसा, बाचोआरीआ रामोसा** तथा दूब घास लान बनाने के काम आती है। करीब-करीब सभी खेलों के मैदान दूब घास के बनाये जाते हैं।

मिट्टी का कटाव रोकने वाली घासें

साक्कारुम स्पोन्टानेउम समुद्र तट से लेकर रेगिस्तान तक में एक अच्छी मिट्टी बांधने वाली घास है। **पानीकुम आन्टीडोटाले, पा० टुर्गीडुम, सीम्बोपोगॉन ज्वारान्कुसा, डाक्टीलोक्टेनिउम सीन्डिकुम** रेतीली सूखी भूमि में होती है। समुद्री तट पर **स्पिनीफेक्स सीट्टोरेउस, हालोपीरुम मूक्रोनाटुम, पास्पालुम वागीनाटुम, लेटीपेस सेनेगालेन्सिस, पानिकुम रेपेन्स, सोर्घुम हालेपेन्से** इत्यादि बहुत सी घासें हैं जो मिट्टी को अपनी जड़ों के जाल में बांधे रहती हैं। **फेस्टुका ओवीना** तथा **इम्पेराटा सीलिन्ड्रिका** पहाड़ी भागों में महत्वपूर्ण हैं।

दवा के काम आने वाली घासें

वैसे तो बहुत सी घासें दवा के काम आती हैं परन्तु कुछ मुख्य का उल्लेख यहां किया गया है। **अग्रोपीरोन रेपेन्स** पेशाब कराने के लिए प्रयोग होती है। इसी कार्य के लिए तथा गुर्दे की बीमारी या पेशाब की जलन रोकने के लिए कुश तथा दर्भ का प्रयोग किया जाता है। दूब घास को पीसकर पीने से खून शुद्धि होती है तथा यदि विष का हल्का असर हो तो वह भी खत्म हो जाता है। **सीम्बोपोगॉन स्चोएनान्थुस** का प्रयोग पेट की गड़बड़ी ठीक करने के लिए किया जाता है। गुर्दों की पथरी ठीक करने के लिए भी इसका क्वाथ प्रयोग करते हैं। **वेटीवेरिआ ज़ीज़ानीओइडेस, सेटारीआ इटालीका** (टागुन), गन्ने की जड़, गन्ने के रस का सिरका, **फ्राग्मीटेस कार्का, पानीकुम आन्टीडोटाले, पा० मीलिआसेउम, हाकेलोक्लोआ ग्रानुलारिस, बोथ्रीओक्लोआ ओडोराटा** बहुत प्रकार से प्रयोग में लाए जाते हैं।

ब्राचीआरिआ रेप्टान्स : लॉन के लिए

उपरोक्त उपयोगों के अतिरिक्त भी घासें बहुत से काम आती हैं—जैसे छप्पर, चटाई रस्सी, गहने, तकिया भरने, झाड़ू बनाने, सिगरेट, पुस्ट, चूहे भगाना, हिन्दू लोगों के कुछ धार्मिक कार्यों के लिए तथा बांसुरी इत्यादि बनाने के लिए। कुछ घासें जहरीली भी हैं जैसे सोर्घम की जातियां, जई, इत्यादि।

39 क्यू हर्बेरियम का भारतीय वनस्पति अध्ययन में योगदान

ब्रह्म दत्त शर्मा

साधारणतः यह धारणा है कि भारतीय वनस्पति विज्ञान की नींव योरोप की मिशनरियों तथा पादरियों ने रखी, और वहीं के चिकित्सकों, इंजिनियरों, व अन्य वैज्ञानिकों ने इस विषय का विस्तार किया। भारतीय वनस्पति विज्ञान के इतिहास के बारे में बहुत से विद्वानों, जैसे किंग अघारकर, विश्वास, सन्तापाऊ, बरकिल तथा सुब्रमनियम ने अनेक लेख लिखे हैं।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों तथा साहित्य जैसे आयुर्वेद, चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता में कृषि चिकित्सा तथा उद्यानों में प्रयोग किये जाने वाले अनेक पेड़ पौधों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ज्ञान भरा है। आज से लगभग 2500 वर्ष पूर्व तक्षशिला विश्वविद्यालय के आचार्य भिक्षु अत्रेय ने अपने शिष्य जीवक को विश्वविद्यालय के भीतर व आसपास पाये जाने वाले सभी पेड़ पौधों को एकत्रित करने, पहचानने तथा उनके गुणों के वर्णन करने का आदेश दिया था।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में गारसिया डे ओरटा नामक पुर्तगीज ने गोआ में वनस्पति विज्ञान पर शोध कार्य किया जिसके फलस्वरूप 1565 ई० में "ओस कोलोकुइस" का प्रकाशन हुआ। इसके पश्चात् सत्रहवीं शताब्दी में डच वनस्पतिज्ञ हेनरिक वान रीड ने "होरटस मालाबारिकस" नामक साहित्य को 12 खंडों में प्रकाशित किया। तदुपरांत धीरे-2 बहुत से योरोपियन प्रारम्भ में व्यापारिक दृष्टि से भारत आये पर बाद में उपनिवेश उद्देश्य से सैनिक प्रभुत्व जमाने लगे। इनमें बहुत से लोगों ने भारतीय वनस्पति पर महत्वपूर्ण शोध कार्य किया। इनमें कुछ सैनिक अधिकारी जैसे बेड्डोम, चैंपियन, कैथकार्ट, कोलब्रूक, ड्रमंड, एजवर्थ, हे, जेनकिंस, ली, मैडन, साईक्स, टैनर, इत्यादि; चिकित्सक जैसे राक्सबर्ग, एटचिसन, टी० एन्डरसन, बुकानन हैमिलटन, गागल्स, गिब्सन, ग्रिफिथ, किंग, मेक-क्लीलेंड, प्रेन, रोयल, स्कली, स्टोक्स, थोमसन, वाईट, वालिच इत्यादि। इंजीनियर जैसे कुक, गणितशास्त्रज्ञ जैसे गैम्बल तथा कलार्क एवं कुछ भूवैज्ञानिक जैसे फालकोनर इत्यादि थे। इनमें से अधिकतर वैज्ञानिकों का क्यू हर्बेरियम से तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के रोयल बोटेनिक गार्डन तथा वनस्पति सर्वेक्षण से घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। यह उल्लेखनीय है कि किंग, प्रेन, क्लार्क डथी, थोमसन, एजवर्थ, लोसन, एंडरसन, बरकिल, हेन्स, गैम्बल, फिशर, हुकर के शोध कार्यों से ही हुकर के "फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इंडिया" का प्रकाशन सम्भव हो सका।

इससे पहले कि हम क्यू हर्बेरियम के भारतीय वनस्पति अध्ययन में योगदान को विस्तार में लें यह उचित होगा कि हम इस संस्था के बारे में कुछ जान लें। लंदन स्थित रोयल बोटेनिक

गार्डन्स के तीन मुख्य विभाग हैं—1. क्यू हर्बेरियम, इसमें हर्बेरियम के अतिरिक्त पुस्तकालय एवं पैलीनोलोजी प्रयोगशाला भी शामिल है। 2, जोडरेल प्रयोगशाला, 3. क्यू उद्यान—इस उद्यान के अतिरिक्त इकोनोमिक म्यूजियम, एलपाईन तथा पाम भवन ओरेंजरी है जहां प्रतिदिन कोई न कोई प्रदर्शनी लगी रहती है तथा क्यू गार्डन्स की प्रकाशित सामग्री जैसे पिक्चर पोस्टकार्ड, कलैन्डर, रंगीन ट्रान्सपेरेन्सीज फलोराज इत्यादि खरीददारी के लिये उपलब्ध रहती हैं।

1. **क्यू हर्बेरियम**—क्यू हर्बेरियम की स्थापना सन् 1852 में हुई। जोर्ज बेन्थम तथा सर विलियम हुकर का विशाल एवं महत्वपूर्ण हर्बेरियम जो क्यू हर्बेरियम की नींव था सन् 1854 तथा 1867 में इसमें शामिल किया गया।

लगभग पिछले 132 वर्षों में विभिन्न प्रकार के वनस्पति संग्रहों को इसमें रखा गया। आज क्यू हर्बेरियम विश्व का सबसे बड़ा हर्बेरियम है, तथा वनस्पति वर्गिकी के विशेषज्ञों के लिये एक प्रकार का तीर्थधाम बन चुका है।

पुष्पी पौधों के शुष्क नमूने बेन्थम तथा हुकर के "जेनेरा प्लांटेरम" के क्रम से रखे हैं। प्रत्येक वंश के शुष्क नमूने भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार व्यवस्थित किये गये हैं जिससे उन्हें ढूंढने में आसानी रहती है। क्यू हर्बेरियम की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

1. इसमें 50 लाख से अधिक माउंटिंग शीट पर लगे शुष्क पेड़ पौधों के नमूने हैं।

2. लगभग 35000 फूल तथा फलों के नमूने जिनका शुष्क अवस्था में सरलता से अध्ययन नहीं किया जा सकता उनको कांच की बोतलों में तरल माध्यम में क्यू हर्बेरियम के तहखाने में सुरक्षित रखा गया है। इसमें ओरकिड्स के नमूने विशेषकर उल्लेखनीय है।

3. फलों तथा बीजों का महत्वपूर्ण संग्रह अलग रखा गया है।

4. क्यू हर्बेरियम में अनेक देशों के फ्लोरा पूर्णरूप या आंशिक रूप से तैयार किये गये। इनमें से कुछ देश हैं—वेस्ट इन्डीज, फिजी आस्ट्रेलिया, मलाया, हांगकांग, भारत, बर्मा, पाकिस्तान, श्रीलंका, मौरीशियस, दक्षिण अफ्रीका, ट्रोपिकाल अफ्रीका, नेपाल, इराक, ईरान, इत्यादि।

5. यहां के मुख्य प्रकाशन हैं—

1. **क्यू बुलेटिन**
2. **बोटेनिकल मेगजीन**
3. **हुकर आईकोन प्लांटेरम**
4. **इन्डेक्स क्यूऐंसिस (2 भाग तथा 14 सप्लीमेन्टरीज)**
5. **इन्डेक्स लेंडनेनसिस (8 कुओर्टो 5 भागों में)**
6. **क्यू रिकार्ड्स आफ टैक्सोनोमिक लिटरेचर**

क्यू पुस्तकालय—इस पुस्तकालय की स्थापना सन् 1852 में डा० ब्रोमफील्ड्स के पुस्तक संग्रह के योगदान के साथ ही हुई। सन् 1854 में जॉर्ज बेन्थम का पुस्तकालय इसमें शामिल किया गया तथा 1867 में सर विलियम जे० हुकर की पुस्तकें तथा पांडुलिपियां इस पुस्तकालय के लिये खरीदी गई। वर्तमान काल में क्यू पुस्तकालय विश्व के वनस्पति विज्ञान और खासकर वर्गिकी के मुख्य पुस्तकालयों में से एक है।

क्यू पुस्कालय में लगभग 1,20,000 पुस्तकें, 1,40,000 रीप्रिन्ट्स हैं। लगभग 2000 पत्रिकाएं यहां मंगवाई जाती हैं। पुस्तकालय में लिनयन के पूर्व के शोध पत्र तथा विश्व के फ्लोराज का महत्वपूर्ण संग्रह है।

पुस्तकालय आरकाईव्स—इस संग्रहालय में अब तक के 2,50,000 पत्र, तथा नोट बुक्स, पांडुलिपि आदि, 1,80,000 से अधिक पेड़ पौधों तथा वनस्पति के चित्र, 12,000 मानचित्र और 500 से अधिक वनस्पतिज्ञों के चित्र शामिल है।

2. **जोडरल प्रयोगशाला**—सर जोसफ हुकर के निजी मित्र जे० फिलिप्स जोडरल ने सन् 1876 में क्यू गार्डन्स को एक भवन उपहार के रूप में दिया जहां पर जोडरल प्रयोगशाला आरम्भ हुई। आज की नई बिल्डिंग जिसका उद्‌घाटन 1965 में हुआ उसी स्थान पर स्थित है। इस प्रयोगशाला में साईटोलोजी, एनाटोमी तथा फिजियोलोजी विभाग है।

3. **क्यू गार्डन्स**—इसकी स्थापना सन् 1841 में हुई। यह लगभग 300 एकड़ में फैला हुआ है। इसमें अनेक कांच के भवन है। जिसमें शीतल जलवायु के पौधे, अयनीय पौधे, मरुस्थलीय पौधे, ऑरकिड्स, फर्न्स, कीट-हारी पौधे आदि उगाये जाते हैं। क्यू गार्डन्स में 3,100 वंश तथा 340 कुलों की जातियां लगाई गई है। भारतीय र्‌होडोडेन्ड्रोस, एजेलियाज, ऑरकिड्स, मिकोनोप्सिस, एकोनाइट्स का यहां विशेष स्थान है।

सन् 1965 में वेकहर्स्ट प्लेस एस्टेट जिसका क्षेत्र 462 एकड़ का है, क्यू गार्डन्स के आधीन आ गया। क्यू हर्बेरियम ने भारतीय वनस्पति के अध्ययन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के अधिकारी तथा उसके पश्चात् ब्रिटिश शासक भारतीय प्राकृतिक स्रोतों का भरपूर लाभ उठाना चाहते थे। इसी लक्ष्य को पूर्ण करने के उद्देश्य से उन्होंने अनेक यूरोपियन्स तथा ब्रिटिश लोगों की सहायता प्राप्त की। भारतीय जलवायु, भूमि तथा ऊंचाई में असीम विभिन्नता के कारण यहां की वनस्पति अनेक प्रकार की तथा परिपूर्ण है। व्यापार में काम आने वाली वनस्पति सामाग्री के अतिरिक्त इन लोगों ने शोध कार्य के लक्ष्य से पेड़ पौधों के शुष्क नमूने (हर्बेरियम स्पेसिमेन्स) तैयार किये और क्यू हर्बेरियम में इनको रखा गया। इन्हीं नमूनों के आधार पर क्यू हर्बेरियम में समस्त भारत तथा उसके अनेक क्षेत्रों में वनस्पति ग्रंथों या साहित्य की रचना हुई। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण रचनाएं निम्न-लिखित हैं—

1. हुकर का "द फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इन्डिया"

2. कुक का "फ्लोरा ऑफ बोम्बे प्रसीडेन्सी"
3. गैम्बल का "फ्लोरा ऑफ प्रसीडेन्सी ऑफ मद्रास"
4. हेन्स का "बोटेनी ऑफ बिहार एण्ड उड़ीसा"
5. डथी का "फ्लोरा ऑफ अपर गैंजेटिक प्लेन्स"
6. कोलेट का "फ्लौरा सिमलैंसिस"
7. बोर का "ग्रासेज ऑफ बर्मा, सीलोन, इन्डिया एण्ड पाकिस्तान"
8. सलदाना एवं निकलसन का "फ्लोरा ऑफ हसनडिस्ट्रिक्ट" भी किसी सीमा तक क्यू हर्बेरियम में लिखा गया है।

वर्गिकी का आधार प्ररूप (टाइप) होने के कारण भारतीय वनस्पति के अध्ययन में क्यू हर्बेरियम योगदान का और भी महत्व हो गया है, क्योंकि भारत के पौधों के अधिकतम प्ररूप (टाईप) क्यू हर्बेरियम में ही रखे हैं। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण ने जो "फ्लौरा ऑफ इन्डिया" का प्रोजेक्ट आरम्भ किया है उसके लिए क्यू में रखे टाईप स्पेसिमेन्स का अध्ययन अत्यन्त आश्यक है।

क्यू हर्बेरियम के भारतीय वनस्पति के अध्ययन में योगदान को सही रूप में समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम प्रारम्भिक वनस्पतिज्ञों की गतिविधियों तथा उनके योगदान को थोड़ा जान लें।

विलियम रोक्सबर्घ—रोक्सबर्घ को भारतीय वनस्पति शास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है। उन्होंने भारतीय पौधों के 2583 रेखा चित्र बनवाये, जिनको 35 खण्डों में बंधवाया गया है। ये भाग "आईकोन्स रोक्सबर्घियानम" नाम से जाने जाते हैं। इसकी एक प्रति क्यू में भी है, इन खंडों में जिल्द नहीं बंधी है।

रोक्सबर्घ ने काफी संख्या में हर्बेरियम स्पेसिमेन्स बनाये पर दुर्भाग्य की बात है कि उन्होंने ये स्पेसिमेन्स कलकत्ता हर्बेरियम को नहीं सौंपे। उनके स्पेसिमेन्स यूरोप के अनेक हर्बेरियम में पाये जाते हैं। जैसे ब्रिटिश म्यूजियम, क्यू, लिवरपूल, मानचेस्टर आदि। कुछ स्पेसिमेन्स लंदन स्थित लिनियन सोसाईटी के संग्रह में हैं। कलकत्ता हर्बेरियम में आज तक केवल 39 स्पेसिमेन्स मिल पाये हैं।

नाथेनियल वालिच—वालिच कलकत्ता हर्बेरियम से 7683 जातियों के 20,000 स्पेसिमेन्स ले गये। यह संग्रह सन् 1830 में लिनियन सोसाईटी को और अन्त में 1913 में क्यू हर्बेरियम को सौंप दिये गये।

सन् 1850 और 1852 के बीच जोसेफ डी० हूकर तथा टी० थोमसन ने वालिचियन हर्बेरियम के दो भाग किये तथा एक भाग को जो सम्पूर्ण नहीं था कलकत्ता हर्बेरियम को भेज

दिया गया। डा० जैन ने इस संग्रह का कुछ भाग रूस के कीव हर्बेरियम में देखा। यह ज्ञात नहीं कि वह वहां कैसे पहुंचा।

जे० डी० हुकर एवं टी० थोमसन—क्यू के इन दो वनस्पतिज्ञों ने 1848 और 1851 के बीच भारत के सिक्किम, खासी तथा जेन्तीया हिल्स, सिलहट, चिट्टागोंग इत्यादि क्षेत्रों से 1,50,000 नमूने एकत्रित किये। इनमें से 3500 सिक्किम, 3000 खासी हिल्स, 1000 भारत के मैदान तथा 2000 जातियों के पेड़ पौधों के नमूने उत्तर-पश्चिम भारत के थे।

हुकर की भारत यात्रा पर लिखी सामग्री क्यू में मौजूद है। इनमें से कुछ निम्नलिखित साहित्य में प्रकाशित हो चुकी है।

1. जर्नल ऐशियाटिक सोसाईटी ऑफ बेंगाल, भाग 17 तथा 18 (1849-51)।
2. क्यू जर्नल ऑफ बोटेनी, भाग, 1,2,3 (1848-51) जिनका सम्पादन सर विलियम हुकर ने किया।
3. लंडन जर्नल ऑफ बोटेनी भाग, 7 (1848)
4. हिमालयन जर्नल।
5. दि र्‌होडोडेन्ड्रान्स ऑफ सिक्किम हिमालयाज (लंडन 1849)।

हुकर के भारत में बनाए र्‌होडोडेन्ड्रोन्स के चित्रों का संग्रह जो संग्रह के समय वन में जीवित पौधों के आधार पर बनाए गये थे, क्यू में जमा हैं। हुकर का "आईकोन्स प्लांटेरम" तथा कर्टिस बोटेनिकल मैगजीन में छपे चित्र भारत के वनस्पति अध्ययन के संदर्भ में बहुत लाभदायक हैं।

हुकर ने भारतीय र्‌होडोडेन्ड्रोन्स को ब्रिटेन में और विशेषकर क्यू गार्डन्स में प्रवेश न किया।

टी० थोमसन 1884 में अपने तथा वालिच के नमूनों की प्रतियां भारत लाये। यहां आकर उन्हें क्यू से फाल्कनर, जे० डी० हुकर, थोमसन, रोबर्ट वाईट इत्यादि के नमूने भी प्राप्त हुए। 1867 को थोमसन को जे० डी० हुकर के कुछ और नमूने मिले।

टी० थोमसन का गंगा के मैदानी क्षेत्र, काश्मीर, नेपाल, तिब्बत आदि का संग्रह क्यू हर्बेरियम में है।

सी० बी० क्लार्क—क्लार्क ने खासी पर्वत, सिक्किम, नीलगिरी, कांगड़ा, चम्बा, काश्मीर, कुर्रम्कोरम, इत्यादि स्थानों से हर्बेरियम स्पेसिमेन्स एकत्रित किये। वह अपना बहुत सा संग्रह क्यू हर्बेरियम ले गये और वहां सन् 1877 से 1883 तक कार्य किया।

जे० एस० गैम्बल—गैम्बल का "टाईप स्पेसिमेन्स" सहित अधिकतम संग्रह क्यू हर्बेरियम में है। कुछ की प्रतियां कोयंबटूर, कलकत्ता तथा देहरादून में है।

जे० एफ० डथी—इनके अधिकांश संग्रह क्यू में है।

एच० एफ० सी० क्लेयोर्न—क्लेयोर्न के दक्षिण भारत के हर्बेरियम स्पेसिमेन्स तथा वह 'टाईप स्पेसिमेन्स' जो कोयंबटूर में नहीं हैं क्यू हर्बेरियम में हैं।

ई० बार्न्स—बार्न्स के एकत्रित किये भूतपूर्व मैसूर तथा मद्रास राज्यों के हर्बेरियम स्पेसिमेन्स जिनमें से बहुत से 'टाईप स्पेसिमेन्स' भी हैं तथा उनके रेखा-चित्र क्यू हर्बेरियम में जमा है। इन स्पेसिमेन्स में ऐरेसी तथा औरकिडेसी कुलों के स्पेसिमेन्स उल्लेखनीय हैं।

आर० एच० बेड्डोम—हालांकि बेड्डोम के अधिकतम 'हर्बेरियम स्पेसिमेन्स' ब्रिटिश म्यूजियम लंदन में है पर इनके बहुत से डुप्लीकेट स्पेसिमेन्स' क्यू में जमा है।

एम० पी० एजवर्थ—एजवर्थ के उत्तर पश्चिमी भारत तथा हिमालय के स्पेसिमेन्स क्यू में हैं।

एस० कुर्ज—कुर्ज के बहुत से स्पेसिमेन्स कलकत्ता के हर्बेरिम में हैं। परन्तु अण्डमान तथा बर्मा के बहुत से मूल्यवान 'टाईप स्पेसिमेन्स' क्यू हर्बेरियम में जमा है।

एम० ए० लौसन—लौसन जब सरकारी कुनैन विभाग, उटकमंड ऊटी के निदेशक थे उस समय के इनके हर्बेरियम स्पेसिमेन्स के डुप्लीकेट क्यू हर्बेरियम में है।

जे० लिन्डले०—इनके औरकिडेसी कुल के, 'टाईप स्पेसिमेन्स' सहित बहुमूल्य 'हर्बेरियम स्पेसिमेन्स' क्यू में ही है।

आर० व्हाईट—व्हाईट के 'हर्बेरियम स्पेसिमेन्स' क्यू हर्बेरियम में है परन्तु स्पेसिमेन्स कलकत्ता हर्बेरिम तथा मद्रास हर्बेरियम में भी उपलब्ध है।

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से वनस्पतिज्ञों के महत्वपूर्ण संग्रह क्यू हर्बेरियम में है। ये भारत के नए फ्लोरा की रचना में है उपयोगी हो सकते हैं। इनमें मुख्य हैं – किंग, लेस, गुस्टाफ मान, गिबसन, हेन्सले, केद, रोबर्ट व्लैंट, वारबार, बेंकिसपेंटलिंग, फाल्कोनर, मिशर, जेनकिन्स, लौ, निमो, स्ट्रैची तथा विन्टरबॉटम, रिची, टेलबोट, ग्रिफिथ, मेपाक्लीनिन्ड, स्टोक्स, बेलजल, मैट्स, ड्रूमोन्ड, हेन्स, कैम्पबैल, कौलेट, वुडरो इत्यादि।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय वनस्पति के अध्ययन में क्यू हर्बेरियम के संग्रह महत्वपूर्ण है। सेन्ट्रल नेशनल हर्बेरियम का पुराना भवन भी कुछ क्यू हर्बेरियम के जैसा बना था तथा हर्बेरियम में पौधों का क्रम भी बैन्थम एवं हुकर के वर्गीकरण के अनुसार है। किंग, थोमसन, क्लार्क, प्रेन, हेम्स, गेम्बल, डथी, एंडरसन, लौमग, बरकिल आदि जो क्यू हर्बेरियम से सम्बन्धित थे, उन्होंने भारत में भी कार्य किया।

क्यू के वैज्ञानिक जिसे जेरेट, हूपर, टेलर, होलटू तथा स्वर्गीय डा० बोर का भारतीय वनस्पति के अध्ययन में काफी योगदान रहा है।

हाल ही में केन्द्रीय राष्ट्रीय पादपालय के नमूनों का पुनर्गठन क्यू हर्बेरियम में प्रयुक्त शैली पर किया गया है। कुछ वर्षों से क्यू हर्बेरियम में भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के रीजनल बोटानिस्ट की नियुक्ति हो रही है। जिसका मुख्य कार्य क्यू में रखे भारतीय टाईप स्पेसिमेन्स के फोटो-नेगेटिव तैयार करना, फोटोलोग्स भेजना, फ्लोरा आफ इन्डिया कार्यक्रम के सम्बन्ध में जानकारी देना, जिन स्पेसिमेन्स की भारत में पहचान नहीं हो पाती उनको क्यू हर्बेरियम की सहायता से पहचानना है। क्यू अधिकारियों के सहयोग से लगभग 15,000 फोटो-नेगेटिव तैयार करके भारत भेजे जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त भारत में पाई जाने वाली जातियों के "डिस्ट्रीब्यूशन डेटा कार्ड" भी तैयार किये गये हैं।

क्यू का वनस्पति संग्रह, पुस्तकालय, पुस्तकालय आरकाईव, तथा अनेक प्रकार के ज्ञान का भंडार लोगों को लुभाता है। सभी की अभिलाषा होती है कि वहां जाकर कुछ समय कार्य किया जाये। क्यू से प्रकाशित साहित्य को प्रायः मान माना जाता है तथा लोगों को इससे एक उच्च स्तरीय कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

40. भारतीय वनस्पति उद्यान

हरी शंकर पाण्डेय

भारत की वनस्पति के अध्ययन शोध एवं सर्वेक्षण में भारतीय वनस्पति उद्यान का बहुत योगदान रहा है। यहां पर रॉक्सबर्घ, वालिच, किंग, प्रेन, बिश्वास, चटर्जी जैसे विश्व के जाने माने वनस्पतिज्ञों ने कार्य किया। कुनैन, जूट, कोको, इलायची, काफी, पटुआ, कपास, वैनिला, रबर, तम्बाकू, गन्ना, आलू आदि उपयोगी पौधों का संवर्धन भी यहीं पर हुआ। इस उद्यान में लगभग 1300 जाति के पौधे हैं। ये पौधे विभिन्न द्वीपों से लाकर लगाये गये हैं। इस समय कुल पौधों की संख्या 14,000 से भी अधिक है। उद्यान का क्षेत्रफल 112 हेक्टेयर है।

स्थापना—सन् 1770 के दुर्भिक्ष में बंगाल की प्राय: 1/3 जनसंख्या मृत्यु के घाट उतरी। उस समय प्रशासन (ईस्ट इण्डिया कम्पनी) ने ऐसे पौधे उगाने की आवश्यकता महसूस की जिनकी उपज कम उपजाऊ भूमि पर हो सके। कर्नल राबर्ट किड ने तदर्थ एक पौधशाला की स्थापना का सुझाव दिया। इस पौधशाला में जहाजों के मरम्मत हेतु सागौन के पेड़ तथा विभिन्न प्रकार के मसाले उगाने का भी सुझाव दिया। कम्पनी ने 31 जुलाई 1787 में उसकी स्थापना की स्वीकृति दी।

कर्नल किड ने हावड़ा में हुगली नदी के पश्चिमी किनारे पर मुगाह थाना (वर्तमान थाना मकुआ) के पास ही पौधशाला के लिए स्थान चुना। यहां उस समय एक किला एवं सिपाहियों का निवास स्थान था। यह स्थान प्राय: जंगल ही था जो ज्वार-भाटा के समय पानी से भर जाता था। इस भूमि के चारों तरफ किड ने खावां खुदवाया एवं घेरा दिलवाने के बाद पौधशाला निर्माण का खाका तैयार किया। उन्होंने प्रचुर मात्रा में दालचीनी, लवंग, काली-मिर्च, इलायची, जायफल आदि मसालों के साथ पर्सियन खजूर, तम्बाकू, सेब, संतरा, सागौन, वलूत चाय, चन्दन, ब्रेडफ्रूट आदि के पौधे लगवाये। जलवायु एवं मिट्टी ऐसे पौधों के लिए अनुकूल नहीं थी। इस कारण बहुत से पौधे मर गये एवं कम्पनी की व्यापारिक लालसा पूरी न हो सकी। परन्तु इस असफलता ने ही उद्यान को शिक्षा, शोध, एवं मनोरंजन की दिशा में महत्व देने को बाध्य किया।

प्रारम्भ में इस उद्यान की स्थापना कलकत्ता बोटेनिक गार्डेन के नाम से हुई परन्तु कम्पनी द्वारा स्थापित होने के कारण आसपास के साधारण लोगों में यह कम्पनी बाग के नाम से प्रचलित हो गयी। महारानी विक्टोरिया के भारत का शासन ग्रहण करने के बाद सन् 1858 में इसका नाम 'रायल बोटेनिक गार्डेन' हो गया। भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् प्रथम गणतंत्र

दिवस (26 जनवरी 1950) पर इसका नाम बदलकर इण्डियन बोटेनिक गार्डेन या भारतीय वनस्पति उद्यान कर दिया गया।

स्वतंत्रता के बाद आरम्भ में यह बंगाल सरकार के नियंत्रण में रहा। परन्तु 1 जनवरी 1963 से इस उद्यान का नियंत्रण केन्द्रीय सरकार के भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग के आधीन आ गया। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण की स्थापना इसी उद्यान के अधीन सन् 1890 में हुई थी।

मुख्य आकर्षण विशाल वट वृक्ष (फीकुस बेंगालेंसिस) : यह वृक्ष 200 वर्ष से भी पुराना है एवं इस समय करीब 1.7 हेक्टेयर क्षेत्र घेरे हुए है। इसका मुख्य तना फफूंद लग जाने के कारण 1925 में काट दिया गया था। उस समय मुख्य तने की परिधि 15.3 मी० थी। बिना मुख्य तने के भी सैकड़ों हवाई जड़ों के सहारे यह वृक्ष फल फूल रहा है। प्रत्येक वर्ष इसकी शाखाओं से वैज्ञानिक विधि से हवाई जड़ें प्रस्फुटित की जाती है। हवाई जड़ों को खोखले बांस की सहायता से उचित दिशा देकर जमीन पर लाया जाता है। खोखले बांसों में मिट्टी व पत्ती की खाद का मिश्रण भरा रहता है। इस समय ऐसी जड़ों की संख्या 1573 है एवं ये सैकड़ों तनों सरीखी दीखती हैं। ये ही इस वृक्ष को जंगल जैसा विराट रूप दिए हुए है।

यह वृक्ष उद्यान का मुख्य आकर्षण केन्द्र है। अधिकांश दर्शक केवल इसे आश्चर्य की भाँति देखते है। पिछले वर्ष जोर की आँधी से इसकी एक टहनी टूटने से अखबारों एवं यहां तक कि केन्द्रीय सरकार ने भी काफी चिन्ता जाहिर की थी। यह वृक्ष के राष्ट्रीय महत्व का प्रमाण है। इस वृद्ध वृक्ष की देखभाल के लिए विभाग द्वारा समिति गठित की गई है जो समय-समय पर कीटों व कवक आदि के अतिक्रमण से बचाने के लिए औषधियों का छिड़काव तथा रोगग्रस्त डालों को काटने आदि का कार्य करती है।

विशाल पत्तों वाली कुमुदिनी (जाइन्ट लीली) : यह एक अत्यन्त सुहावना एवं वृहद् पत्तों वाला जलीय पौधा है जिसका प्रवेशन 1887 में हुआ था। इसकी पत्तियां एक बड़ी थाली का आकार बनाती हैं। इसके फूल भी बड़े एवं सुगन्धित होते हैं। इसके फूल खिलने के समय सफेद एवं बाद में गुलाबी लाल तथा क्रमश: बैंगनी लाल हो जाते हैं। लगभग 4-5 फीट व्यास की पत्ती की वायुरन्ध्रों से युक्त कोशाओं की रचना ऐसी रहती है कि उस पर 5 किलो तक वजन रखने पर पत्ती सामान्य की तरह तैरती रहती है। यह उद्यान की विभिन्न झीलों में देखी जा सकती है। उद्यान में इसकी दो जातियां है **विक्टोरिआ आमाजोनिका** तथा **विक्टोरिआ क्रूजिआना** जिनका मूल स्थान क्रमश: ब्राजील एवं मैक्सिको है।

लार्ज पाम हाउस : यह उद्यान का सबसे बड़ा हरितगृह है। इसका निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरकाल में हुआ। **आन्टीगोनोन लेप्टोपुस** तथा **पोराना पानीकुलाटा** की लतायें इस गृह में उग रहे पौधों को छाया प्रदान करती है। गृह के मध्य भाग में गुम्बद के ठीक नीचे कमंडल का पेड़ (**लाडोइसेआ मालाबडीका**) है। इसकी पत्ती की चौड़ाई लगभग 2 मीटर होती

है। एक पत्ती को पूर्ण विकसित होने में एक वर्ष लग जाता है। वनस्पति जगत में इसका फल सबसे भारी (लगभग 28 किलोग्राम) होता है। एक फल से दो कमंडल बनते हैं। एक हजार वर्ष तक जीवित रहने वाला यह वृक्ष इसके मूलस्थान सीसेलिस द्वीप से 1894 में यहां लाकर लगाया गया था। इसमें दूसरे रोचक ताड़ **कालीप्टोकालीक्स स्पीकाटुस, लिविस्टोना जेन्किन्सि-आना, ऑबिग्निआ कोहुने, लीकुआला पेल्टाटा**, फैनपाम (**लीकुआला ग्रांडिस**) आदि है। इसके अलावा **सीकास रूम्फी, सी कास सीर्सिनालिस**, जायफल (**मीरिस्टिका फ्रागरांस**), **र्हाफिडोफोरा डेकुर्सिवा**, बेंत आदि अनेकों छाया प्रेमी पौधे इस गृह में उग रहे हैं। यहां पर निकोबार द्वीप में पाये जाने वाले लुप्तप्राय ताड़ **र्होपालोब्लास्टे आउगुस्टा** एवं **बेंन्टिन्किआ निकोबारिका** भी है।

उद्यान में ऐसे ही दो गृह 'स्माल पाम हाउस' तथा 'ऑर्किड हाउस' भी है। लघु ताड़ गृह में विभिन्न ताड़ के अलावा दालचीनी (**सीन्नामोमुम जें इलानिकुम**) का पेड़ भी है।

पौध शालायें : उद्यान में दो पौधशालायें हैं जिनमें पौधशाला—1 अधिक महत्व की है। इसमें ताड़, आर्थिक महत्व के साथ साथ बागवानी हेतु सुन्दर पुष्पी पादपों की पौध तैयार करने की विशेष व्यवस्था है। कैक्टस, पर्णांग (फर्न्स) के लिए विशेष गृह है। कुछ दर्शनीय कैक्टस **एकीनोकाक्टुस हॉरिडुस, माम्मिलारिआ ऐलोंगाटा**, जंगलकैक्टस (**र्हीप्सालिस पैंडुली-फ्लोरा**), **लेपिस्मिउम क्रुसीफोर्मे**, पत्तीयुक्त कैक्टस (**पेरेस्किआ आकूलीआटा** प्र० **गोड्सेफिआना** आदि है। पर्णांग **आडिआंटुम फार्लेंइएंसे, आडिआंटुम पेरूविआनुम, डावाल्लिआ ट्रीकोमानोइडेस** के अलावा बर्ड नेस्ट फर्न (**आस्प्लेनिउम नीडुस**) तथा स्टैग हार्न फर्न (**प्लाटीसेरिउम वालिचिई**) भी हैं जो विरल पौधों की सूची में आते है राष्ट्रीय आर्किडेरियम इसी में स्थित है जिसमें 1500 ऑर्किड के सेट्स हैं जिनको 32 वशों एवं 80 जातियों में बांटा जा सकता है। इसमें **डेंड्रोबिउम डेन्सीफ्लोरुम, रेनान्थेरा इम्सचोओटिआना**) जैसे लुप्तप्राय ऑर्किडों के साथ लुप्तप्राय एवं विरल पौधे **प्सीलोटुम नुडुम**, घटपर्णी या पीचरप्लांट (**नेपेंथेस खासिआना**) के संरक्षण की विशेष व्यवस्था है। इस पौधशाला में चन्दन (**सांटालुम आल्बुम**) कोको (**थीओब्रोमा काकाओ**), **कोकेन** (**एरिथ्रो-क्सीलुम कोका**), ट्री ऑर्किड (**अम्हेर्स्टिआ नोबेलिस**), ब्रेड फ्रूट ट्री (**आर्टोकार्पुस कोम्मुनिस**, तेजपात (**सीन्नामोमुम टामाला**), कपूर (**सीन्नामोमुम काम्फोरा**) आदि है। एक छोटी सी गुलाब वाटिका है तथा जैसमीन की 25 जातियों तथा 50 प्रभेदों का संग्रह भी है। इन पौध-शालाओं में विभिन्न पहलुओं पर शोधकार्य भी चल रहे हैं। इनमें लाखों पौधे तैयार करके बहुत ही सस्ते दर पर प्रोत्साहन हेतु रोपण के लिए दिए जाते है।

अन्य आकर्षण : इस उद्यान में लगभग 35 जाति के बांसों का संग्रह है। संग्रह विश्व के चोटी के वनस्पतिज्ञों को आकर्षित करते हैं। इसके अलावा बोगेनविलिया की 105 प्रभेदों का भी यहां संग्रह है।

चम्मचनुमा अनोखी पत्तियों वाला वृक्ष कृष्ण वट (**फीकुस क्रिशनाए**) रॉक्सबर्ग भवन के बगल में हैं। किंवदन्ती है कि भगवान कृष्ण इसकी पत्ती से मक्खन खाते थे। अनेकों स्थानों पर

सुन्दर फूल वाला उष्ण कटिबंधीय अमरीकी वृक्ष नागलिंगम (**कोउरोउपिटा गुइआनेन्सिस**) है। इसके पुष्प में जायांग शिवलिंग जैसा एवं पुंकेसर नागफन के रूप में होते हैं। वह वृक्ष के पास पागला वृक्ष (**प्टेरीगोटा अलाटा प्र० इरेंगुलारिस**) भी है। इसकी कोई भी दो पत्ती एक आकार की नहीं होती।

विभिन्न स्थानों से लाये गये चीड़ (पाइंस) एवं अन्य अनावृतबीजी के वृक्ष दो 'पाइ-नेटम' में लगाये गये हैं जिनमें **पीनुस रॉक्सबर्घाई, आगाथिस रोबुस्टा, आराउकारिआ कुकिई, कुप्रेस्सुस फूनेब्रिस, पोडोकार्पुस ग्रासीलिओर, पोडोकार्पुस माक्रोफिल्लुस, थुइआ ओक्सीडेंटा-लिस, टाक्सोडिउम डिस्टीकुम** आदि हैं। यहां पर संकटग्रस्त एवं देशज पादप **सीकास पेक्टिनाटा** एवं **सीकास बेड्डोमेई** भी उग रहे हैं।

मैनग्रोव पौधे **ब्रुगुइएरा जिम्नोर्रिहजा, हेरिटिएरा फोमेस, लिट्टोरालिस, फेनिक्स पालुडोसा, एक्सकोएकारिया अगाल्लोचा, बारींग्टोनिआ रासेमोसा** आदि शादिर झील के किनारे उद्यान के भाग 4-5 में देखे जा सकते हैं जिन्होंने अपने लिये अनुकूल स्थान बना लिया है।

केन्द्रीय हरबेरियम भवन के पास ही औषधीय पौधों का लघु उद्यान है जिसमें आयुर्वेद, यूनानी, तिब्बी, होमियोपैथी एवं आधुनिक औषधियों के प्रयोग में आने वाले पौधों की करीब 300 जातियां लगायी गयी हैं।

इस उद्यान में ताड़ वृक्षों की संख्या विश्व के किसी भी वनस्पति उद्यान से अधिक है। विभिन्न ताड़ उद्यान के भाग 5, 3, 1 में बाड़, दल या कतार में देखे जा सकते हैं। इनमें से कुछ रोचक ब्रान्चिग पाम (**होफाएने थेबाइका**), पेटीकोट कपाम (**वाशिंग्टोनिआ फिलिफेरा**) सुगर पाम (**अरेंगा पीन्नाटा**) आयल पाम (**एलाएइस गुइनेएंसिस**) आदि है।

उपरोक्त पौधों एवं स्थानों के अलावा किड मानुमेंट, स्टूडेन्ट्स गार्डेन, ट्रेवलर्स ट्री (**रावेनाला माडागास्कारिएन्सिस**), कालीमिर्च (**पीपेर निग्रुम**), कॉफी (**कॉफिआ अराबिका**) एवं केवड़ा, कुमुदनी, गुड़हल, कमल आदि संग्रह देखने योग्य है।

महत्वपूर्ण उपलब्धियां : राष्ट्र की प्रगति में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से इस उद्यान का उल्लेखनीय योगदान रहा है। ऐसी कुछ उपलब्धियां निम्न हैं।

1. चाय, जूट, पटुआ, कॉफी, वैनिला, इलायची, कुनैन, महोगनी, कपास, तम्बाकू इपीकाक, कोको, गन्ना, आलू, रबर, टैपीओका आदि जैसे व्यवसायिक पौधों के अलावा शोभनीय एवं रोचक पौधों का प्रवेशन एवं सुधार। इनकी खेती की तकनीक का पूरे देश में प्रसारण।

2. बोगेनविलिया, जैसमीन (चमेली), **नीम्फाआए** (कुमुदनी), **हिबिसकुस** (गुड़हल), ताड़, बाँस तथा ऑर्किड आदि वर्गों के जर्मप्लाज्म का संग्रह एवं विविध प्रकार के शोधकार्य।
3. देशज, संकटग्रस्त, लुप्तप्राय एवं विरल पौधों—**फेरेआ इन्डिका, डिस्चीडिया बेंगालेंसिस, राउवोल्फिआ सेर्पेन्टीना, हीफाएने डीकोटोमा, प्टेरोकार्पुस सान्टालिनुस** इत्यादि का संरक्षण।

वर्तमान में मुख्य लक्ष्य एवं कार्य

1. देश के पौधों एवं चुने हुए विदेशी पौधों के लिए सुरक्षा कोष का कार्य करना।
2. विरल एवं सीमित स्थान पर ही पाये जाने वाले देशी पौधों के लिए सुरक्षा कोष का कार्य करना।
3. वनस्पति विज्ञान की अनेक विधाओं एवं घरेलू शोभनीय पौधों पर शोध एवं शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं को बढ़ावा देना।
4. विरल तथा संकटग्रस्त जातियों के प्रसारण या विस्तार के लिए शोध तथा योजनाओं को व्यवहारिक रूप में कार्यान्वित करना तथा जन साधारण में तदर्थ प्रसार का कार्य करना।
5. चुने हुए आर्थिक, औषधीय, शोभनीय पौधों एवं उनके सगे सम्बन्धियों के जर्मप्लाज्म का संग्रह।
6. विभिन्न जलवायु के पौधों को हरितगृह तथा रक्षागृह में उगाना।
7. वृक्षों के आर्थिक महत्व के अलावा विलक्षण पौधों के प्रति लोगों की रुचि जागृत करने के लिए पुष्प प्रदर्शनी का आयोजन एवं पौधों का विनिमय।
8. आर्थिक एवं व्यावसायिक पौधों का प्रवेशन तथा अनुकूलन।
9. समूचे देश में उद्यानों के प्रसार हेतु नेतृत्व का दायित्व संभालना एवं सभी उद्यान के पौधों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी के लिए बैंक के रूप में कार्य करना।

भारत में उद्यान सम्बन्धी नयी योजनायें—पौधों के प्रवेशन व विस्तार के अतिरिक्त वर्तमान दशक में पादप संरक्षण व जर्मप्लाज्म संग्रह हेतु उद्यानों की आवश्यकता पर सरकार तथा वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। बोटेनिकल गार्डेन कंजर्वेशन को-आर्डिनेटेड बाडी नामक समिति का गठन किया गया है। यह समिति वनस्पति उद्यानों के संरक्षण कार्यों में सहायता करने के लिए बनायी गयी है। समिति इन उद्यानों में समन्वय बनाये रखने में भी सहायता करेगी। प्रो० मोहन राम[1] ने भारत उत्तरी पूर्वी, पश्चिमी हिमालय, पश्चिमी अर्धरेगिस्तानी

---

1. **जैन एस० के० तथा मेहरा के० एल० (1983) कनजर्वेशन आफ ट्रॉपिकल प्लान्ट रिसोर्सेज हावड़ा, बोटेनिकल सर्वे ऑफ इण्डिया**

क्षेत्र, डेक्कन आदि भागों में वनस्पति उद्यान प्रारम्भ करने की आवश्यकता पर बल दिया है। पर्यावरण विभाग के सचिव डा० खूशु ने भी सरकार की ओर से राष्ट्र में अनेकों उद्यान शुरू करने की इच्छा जाहिर की है। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के आधीन अनेकों उद्यान बारापानी (शिलांग) पौड़ी (गढ़वाल), मुन्डवा (पूना), येरकाड (तमिलनाडू), पोर्टब्लेयर व इलाहाबाद में प्रारम्भ हो गये हैं। सुन्दर फूलों वाले पादप ऑर्किडों के संरक्षण हेतु 'नेशनल आर्किडेरिया' येरकाड, शिलांग तथा हावड़ा में स्थापित किए गए हैं। इसके अलावा दिल्ली, डेक्कन आदि स्थानों पर भी नये उद्यानों की स्थापना की सम्भावना है तथा पौधों को बचाने के लिए ऊति-संवर्धन प्रयोगशालाओं के शुरू करने की सम्भावनाओं पर भी विचार चल रहा है।

इतिहास—उद्यान के विस्तार का इतिहास इसके नियंत्रक अधिकारियों के साथ जुड़ा है, जो संक्षेप में यहां प्रस्तुत है। कर्नल राबर्ट किड (1787-93)—उद्यान की स्थापना, आर्थिक महत्व के पौधों का रोपण। डॉ० विलियम राक्सवर्ग (1793—1814)—फ्लोरा ईन्डिका, हारटस बेंगालेन्सिस, प्लान्टी कोरोमेन्डेलियाना एवं रॉक्सबर्ग आइकोंस की रचना, रॉक्सबर्ग भवन का निर्माण। डा० विलियम केरी (1813-14)—डा० राक्सबर्ग का छुट्टी जाना, उनकी अनुपस्थिति में कार्यभार संचालन एवं हारटस बेंगालेन्सिस का प्रकाशन। डा० फ्रान्सिस बुकानन बाद में सर बुकानन हैमिल्टन (1814-16)—विभिन्न स्थान के वनस्पतियों का अन्वेषण एवं कृषि विज्ञान, भूस्वत्व आदि विषयों पर लेख। डा० नाथानियल वालिच (1817-46)—सागौन रोपण योजना, भारत एवं आस-पास के देशों से वनस्पतियों के नमूनों का वृहद संग्रह, 40 एकड़ भूमि का बंगाल इंजीनियरिंग कालेज को हस्तान्तरण। मि० विलियम ग्रिफिथ (1842-44)—डा० वालिच के अवकाश अनुपस्थिति में कार्यकारी अध्यक्ष रहे एवं समय में कुछ परिवर्तनों के कारण उद्यान में विशृंखलता आई। डा० ह्यूग फाल्कोनर (1847-55)—विशृंखल उद्यान का पुनः संगठन, बर्मा में सागौन की खेती का सुझाव। डा० थॉमस थामसन (1855-61)—फ्लोरा आफ ब्रिटिश इन्डिया के सह लेखक, एग्री हॉर्टिकल्चरल सोसाइटी के अध्यक्ष, गंगा के मैदानी भाग, अफगानिस्तान, गजनी व सतलज से 1000 जातियों के पौधों के नमूने का संग्रह। मि० थी० मैकलैन्ड (1858-60)—डा० थामसन की अवकाश अनुपस्थिति में कार्य संचालन, जाने माने ब्रिटिश वनस्पतिज्ञ सर डाल्टन हुकर का भ्रमण। डा० थामस एन्डरसन (1861-70)—सिक्किम हिमालय में कुनैन की प्रयोगात्मक खेती। मि० सी० बी० क्लार्क (1869—71) खासी पर्वत, सिक्किम, उत्तरी पश्चिमी हिमालय, कश्मीर तथा काराकोरम के पौधों के नमूनों का संग्रह, फ्लोरा आफ ब्रिटिश इण्डिया के लेखक सर हुकर के प्रमुख सहयोगी—इनका फ्लोरा आफ ब्रिटिश इण्डिया में प्रमुख योगदान है। सर जार्ज किंग (1871—97)—उद्यान का पुनः निर्माण—भारतीय वनस्पति उद्यान का वर्तमान रूप इन्हीं की देन है, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग की स्थापना, दार्जिलिंग हिमालय में कुनैन पर प्रयोग, कुमायूं, सिक्किम, मलाया प्रायद्वीप तथा अन्य स्थानों के पौधों के सूखे नमूनों का संग्रह, एनल्स ऑफ रायल बोटेनिक गार्डेन, कलकत्ता नामक पत्रिका का प्रकाशन, लॉयड बोटेनिक

गार्डेन दार्जिलिंग की स्थापना । सर डेविड प्रेन 1897—1906) —उद्यान के विभिन्न भागों को भौगोलिक रूप देना, आर्थिक महत्व के पौधे जैसे गेहूं, सरसों आदि को उगाना। पेंडिफुलारिआ, डिओस्कोरेआ, बंगाल प्लान्ट्स का प्रकाशन। कर्नल ए० टी० गेज (1906—23) — नान् हरबेसियस फैनेरोगॅम्स अन्डर कल्टीवेशन एट रायल बोटेनिक गार्डेन,, कलकत्ता का प्रकाशन एउफोरबीआसी के ऊपर कार्य । सर विलियम स्मिथ (1908)—कर्नल गेज की अनुपस्थिति में कार्य संचालन। मि० सी० सी० काल्डर (1923-37)—ऑक्सालिस पानी में उगने वाले पौधे, 'वेजिटेटिव पैटर्न ऑफ इण्डिया' पर कार्य एवं प्रकाशन। डा० जे० एम० कोवन (1926-27)—मि० सी० सी० काल्डर के अवकाश अनुपस्थिति में कार्य संचालन। डा० के० पी० विश्वास (1937-55)—तेल पैदा करने वाले पौधों की खेती, पानी में पाये जाने वाले शैवाल (एल्गी) के ऊपर प्रकाशन । डा० डी० चटर्जी (1955-60) —दर्शकों के लिए सुविधाओं में सुधार, देशज पौधों का अध्ययन एवं वनस्पतिक आधार पर भारत का भौगोलिक विभाजन। डा० जे० सेन (1961-66)—नान् हरबेसियस फैनेरौगैम्स आफ दी इण्डियन बोटेनिक गार्डेन, कलकत्ता का प्रकाशन। डा० एस० एन० मित्र (1968-77)—पौधों के प्रवेशन अनुकूलन में रुचि। डा० डी० बी० देव (1977-82) —औषधीय पौधों के लिए उद्यान में अलग से व्यवस्था, कुछ पादप कुलों पर शोध तथा मनीपुर फ्लोरा का प्रकाशन। डा० आर० के० चक्रवर्ती (1982) — पौधों के जर्मप्लास्म संग्रह हेतु चेष्टा।

आभार

लेख से संबन्धित सभी चित्र श्री चरण चाँद मुखर्जी, भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण हावड़ा से प्राप्त हुये हैं।

41. भारत में कुछ उपयोगी विदेशी पौधे

दया शंकर पाण्डेय

आलू, गोभी, मक्का, अमरूद, बबूल, धनियां, काजू, गुलाब, बिनौला, गेंदा, गुड़हल आदि पौधे भारत के देशज नहीं हैं। ऐसे ही बहुत से पौधे जिन्हें हम प्रतिदिन देखते हैं विदेशों के देशज हैं एवं इनका भारत के आर्थिक एवं सामाजिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

विदेशी पौधों का प्रवेश मुख्यतः अनाज, दालों, सब्जी, फल, शोभनीय-पुष्प आदि के लिए हुआ। ऐसे भी अनेक पौधे हैं जो यहां के उद्यानों में अनुसंधान के उद्देश्य से विदेश से लाये गये। तेजी से बढ़ने वाले ऐसे पौधे जो जलाने व इमारती लकड़ी के काम में आते हैं, बाहर से लाये गये हैं।

हुकर[1] तथा चैम्पियन व ट्रेवर[2] के मतानुसार, भारत की वनस्पति आसपास के देशों से मिश्रित है। चटर्जी,[3-4] के अनुसार, लगभग 60 प्रतिशत द्विबीजपत्रीय पौधों का मूल उत्पत्ति स्थान भारत था। महेश्वरी[5-6] के अनुसार दिल्ली की वनस्पतियों में 27 प्रतिशत विदेशी पौधे हैं। जबकि शर्मा व पाण्डेय[7] के अनुसार इलाहाबाद की वनस्पतियों में 36.16 प्रतिशत विदेशी पौधे हैं। महेश्वरी[5] का मत है कि भारत में लगभग 40 प्रतिशत विदेशी पौधे हैं।

---

1. हुकर, जे० डी० (1904) **ए स्केच आफ दी फ्लोरा आफ ब्रिटिश इन्डिया**, लन्दन।
2. चैम्पियन, एच० एस० एवं जी० टेवर (1938) **मेनुअल आफ इन्डियन सीलवीकल्चर,** लन्दन।
3. चटर्जी, डी० (1940) स्टडीज इन इन्डिमिक। फ्लोरा आफ इन्डिया एण्ड बर्मा। **जर्न० राय० सोस० बंगाल** 2 (5) 19—61.
4. चटर्जी, डी० (1962) फ्लोरीस्टीक पैटर्न आफ इन्डियन वेजीटेशन **प्रोस० समर स्कूल बा०** दार्जलिंग (1960) : 32—42, दिल्ली।
5. महेश्वरी, जे० के० (1962) स्टडीज आन दी नेचुरालाइज्ड फ्लोरा आफ इन्डिया। **प्रोस० समर स्कूल बाट०** दार्जलिंग (1960) : 156-170, नई दिल्ली।
6. महेश्वरी, जे० के० (1963) **दी फ्लोरा आफ दिल्ली**, नई दिल्ली।
7. शर्मा बी० डी० एवं डी० एस० पाण्डेय (प्रेस में) **एक्साटिक्स इन दी फ्लोरा आफ इलाहाबाद**।

ये पौधे कब आये, कैसे आये, सबसे पहले कहां लगाये गये एवं देश के अनेक भागों में कैसे फैल गये।

यह उल्लेखनीय है कि आर्थिक महत्व के अधिकतर विदेशी पौधों का प्रवेशन भारतीय वनस्पति उद्यान तथा अन्य उद्यानों के माध्यम से ही किया गया। कुछ उपयोगी विदेशी पौधों के उत्पत्ति स्थान, भारत में प्रवेशन का समय तथा माध्यम आदि का संक्षिप्त ब्यौरा नीचे तालिका में दिया गया है।

तालिका

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
सब्जी :		
फूल गोभी (ब्रासीका ओलेरासेआ प्र० बोट्रीटिस)	यूरोप	मुगलकाल में लाई गई।
बन्दा गोभी/पात गोभी (ब्रा० ओलेरासेआ प्र० कापीटाटा)	"	—
गांठ गोभी (ब्रा० आलेरासेआ प्र० गोनीलोइडेस)	"	1845 के आसपास लाई गई।
चुकन्दर (बेटा वुल्गारिस)	"	1794 के पहले भारतीय वनस्पति उद्यान हावड़ा में लगाई गई।
गाजर (डाउकास कारोटा प्र० साटीवा)	"	—
भिंडी (आबेलमोस्कुस एस्कुलेन्टुस)	अफ्रीका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	—
टमाटर (लोकोपेर्सिकॉन लौकोपेर्सिकुम)	"	16वीं शताब्दी में लाया गया।
आलू (सोलानुम टुबेरोसुम)	अमेरिका का शीत प्रदेशी भाग	17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आया।

मूली (राफानुस साटीवुस)	चीन एवं जापान	—
पालक (स्पीनासेआ ओलेरासेआ)	पर्शिआ एवं अरब	1814 के पूर्व लाई गई।
अनाज		
मक्का (जेआ माइस)	मध्य अमेरिका	—
बाकला (वीसिआ फाबा)	भूमध्यसागरीय क्षेत्र	1492 के बाद आया।
लूसर्न (मेडिकागो साटीवा)	ईरान तथा अफगानिस्तान का पर्वतीय क्षेत्र	भा० व० उ० में 1796 में बी० बोसवेल द्वारा लाया गया।
बरसीम (ट्रीफोलिउम आलेक्सान्ड्रीनुम)	सीरिया तथा आस्ट्रेलिया	भा०व०उ० में 1803 में टी० ग्राहम द्वारा लाया गया।
ज्वार (सोर्घुम हालेपेन्से)	अरब	—
बाजरा (पेन्नीसेटुम टीफोइडेस)	पश्चिमी अफ्रीका	लगभग 2000 वर्ष पहले आया।
फल		
शरीफा/सीताफल (आन्नोना स्कुआमोसा)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	16वीं शताब्दी में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया।
लक्ष्मणफल/मामफल (आ० मुरीकाटा)	,,	भा० व० उ० में ए० राबर्ट द्वारा 1811 में लाया गया।

देशी नाम कोष्टक मे लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
रामफल (आ० रेटीकुलाटा)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	1794 के पूर्व भा० व० उ० में था ।
कमरख (आवेर्‌होआ काराम्बोला)	इन्डोनेशिया	1794 के पहले लाया गया ।
चीकू (मानीलकारा आकास)	अफ्रीका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	16वीं शताब्दी में लाया गया ।
लीची (लीची चीनेन्सिस)	चीन	1794 के पहले आया ।
आड़ू (प्रूनुस पेर्सिका)	"	1872-92 के मध्य आया ।
लुकाट (एरिओबोट्रीआ जापोनिका)	चीन व जापान	1832 के आसपास आया ।
अमरूद (प्सीडिउम गुआजावा)	मध्य अमेरिका	1892 के पूर्व पुर्तगालियों द्वारा प्रवेशन किया गया ।
आवाकाड़ो (पेर्सेआ अमेरिकाना)	"	19वीं शताब्दी के मध्य में लाया गया ।
पपीता (कारीका पपाया	मध्य अमेरिका तथा वेस्ट इन्डीज	पुर्तगालियों द्वारा लाया गया ।
अन्ननास (आनानास कॉमोसुस)	दक्षिणी अमेरिका	कोलम्बस के समय 1502-4 के मध्य में आया ।

ब्रेडफ्रूट (आर्टोकार्पुस आल्टीलिस)	पोलेनेसिया	भा० व० उ० में 1787 तथा 1793 के मध्य कर्नल राबर्ट कीड द्वारा लाया गया।
लकड़ी		
महोगनी (स्वीएटेनिआ मेलानोक्सीलोन)	जमाइका तथा मध्य अमेरिका	हान्डुरास से 1795 में भा० व० उ० में लाया गया।
विलायती बबूल (अकासिआ मेलानोक्सीलोन)	आस्ट्रेलिया	1870 के पहले आया।
बबूल (अ० नीलोटिका उप० इंन्डिका)	उत्तरी अफ्रीका तथा अरब	11वीं शताब्दी के बाद अरब व्यापारियों द्वारा लाया गया।
छाल-सत्व एवं रंग		
विलायती हल्दी/लटकन (बिक्सा ओरेल्लाना)	अमेरिका	भा० व० उ० में 1795 के पहले लाया गया।
डिवि-डिवि (साएसाल्पीनिआ कोरिआरिआ)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	1845 के पहले लाया गया।
सिल्वर-वैटिल (अ० डेआलबाटा)	आस्ट्रेलिया	—
नशीले एवं पेय पदार्थ		
कोकेन (एरीथ्रोक्सीलुम कोका)	दक्षिणी अमेरिका	—
तम्बाकू (नीकोटिआना टाबाकुम)	,,	1605 के आसपास अकबर के शासन काल में पुर्तगालियों द्वारा लाया गया।

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
कहुवा (काफ्फेआ अराबिका)	इथियोपिया	17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आया।
लाइबेरिया की काफी (का० लीबेरिका)	लाइबेरिया	1872 के आसपास लाई गई।
कोको (थेओब्रोमा काकाओ)	दक्षिणी अमेरिका	17वीं शताब्दी में दक्षिण-पूर्व एशिया में प्रवेशन हुआ।
अफीम/पोस्त (पापावेर सोम्नीफेरुम)	दक्षिणी यूरोप	18वीं शताब्दी तक अरब तथा पारसी व्यापारियों द्वारा लाया गया। 1794 के पहले भा० व० उ० में था।
मसाला		
धनियां (कोरिआन्ड्रुम सातीवुम)	दक्षिणी यूरोप	—
सौंफ (फोएनिकुलुम वुल्गारे)	,,	—
जायफल (मीरीस्टिका फ्राग्रान्स)	,,	1787 से 1793 के मध्य भा० व० उ० में लाया गया।
वैनिला (वानील्ला फ्राग्रान्स)	मेक्सिको	भा० व० उ० में सी० स्मिथ द्वारा 1802 में मोलस्का से लाकर प्रवेशन किया।
मिर्च (कापसीकुम आन्नुउम)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	—

तेल एवं वसा

काजू (अनाकार्डिउम ओक्सीडेन्टाले)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	भा० व० उ० में सी० स्मिथ द्वारा 1802 में मोलक्का से लाकर प्रवेशन किया।
अलसी (लीनुम उसीटाटीस्सिमुम)	भूमध्यसागरीय क्षेत्र	प्राचीन काल से।
मूंगफली (अराचीस हीपोजेआ)	दक्षिणी अमेरिका	सम्भवत: 16वीं शताब्दी में आया। भा० व० उ० में 1794 के पहले था।
नीलगिरि (एउकालिप्टुस सीट्रिओडोरा)	आस्ट्रेलिया	सर्वप्रथम नन्दी पर्वत (कर्नाटक) पर टीपू बादशाह द्वारा लाया गया।
सोयाबीन (ग्लीसिने माक्स)	सम्भवत: कोचीन-चाइना जापान एवं जावा	भा० व० उ० में मोलक्का से लाया गया।
सूरजमुखी (हेलिआन्थुस आन्नुउस)	उत्तरी अमेरिका	भा० व० उ० में 1794 के पूर्व प्रवेशन हुआ।
सफेद बोतल ब्रुश (मेलालेउका लेउकाडेन्ड्रोन)	मलेशिया	भा० व० उ० के अन्दर 1810 में लेफ्टिनेन्ट एम० केन्जी द्वारा लाया गया।
पिपर मिन्ट (मेन्था पीपेराटा)	यूरोप	—
अरंडी (रिसीनुस कोम्मूनिस)	अफ्रीका	भा० व० उ० में 1794 के पूर्व प्रवेशन हुआ।
पाम आइल (एलाएइस गुआनीन्सिस)	पश्चिमी अफ्रीका	भा० व० उ० में 1836 के पूर्व आया था।
गुलाब (रोसा डामास्सेना)	सीरिया	लगभग 1526 में प्रवेशन हुआ।

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
रेशेदार		
कपास (गास्सीपिअम हीरसुटुम)	मैक्सिको	भा० व० उ० में 1794 के पूर्व लगाया गया।
रेम्ही (बोहमेरिआ नीवेआ	चीन, जापान एवं मलाया द्वीप समूह	विलियम राक्सबर्घ के समय में (1832) भा० व० उ० में लाया गया।
औषध		
इपेकाक/इपेकाकुन्हा (सेफाएलिस इपेकाकुआन्हा)	ब्राज़ील	1866 में प्रवेशन हुआ।
सतुरी/रुह (रुटा ग्रॉवेओलेन्स)	भूमध्य सागरीय क्षेत्र	1832 के पहले आया।
बिनौला (गॉसीपिउम हेर्बासिउम)	अरब एवं एशिया माइनर	1832 के पहले भा० व० उ० में लगाया गया।
छोटा चांद (राउवोल्फिआ टेट्राफील्ला)	वेस्ट इन्डीज	सम्भवत: 1903 के आसपास, प्रथम बंगाल में पाया गया। भा० व० उ० में 1794 में लाया गया।
धतूर (डाटूरा मेटेल)	अमेरिका काअयनीय प्रदेश	1832 के पहले आया।
छुई-मुई/लाजवन्ती (मीमोसा पुडिका)	यूरोप, उत्तरी अफ्रीका व पश्चिमी एशिया	16वीं शताब्दी में प्रवेशन हुआ।
अकानदो/परियाबेल (सीसाम्पेलास पारीएरा)	दक्षिणी अमेरिका	गोवा में जेसुत मिशनरी द्वारा प्रवेशन हुआ।

घी-कुआर/घृत कुमारी (आलोए बार्बाडेन्सिस)	भूमध्यसागरीय क्षेत्र	भा० व० उ० में 1845 के पहले लाया गया।
बागवानी (शोभनीय पौधे)		
एजीरेटम (आजेराटुम हूस्टोनिआनुम)	मैक्सिको	भा० व० उ० में 1845 के बाद लाया गया।
कास्मस (कोस्मोस बीपीन्नाटुस)	,,	भा० व० उ० में 1845 के पहले लाया गया।
डहेलिया (डाह्लिआ पीन्नाटा)	,,	भा० व० उ० में 1865 में प्रवेशन किया गया।
गेंदा (टाजेटेस एरेक्टा) व (टा० पाटुला)	,,	1794 के पूर्व भा० व० उ० में लाया गया।
जीनिया (जीन्नीआ एलेगान्स)	मैक्सिको	1794 के पूर्व भा० व० उ० में लाया गया।
सालविया (साल्विया स्प्लेन्डेस)	,,	भा० व० उ० में 1845 के पहले लाया गया।
हालीहाक (आल्थाएआ रोसेआ)	चीन	1845 के पूर्व लाया गया।
कार्नेशन (डिआन्थुस चीनेन्सिस	,,	भा० व० उ० में 1802 में लाया गया।
एस्टर (काल्लीस्टेफुस चीनेन्सिस)	,,	भा० व० उ० में डा० एफ० बुकनान द्वारा प्रवेशन 1802 में किया गया।
लार्कस्पर (डेलफीनिउम अजासिस)	यूरोप	1814 के आसपास लाया गया।

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
नाइजेल्ला (नीगेल्ला डामास्सेना)	यूरोप	भा० व० उ० में कर्नल गार्स्टिन द्वारा 1802 में लाया गया।
कैन्डीटपट (इबेरिस अमारा)	,,	भा० व० उ० में सम्भवतः 1845 के बाद लाया गया।
पैंजी (विओला ट्रीकोलोर प्र० हॉर्टेन्सिस)	,,	—
स्वीट विलियम (सिलेने अर्मेरिआ)	,,	—
बालफ्लावर (चेइरान्थुस चेइरिई)	दक्षिणी यूरोप	1840 में जनरल मार्टिन द्वारा भा० व० उ० में प्रवेशन हुआ।
डेज़ी (बेल्लिस पेरेन्निस)	,,	भा० व० उ० में 1845 के बाद लाया गया।
कलेन्डुला कालेन्डुला ओफिसिनालिस)	दक्षिणी यूरोप	1814 के आसपास आया।
कार्नफ्लावर (सेन्टाउरेआ सीआनुस)	दक्षिण-पूर्व यूरोप	सम्भवतः 1845 के पहले आया।
लाइमोनियम (लीमोनिउम सीनुआटुम)	,,	1845 के बाद लाया गया।
गार्डेन पापी (पापावेर र्‌होएआस)	यूरोप, पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका	—

एन्टीरीनम् (आन्टीरह्नीनुम माजुस)	दक्षिणी यूरोप, सीरिया तथा उत्तरी अफ्रीका	1886 में प्रवेशन हुआ।
बायला (विओला ओडोराटा)	यूरोप एवं अफ्रीका	भा० व० उ० में 1845 के आसपास लाया गया।
कैलिफोर्नियन पापी (एस्चोलजिआ कालीफोर्निका)	केलीफोर्निया	भा० व० उ० में 1845 के बाद लाया गया।
क्लाकिया (क्लार्किआ एलेगान्स)	"	भा० व० स० में 1845 के पहले लाया गया।
ब्रोवेलिया (ब्रोवाल्लिआ वीस्कोसा)	दक्षिणी अमेरिका	सम्भवत: 1845 के बाद लाया गया।
गार्डेन निकोटियाना (नीकोटिआना अलाटा प्र० ग्रान्डीफ्लोरा)	"	—
शीजेन्थस (शीजान्थुस वीसेटोनैन्सिस)	"	—
मीमुलस (मीमुलुस लुटेउस)	"	—
पोर्चुलाका (पोर्टुलाका पीलोसा उप० ग्रान्डीफ्लोरा	दक्षिणी अमेरिका	पुर्तगालियों द्वारा 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लाया गया।
गोडेशिया (गोडेटिआ अमोएना)	अमेरिका	सम्भवत: 1845 के बाद लाया गया।
कोरियाप्सीस (कोरेओप्सिस लान्सेओलाटा) (को० स्टील्लमानिई)	"	—
गेलार्डिया (गाईल्लार्डिआ पुल्चेल्ला)	"	—

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
डाइमोर्फोथिका (डीमोरफोथेका प्लूविआलिस)	दक्षिणी अफ्रीका	सम्भवत: 1845 के बाद लाया गया।
गैंमोलेपिस (गामोलेपिसस टाजेटेस)	,,	—
गजानिया (गजानिआ रीन्जेन्स)	,,	—
वैनीडियम (वेनीडिउम फास्टुओसुम)	,,	—
लोबेलिया (लोबेलिआ एरीनुस)	,,	—
नीमेसिया (नेमेसिआ स्ट्रूमोसा, ने० वेर्सीकोलोर)	,,	—
ब्लू डेजी (फेलीसिआ बर्गेरिआना)	,,	सम्भवत: 1897 के आसपास लाया गया।
लायनम् (लीनुम ग्रान्डीफ्लोरुम)	उत्तरी अफ्रीका	सम्भवत: 1845 के बाद प्रवेशन हुआ।
आर्क्टोटिस (आर्क्टोटिस स्टोएचाडीफोलिआ प्र० ग्रान्डिस)	अफ्रीका	संभवत: 1845 के बाद प्रवेशन हुआ।
पिंक (डीआन्थुस चीनेन्सिस)	चीन तथा जापान	1796 के आसपास लाया गया।

गिप्सोफिला (जीप्सोफिला एलेगान्स)	काकासस तथा एशिया माइनर	1897 के बाद लाया गया।
क्लाइएन्थस (क्लीआन्थुस डाम्पीएरी)	आस्ट्रेलिया	1878 के पहले लाया गया।
ब्रैकीकोम (ब्राकीकोमे ईबेरीडीफोलिआ)	,,	सम्भवतः 1845 के बाद लाया गया।
हेलीप्टेरम (हेलीप्टेरम रोसेउम)	,,	1897 के बाद प्रवेशन हुआ।
स्वीट पी (लाथीरुस ओडोरेटुस)	इटली	भा० व० उ० में प्रवेशन 1799 में किया गया।
सीनोग्लासम (सीनोग्लोस्सुम अमाबीले)	पेरु	—
हेलीट्रोप (हेलिओट्रोपिउम पेरुविआनुम)	,,	भा० व० उ० में 1801 में लाया गया।
गुड़हल (हिबिस्कुस रोसासीनेन्सिस)	चीन	भा० व० उ० में 1794 में लाया गया।
चीनी गुलाब (रोसा चीनेन्सिस)	,,	भा० व० उ० में विलियम राक्सबर्घ द्वारा 1794 में लाया गया।
मोर पंखी (थुजा ओरिएन्टालिस)	चीन व जापान	भा० व० उ० में 1794 में लाया गया।
गंधराज (गार्डेनिआ जास्मीनिओइडेस)	,,	17वीं शताब्दी में प्रवेशन हुआ।

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल क्षेत्र देश	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
चीइना पाम (लिविस्टोना चीनेन्सिस)	,,	1795-1804 के मध्य में लाया गया।
गोरख इमली (अडानसोनिआ डिजीटाटा)	अफ्रीका	अरब व्यापारियों द्वारा 1873 के पहले लाया गया।
टूलिप/फाउन्टेन ट्री (स्पाथोडेआ काम्पानुलाटा)	अफ्रीका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	—
मुसण्डा (मुस्साएन्डा लुटेओला)	,,	1860 के बाद लाया गया।
लहसुन लता (बिग्नोनिआ अल्लीआसेआ)	ब्राजील	भा० व० उ० में 1845 के बाद लाया गया।
बोगेनविलिया (बोउगाइनवील्लेआ स्पेक्टाबिलिस)	,,	भा० व० उ० में 1839 में प्रवेशन किया गया।
आलू लता (सोलानुम सेआफोर्थिआनुम)	,,	17वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में लाया गया।
एलामन्डा (अल्लामान्डा काथार्टीका)	,,	डब्लू हैमिल्टन द्वारा 1803 में भा० व० उ० में प्रवेशन किया गया।
पैशन फ्लावर (पास्सीफ्लोरा काएरुलेआ)	,,	भा० व० उ० में 1799 में लाया गया।
अपराजिता (क्लीटोरिआ टेर्नाटेआ)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	भा० व० उ० में 1814 के पहले प्रवेशन हुआ।

विलायती बेल (क्रेसेन्टिआ कुजेटे)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	1795 में डब्लू हैमिल्टन द्वारा भा० व० उ० में लाया गया।
स्टाचीटारफीटा (स्टाचीटारफेटा जामाईकान्सीस)	,,	भा० व० उ० में 1798 में लाया गया।
पीला कनेर (थेवेटिआ पेरुविआना)	,,	भा० व० उ० में 1795 में लाया गया।
कालवीलीया (कोलवील्लेआ रासेमोसा)	माडागास्कर	भा० व० उ० में 1840 में लाया गया।
हजारा खारा (एउफोर्बिआ मीलिई)	,,	भा० व० उ० में 1845 के पहले लाया गया।
गुलमोहर (डेलोनीक्स रेजिआ)	,,	भा० व० उ० में 1840 के आसपास आया।
ट्रैवलर्स ट्री (यात्री-वृक्ष) (रावेनाला मडागास्कारिएन्सिस)	,,	कैप्टन टेनान्ट द्वारा 1802 में मारुशिश से लाकर भा० व० उ० प्रवेशन किया गया।
कामता (केबीना पेन्डुला)	मैक्सिको	1800 में डब्लू हैमिल्टन द्वारा भा० व० उ० में लाया गया।
गुल शब्बो (पोलिआन्थेस ट्बेरोसा)	,,	1794 के पहले लाया गया।
लाल चम्पा (प्लूमेरिआ रुब्रा)	मैक्सिको से वेनेजुएला	सम्भवत: 1841 में भा० व० उ० में लाया गया।
सफेद गुड़हल (हिबीस्कुस सीरिआकुस)	सीरिया, चीन एवं अफ्रीका	भा० व० उ० में 1794 के पहले लगाया गया।
मोमबत्ती-पेड़.कैन्डल ट्री (पार्मेन्टिएरा सेरीइफ़ेरा)	पनामा	1845 के बाद आया।

देशी नाम कोष्टक में लैटिन नाम	मूल देश क्षेत्र	टिप्पणी प्रवेश का समय, माध्यम, साधन आदि
सिल्वर ओक (ग्रेवोल्लेआ रोबुस्टा)	क्वीन्सलैंड तथा न्यू साउथवेल्स	सम्भवतः 1845 के पहले लाया गया।
सफेद चम्पा (प्लूमेरिआ अल्बा)	वेस्ट इन्डीज	1801 में लाया गया।
विलायती कीकर (पार्किन्सोनीआ आकूलेआटा)	,,	डब्लू हैमिल्टन द्वारा 1797 में भा० व० उ० में प्रवेशन हुआ।
स्पैनिस डागर (युक्का ग्लोरिओसा)	उत्तरी अमेरिका	1799 में भा० व० उ० में लाया गया।
स्वीट अकेसीया (अकासिआ फार्नेसिआना)	बर्मा, मलाया, न्यू गाइना तथा फिलीपाइन्स	सम्भवतः 1832 के पूर्व लाया गया।
रंगून लता (क्युइस्क्युआलिस ईन्डिका)	,,	—
जावा कैसिया (कास्सिआ जावानिका)	जावा, सुमात्रा	संभवतः 1845 के बाद लाया गया।
गुलाब (रोसा बोउर्बोनीका) पत्ता बहार	बर्बन द्वीप समूह	1940 में भा० व० उ० में लाया गया।
क्रोटान (कोडीआएउम वारीएगाटुम प्र० पिक्टुम)	जावा से आस्ट्रेलिया	भा० व० उ० में सी० स्मिथ द्वारा 1798 में लाया गया।
बोतल ब्रश (काल्लीस्टेमोन सीट्रीनुस)	आस्ट्रेलिया	1804 में भा० व० उ० में प्रवेशन हुआ।

क्रिसमस ट्री (आराउकारिआ एक्सेल्सा)	आस्ट्रेलिया	1840 के आसपास भा० व० उ० में लाया गया।
झाऊ (कासुआरिना एक्युइसेटीफोलीआ)	,,	1798 में भा० व० उ० में लाया गया।
डबलकोकोनट/युग्म नारियल (लोडोइसेआ माल्डीविका)	सीचलस द्वीप समूह	भा० व० उ० में 1894 में प्रवेशन हुआ।
बाटल पाम/बोतल पाम (रोईस्टोनेआ रेगिआ)	क्यूबा तथा पनामा	भा० व० उ० में 1845 के पहले लगाया गया।
विशाल जल-लिली (विक्टोरिआ आमाज़ोनिका)	ब्राज़ील	भा० व० उ० में 1873 के आसपास लाई गई।
सान्ताक्रुज-लिली (विक्टोरिआ क्रुजिआना)	सान्ताक्रुज	भा० व० उ० में 1981 में लाई गई।
शिव लिंगी वृक्ष (कोउरोउपीटा गुइआनेन्सिस)	अमेरिका का उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र	—
आर्किड-वृक्ष (वाउहीनिआ ब्लेकिआना)	चीन	सर्वप्रथम 1968 में कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली में प्रवेशन हुआ।

42. भारत में विदेशी खर पतवार

प्रकाश कुमार तिवारी एवं
गौर गोपाल माइती

जहां तक यूरोपीय विदेशियों का सवाल है वास्को-द-गामा ऐसे प्रथम पुर्तगीज थे जिन्होंने सन् 1486 ई० में भारत (गोवा) के जमीन पर पदार्पण किया। और उसके बाद तो भारत को सोने की चिड़िया समझकर हजारों की तादाद में विदेशी भारत में आने लगे। पहले तो इनके आगमन का रास्ता ब्राजील और केप आफ गुड होप होकर ही रहा पर बाद में ये मेडीटेरैनियन समुद्र होकर स्वेज कैनाल द्वारा भारत आने लगे। हालांकि इनका सम्बन्ध तो भारत के व्यापार से था पर देश (खासकर दक्षिण भारत) में जगह-जगह इन्होंने अपने ठहराव के दौरान कई विदेशी पौधों का बीजारोपण किया। दुर्भाग्यवश अनेक विदेशी खर पतवार या मोथे भी इन उपयोगी पौधों और व्यापार की अन्य सामग्रियों के साथ भारत आ गए और जल्द ही यहां की उपजाऊ जमीन पर अपनी प्रभुसत्ता जमा ली। चूंकि ये विदेशी जहाज ब्राजील मैक्सिको और केप आफ गुड होप होकर भारत आते रहे अत: क्रमश: कई दक्षिण अमरीकी और अफ्रीकी मोथे इस प्रकार आ गए। ग्रेट ब्रिटेन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बंगाल में सन् 1787 ई० में और सन् 1800 ई० में शिबपुर और श्रीरामपुर में वनस्पति उद्यान बनाते वक्त भी कई विदेशी पौधे (मोथे) भारत आए। युग बीते, और अब ये मोथे, साधारण देशी पौधों के साथ इतने घुलमिल गये हैं कि इन्हें विदेशी कहना औपचारिक सा लगता है।

इसी तरह के कुछ विदेशी मोथों का विवरण यहां किया जा रहा है, इनमें से कुछ, उपयोगी पौधों और मानव समाज के लिए बड़े हानिकारक हैं।

आल्टेर्नान्थेरा फिकोइडेआ

यह मोथा अमारान्थासी कुल का है। जलीय या अर्धजलीय होते हैं। इनका स्वदेश दक्षिण अमरीका संभवत: ब्राजील है। भारत में सर्वप्रथम इसे उत्तर प्रदेश के कानपुर और वाराणसी में पाया गया। फिर इनकी प्रचुरता बिहार, बंगाल, मणिपुर आदि राज्यों में पाई गई। तमिलनाडु के कोयम्बटूर से भी इनकी प्राप्ति की खबर है। बंगाल (हावड़ा और 24 परगना) के स्थानीय बाजारों में इनकी बिक्री सब्जी के रूप में होती है जिसे 'सांच साक' कहते हैं।

आल्टेर्नान्थेरा पुन्गेन्स

यह उष्णकटिबंधी अमरीकी मोथा है। भारत में सर्वप्रथम इसे बिहार के कोलगोंग और भागलपुर में पाया गया। परन्तु अब इसे दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत (बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश) तक पाया जाने वाला सामान्य मोथा माना जाता है।

आल्टेर्नन्थेरा पोलीगोनोइडेस

ब्राजील स्वदेशीय इन मोथों का प्रवेश भारत में सर्वप्रथम 20वीं शताब्दी के आरम्भ में हुआ। इनकी प्रकटता प्रथम वाराणसी और कानपुर के गंगा घाट से ज्ञात हुई। पुन: इसे वैज्ञानिकों ने बिहार (छपरा, पटना व पूर्णिया) बंगाल (24 परगना) कर्नाटक (मैसूर) और तमिलनाडु (कोयम्बटूर) से बहुतायत में खोज निकाला। अब यह देश में तेजी से फैलता हुआ फसलों की बरबादी का कारण बनता जा रहा है।

इपोमोएआ कार्नेआ

कोन्वोल्वुलासी कुल के अन्तर्गत आने वाला यह मोथा दक्षिण अमरीकी उत्पत्ति का है। भारत में सर्वप्रथम गैम्बेल महोदय ने सन् 1921 ई० में इसे मद्रास के वनस्पति उद्यान में पाया और इसका वितरण वहीं तक सीमित बताया। परन्तु बाद में कई वैज्ञानिकों ने उसे उड़ीसा, देहली, पंजाब, बिहार, बंगाल आदि राज्यों से घोषित किया। अब यह पूरे देश में बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। यहां तक कि इसे उखाड़ फेंकने की एक समया बनी हुई है।

इपोमोएआ फीस्टुलोसा

यह भी दक्षिणी अमरीकी मोथा है। जो अपनी अन्य जाति इ० **कार्नेआ** (जिसका विवरण ऊपर किया जा चुका है) की अपेक्षा भारत के दलदली स्थानों, धान के खेतों और सड़कों के किनारे बड़ी तेजी से फैलता जा रहा है। ये झाड़ियाँ अब एक विकट समस्या बनती जा रही हैं।

एइचोर्निया क्रास्सीपेस

पोन्टेडेरिआसी कुल के इस मोथे को पुरानी दुनिया में सन् 1829 ई० में इसके खूबसूरत फूलों के कारण लगाया गया था, हालांकि इसकी उत्पत्ति ब्राजील से हुई है। ये जलीय मोथे प्राय: पोखरों और धाराओं में पाए जाते हैं। अपने तीव्र वर्धीजनन के कारण जल्द ही ये जलाशय या जलस्त्रोत को पूर्णतया ढक लेते हैं। इसके प्रथम जंगली रूप में पाये जाने की घोषणा श्रीलंका से सन् 1914-1916 ई० में हुई और फिर भारत के विभिन्न राज्यों असम, उड़ीसा, कर्नाटक (बंगलौर), बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र (बम्बई) आदि में इसकी प्रचुरता पाई गई। अब इनका उन्मूलन लगभग असम्भव सा हो गया है।

एउपाटोरिउम अडेनोफोरम

सन् 1900 ई० में मेक्सिको के इस मोथे को जाना गया और भारत के पहाड़ी जंगलों पर लगाया गया परन्तु अब तो यह दार्जलिंग (बंगाल) और ऊटाकामांड (तमिलनाडु) आदि पर्यटक स्थलों में सामान्य रूप से प्रचुरता में पाया जाता है। यह काम्पोसिटी कुल का पौधा है।

एउफोर्बिआ चमाएसिस

पश्चिमी अफ्रीका और माउरीटीयस उत्पत्ति का यह मोथा एउफोर्बिआसी कुल का

सदस्य है। यद्यपि भारत में हुकर महोदय ने सन् 1800 ई० में इसकी उपस्थिति की जानकारी दी परन्तु तब इसकी सही पहचान न की जा सकी। पुनः सन् 1949 ई० में बम्बई और फिर पूरे भारत से इसकी उपस्थिति की घोषणा होने लगी। हालांकि बिहार और उड़ीसा राज्यों में अभी इनका पदार्पण ही हुआ है।

एरीजेरोन कार्विन्स्किआनुस

मध्य अमरीका उत्पत्ति के ये पौधे काम्पोसिटी कुल के हैं। हमारे देश में इनकी घोषणा क्रमशः दक्षिण और उत्तर भारत से की जा चुकी है। उत्तर प्रदेश में देहरादून के निकट तो इनकी उपस्थिति बिल्कुल स्वाभाविक सी हो गई है।

स्पेर्माकोसे लाटीफोलिआ

विश्व के अनेक देशों में पाए जाने वाला यह पौधा दक्षिण अमरीका उत्पत्ति का है। रुबिआसी कुल के इस खर पतवार की उपस्थिति मध्य अमरीका से लेकर बोलिमिया और वेस्ट इन्डीज, पूर्वी अफ्रीका, भारत, श्रीलंका, नेपाल, भूटान, बर्मा, मलाया पेनिनसुला, जावा और आस्ट्रेलिया इत्यादि देशों में पायी जाती है। भारत में पहले इसे बोरेरिआ वंश की एक अन्य जाति समझी जाती रही पर अब इसके सही पहचान के बाद इसकी उपस्थिति दक्षिण भारत (केरल) और उत्तर भारत से सूचित की जा रही है। यह पौधा देश में तेजी से फैलता जा रहा है।

क्रोटोन बोन्प्लान्डिआनुस

यह पौधा एउफोर्बिआसी कुल के अन्तर्गत आता है। भारत में इस पौधे का पदार्पण इसके स्वदेश पाराग्वाए से (बंगलादेश होकर) पश्चिम बंगाल (हुगली नदी द्वारा) में सन् 1903 ई० में हुआ। पुनः इसके प्रादुर्भाव की जानकारी असम, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों से हुई और अब इसने देश के अधिकांश भागों में घर कर लिया है। ये ऊसर और उपजाऊ दोनों ही जमीनों में बड़े आराम से उगते पाये जाते हैं। अतः निःसन्देह हमारे खेतों के लिए ये एक समस्या बन चुके हैं।

क्लेओमे रुटीडोस्पेर्मा

यह पौधा काप्पारासी कुल का है। हालांकि इसका स्वदेश पूर्वी उष्णकटिबंधी अफ्रीका है। परन्तु भारत में इसका पदार्पण हाल ही में पश्चिम बंगाल के विभिन्न भागों में हुआ है। इसके तीव्र गति से फैलने की दिशा इसे दुविधाजनक पौधों की पंक्ति में रखती है।

कोन्वोल्वुलुस आर्वेन्सिस

कोन्वोल्वुलासी कुल के इस यूरोपीय पौधे का जंगली रूप सर्वप्रथम बिहार राज्य के उत्तरी भागों में पाया गया। अब ये अपनी प्रचुरता बंगाल (24 परगना) आदि में भी दर्शाते

हैं। भारत के उपजाऊ खेतों में इनकी समृद्धि का कारण इनके खास आकार में राइजोम है जो इनके वर्धी जनन में बहुत हद तक सहायता देते हैं।

कालस्ट्रोएमिआ पुबेस्सेन्स

यह एक उष्णकटिबंधी अमरीकी खर पतवार है। जिगोफील्लासी कुल के इस मोथे को सर्वप्रथम 1965 ई० में बेनेट ने बंगाल के हावड़ा जिले से घोषित किया था और अब यह राज्य के विभिन्न भागों में खेतों और अन्य व्यर्थ स्थानों पर बहुतायत से उगता पाया जाता है। इसके अलावा ये बिहार और महाराष्ट्र से भी सूचित होते रहे हैं।

क्रैस्सोसेफालम क्रेपीडिओइडेस

कम्पोसिटी कुल के ये उष्णकटिबंधी अफ्रीकी स्वदेशीय मोथे, भारत में सर्वप्रथम असम के मैदानों और नागा पहाड़ों से सन् 1938 ई० में घोषित किए गए। परन्तु अब ये पूरे असम और पश्चिम बंगाल राज्यों में फैल चुके हैं। इसके अलावा उत्तर प्रदेश (देहरादून) उड़ीसा, बिहार आदि राज्यों से भी उनकी उपस्थिति सूचित की जा रही है।

गोम्फ्रेना सेलोसिओइडेस

अमारान्थासी कुल का यह हानिकारक मोथा अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, एशिया महाद्वीपों में प्रचुरता से पाया जाता है, जबकि इसका स्वदेश दक्षिण अमरीका है। भारत में सर्वप्रथम इसे तमिलनाडु राज्य में मद्रास और कोयम्बतूर से घोषित किया गया और अब यह पूरे देश में फैल चुका है।

टुर्नेरा सुबुलाटा

ब्राजील उत्पत्ति का यह मोथा टुर्नेरासी कुल का एक सदस्य है। भारत में सर्वप्रथम वोराइगट महोदय ने 1845 ई० में इसे श्रीरामपुर वनस्पति उद्यान, हावड़ा में बीजारोपित बताया, पर अब यह (बंगाल राज्य के) हवड़ा जिले में बहुतायत से जंगली रूप में पाया जाता है।

डेन्टेल्ला सेर्पिल्लीफोलिआ

रुबिआसी कुल के इस मोथे का स्वदेश मलेशिया और आस्ट्रेलिया है। हालांकि भारत में इसका प्रवेश उन्नीसवीं शताब्दी में हुआ परन्तु हाल तक इसकी सही पहचान न हो सकी क्योंकि यह अपनी एक अन्य जाति **डेन्टेल्ला रेपेन्स** (जो शुरू से ही यहाँ बहुतायत में पाया जाता है) से बहुत ही मिलती जुलती है अतः प्रथम इसे सन् 1968 ई० पश्चिम बंगाल और

देश के अन्य राज्यों जैसे आन्ध्र प्रदेश, असम, उड़ीसा, बिहार, त्रिपुरा आदि से घोषित किया गया।

उग्नाफालिउम पुर्पुरेउम

कम्पोसिटी कुल के इस अमरीकी स्वदेशी मोथे की घोषणा भारत में सर्वप्रथम जे० डी० हूकर महोदय ने सन् 1881 ई० में की। अब यह देश के विभिन्न राज्यों अरुणाचल प्रदेश, असम, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, पंजाब, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, मेघालय, राजस्थान, सिक्किम आदि में पूर्णतया घर कर गया है।

पार्थेनिउम हिस्टेरोफोरूस

कम्पोसिटी कुल के इस मोथे का वास्तविक प्रवास वेस्ट इन्डीज, तथा मध्य और उत्तर अमरीका है। यह जहरीला मोथा हमारे पूरे भारतवर्ष में बहुत कम समय में ही बहुत तेजी से फैलता जा रहा है। सर्वप्रथम पूना से सन् 1956 ई० में इसकी घोषणा की गई और तब से सन् 1975 ई० तक के दौरान ही, देश के विभिन्न भागों से इनके विभिन्न वातावरणों में पौधे की प्रकटता घोषित होने लगी जैसे असम, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर-पश्चिम हिमालय, कर्नाटक, जम्मू, देहली, बिहार, बंगाल, मध्य प्रदेश आदि। इस मोथे की तीव्र गति से चतुर्दिक वृद्धि का कारण इसका 'एकीन' फल है जो अपनी विशेष बनावट द्वारा हवा के संग दूर-दूर तक विकिरित होता है।

फालारिस मिनोर

पोआसी कुल के इस प्रचलित घास का स्वदेश मेडीटेरेनियन भाग और बलूचिस्तान है। भारत में बोर महोदय ने पश्चिम बंगाल से इसकी उपस्थिति की सूचना दी फिर इसकी प्रकटता बिहार के विभिन्न भागों में पाई गई और अब तो यह उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र आदि राज्यों तक पहुंच चुका है। यह एक अवांछनीय विदेशी मोथा है जो हमारे देश की गेहूं की फसल को बरबाद कर रहा है।

बोएरहाविया एरेक्टा

भारत में निक्टाजिनासी कुल के इस दक्षिण अमरीकी मोथे की प्रथम सूचना सन् 1960-61 ई० में पांडीचेरी और मद्रास से मिली। पुनः दक्षिण भारत के विभिन्न राज्यों आन्ध्र प्रदेश, केरल तमिलनाडु और पश्चिम भारत के महाराष्ट्र राज्य में तेजी से इन खर पतवारों का प्रादुर्भाव हुआ और अब इनकी उपस्थिति उत्तर प्रदेश (देहरादून आदि) पश्चिम बंगाल (हवड़ा जिला) आदि राज्यों में भी पाई जाती हैं। वह समय दूर नहीं जब ये मोथे हमारे उपजाऊ खेतों में एक नया संकट पैदा कर देंगे।

मिक्रोकोक्का मेरकुरिआलिस

एउफोर्बिआसी कुल के ये मोथे भारत में काफी प्राचीन काल (रावसबर्ग महोदय सन् 1820 ई० के समय) से जाने जाते हैं। वास्तव में इनका स्वदेश अरेबिया और कटिबंधी अफ्रीका है। उस वक्त इनकी उपस्थिति डेकान के पहाड़, बर्मा और बिहार में ही जानी जाती थी, परन्तु अब ये पश्चिम बंगाल में भी बहुतायत में पाए जाने लगे हैं।

मिट्राकार्पुस वेर्टीसील्लाटुस

रुबिआसी कुल के ये मोथे जिनका स्वदेश उष्णकटिबंधी अफ्रीका है भारत में काफी हाल में ही आए हैं। हालांकि सन् 1959 ई० में इन्हें अरुणाचल प्रदेश से प्राप्त किया गया था। परन्तु तब इसकी सही पहचान न हो सकी। फिर सन् 1967 ई० में दक्षिण भारत से इसकी प्रथम प्रकटता की घोषणा हुई और अब तो यह पूरे भारत में बहुत तेजी से फैलता जा रहा है।

लोबेलिआ राडीकान्स

कम्पानुलासी कुल का यह मोथा दक्षिण पूर्व एशिया उत्पत्ति का है। संभवत: इनका स्वदेश जावा है। भारत में ये बिहार (रांची) और महाराष्ट्र (पूना) आदि राज्यों में पाए जाते हैं। कलकत्ता के भारतीय वनस्पति उद्यान में भी इस एकवर्षीय खर पतवार की उपस्थिति वहाँ के शीत-कालीन एकवर्षीय पौधों के लिए ही हानिकारक सिद्ध हो रही है।

लुडवीगिआ हिस्सोपीफोलिआ

ओनाग्रासी कुल के यह मोथे अफ्रीकी उत्पत्ति के हैं। भारत के विभिन्न राज्यों से इनकी उपस्थिति ज्ञात हुई है। असम, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा बंगाल, बिहार तथा दक्षिण भारत के केरल और तमिलनाडु आदि राज्यों में इनकी बहुलता पाई गई है। अब ये मोथे पश्चिम में महाराष्ट्र (बम्बई) और राजस्थान आदि राज्यों में तेजी से फलते जा रहे हैं।

सेनेसिओ वुल्गारिस

कम्पोसिटी कुल के ये मोथे यूरोपीय उत्पत्ति के हैं पर इसके अलावा ये अमरीकी, उष्णकटिबंधी अफ्रीका और एशिया महाद्वीपों में भी पाए जाते हैं। भारत में बहुत पहले इन्हें दक्षिण भारतीय उद्यानों से सूचित किया गया था। तमिलनाडु (नीलगिरि पहाड़) उत्तर प्रदेश, बंगाल आदि राज्यों में इनका बाहुल्य है। कौल महोदय ने इसे (1972 ई० में) कश्मीर के खेतों और बागानों में तेजी से फैलता खर पतवार बताया है।

प्सेउड-एलेफान्टोपुस स्पीकाटुस

यह कम्पोसिटी कुल की एक जाति है जिसका स्वदेश तो ब्राजील है परन्तु अब यह चीन, जमैका, फिलीपाइन्स आदि देशों में भी विद्यमान है। भारत में सर्वप्रथम इसे कलकत्ता के भारतीय वनस्पति उद्यान में लगाया गया था परन्तु समयोपरान्त यह अपने एकीन फलों के तीव्र विकिरण द्वारा बंगाल के विभिन्न भागों में घर कर गया और अब तो यह गंगा के ऊपरी समतलों में भी सामान्य खर पतवार की तरह पाया जाता है।

हिड्रान्जेआ माक्रोफिल्ला

हिड्रान्जेआसी कुल के ये मोथे जिनका स्वदेश जापान और चीन रहा है, भारत के वनस्पति उद्यानों में (वहाँ के पौधों के लिए) बड़े ही बाधक सिद्ध हो रहे हैं। सर्वप्रथम इनकी उपस्थिति की सूचना बंगाल राज्य के उत्तरी भाग (कुरसेओंग) से मिली। दार्जलिंग जिले में भी ये बहुतायत से पाई जाती हैं। दक्षिण भारत से भी इनकी सामान्य प्राप्ति की घोषणा होती रही है।

हिबिस्कुस मिक्रान्थुस

प्राय: सड़कों के किनारे और बेकार स्थलों में पाया जाने वाला यह अफ्रीकी मोथा माल्वासी कुल का है। भारत में इनकी उपस्थिति बहुत ही प्राचीन है (रॉक्सबर्घ 1820) ई०। पहले तो इसे ज्यादातर दक्षिण भारत से ही घोषित किया जाता रहा पर अब यह बिहार और बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों में भी प्रचुरता से पाया जाता है।

उपर्युक्त विवरणों से हमें यह ज्ञात होता है कि विश्व के विभिन्न महाद्वीपों विशेष कर अमरीका और अफ्रीका से ये विदेशी खर पतवार हमारे देश में आए और अपने हानिकारक प्रभाव के कारण हमारे उपयोगी पेड़-पौधों और जन-जीवन के लिए एक समस्या बन कर रह गये। भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण विभाग हमें अपने विभिन्न-शाखाओं में संगठित हर्बेरियम द्वारा इन मोथों की सही जानकारी कराता है। अक्सर विभाग के वैज्ञानिक जंगलों और विशिष्ट स्थानों में जाकर हर तरह के पौधों का संग्रह करते हैं। इससे हमें इन खर पतवारों के बारे में भी विशेष जानकारियां मिलती हैं।

वर्तमान में हमें इन खर पतवार को जड़ से उखाड़ फेंकने की समस्या और विदेशों से आये अन्य सामग्रियों द्वारा इनके आगमन पर, पूरा ध्यान बरतना चाहिए ताकि हमारे देश की वनस्पति और समृद्धशाली हो सके।

43. वनस्पति उद्यानों में लुप्त प्राय पौधों का संरक्षण—घटपर्णी

अरूप कुमार बॅनर्जी

सड़कें बनाने के लिये पहाड़ों में डायनामाइट द्वारा विस्फोट, वनों की कटाई से पर्वतीय वनस्पतियों के संरक्षण की समस्या गंभीर रूप से उभरी है। पहाड़ी आदिवासी लोग ईंधन के लिये पेड़ सीमित मात्रा में काटते थे। वे जानते थे कि वन ही उनके पालन कर्ता हैं। वन संसाधनों के सीमित उपयोग के कारण एक संतुलन बना रहता था। वे वनों के कुछ क्षेत्रों में नहीं जाते थे क्योंकि उनका विश्वास था कि यदि वे इन स्थानों में प्रवेश करेंगे तो उन पर वन देवता का कोप होगा। अंग्रेजी में इन्हीं जगहों को "सेक्रेड ग्रोव" या पवित्र स्थान कहा जाता है। लेकिन, आजकल ये स्थान भी नहीं बचे। वनस्पति और वनौषधि के व्यवसायी वर्ग, पर्यटकों की बढ़ती हुई संख्या और लावारिस भेड़-बकरियाँ आदि ने वन सम्पदा के बहुत से नाजुक पौधों को खतराग्रस्त सीमा पर पहुंचा दिया है। समतल भूमि पर भी प्रदूषण, एवं व्यापार हेतु बड़ी मात्रा में कटाई ने पौधों को काफी नुकसान पहुँचाया है। वनस्पति उद्यानों में, इन लुप्त प्राय और खतराग्रस्त पौधों के संरक्षण हेतु उगाने, इनके विस्तार हेतु उपायों की खोज आज एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन गया है।

भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद केवल खतराग्रस्त या लुप्त प्राय पौधों की सूची प्रकाशित कर चुप नहीं बैठते बल्कि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न ऊंचाइयों पर नये-नये उद्यानों की स्थापना में भी व्यस्त हैं। ये प्रयोगात्मक उद्यान उत्तर प्रदेश के पौड़ी गढ़वाल एवं इलाहाबाद, महाराष्ट्र के पूना, तमिलनाडु के ऐरकाड, मेघालय के बड़ापानी (शिलांग) में व अन्डमान-निकोबार द्वीप पुंजों में बने हैं। भारतीय वनस्पति उद्यान (हावड़ा) से तो सभी परिचित हैं ही। इन सब उद्यानों में करीब 200 खतराग्रस्त या लुप्त प्राय पौधों का प्रवेशन किया गया है और इन पर अध्ययन भी किया जा रहा है। इनमें से एक रोचक एवं आश्चर्यजनक पौधे घटपर्णी या कलश पादप का विवरण यहाँ प्रस्तुत है।

घटपर्णी—यह पौधा वनस्पति शास्त्र में **नेपेंथेस** वंश के अन्तर्गत है। विश्व में **नेपेंथेस** की 60 जातियाँ पायी जाती हैं एवं भारत में पहले 9 जातियाँ पाई जाती थीं। लेकिन आज केवल एक ही जाति **नेपेंथेस खासिआना** का उल्लेख मिलता है। यह पौधा उत्तर-पूर्वी भारत के खासी पर्वत मालाओं, और गारो पर्वतों के कुछ ही स्थानों पर पाया जाता है। खासिया पर्वतों में सर्वप्रथम इस जाति का पौधा प्राप्त हुआ, और उसी आधार पर हुकर (1890) ने इसका नाम **नेपेंथेस खासिआना** रख दिया। भारत के प्राकृतिक स्थानों से इस पौधे को वनस्पति छात्रों एवं व्यवसायी वर्गों द्वारा बड़े पैमाने में उखाड़ कर ले जाने से इनकी संख्या बहुत ही कम हो गयी है। जैन एवं शास्त्री (1980) ने इस पौधे को लुप्त

प्राय पौधों की सूची के अन्तर्गत रखा है। भारत सरकार ने भी इसके निर्यात पर प्रतिबंध लागू कर दिया है।

इन पौधों की विशेषता इनके आकर्षक पत्ते हैं। पत्तों का अन्तिम भाग एक घट या कलशाकार में रूपांतरित होता है। यह कलश लम्बाई में 10-17 से० मी० और चौड़ाई में 2-3 से० मी० होते हैं। कलश के ऊपरी भाग में एक बेड़ (रिंग) होती है जो कि लाल रंग की होती है, और इसी बेड़ के एक भाग पर ढक्कन जैसा अंग रहता है। कलश की भीतरी दीवार पर बहुत सारे रोम और ग्रंथियां रहती हैं। जब छोटे-छोटे कीड़े और नन्हीं चीटियां कलश के अन्दर प्रवेश करती हैं तो वे बाहर निकल नहीं पातीं और चन्द समय के अन्दर मर जाती हैं। कलश के इन ग्रंथियों में से एक प्रकार का रस निकलता है जो कि इन मरे कीटों के प्रोटीन को विभाजित कर पेप्टोन और अन्त में एमाइड्स में बदल देता है। ये पौधा 9—12 मी० ऊंचाई तक का होता है और इनका तना अंगुली जैसा मोटा होता है। पत्ती 30-60 से० मी० तक लम्बी और 3.5-8 से. मी. चौड़ी होती है। इनके पुरुष और स्त्री पौधे अलग-अलग होते हैं एवं प्राकृतिक क्षेत्रों में इन पौधों में बीज भी होता है।

इन पौधों का विस्तार बीज व कलम से किया जा सकता है। चाली-गमले (सीड-पान) में नीचे फूटे गमले के टुकड़ों को रख कर, काई, सड़े पत्तों का खाद और लकड़ी के कोयले का चूरा इत्यादि को समभाग में मिलाकर, चाली-गमले में भर देना चाहिये। फिर बीजों को इस गमले के ऊपर आस्ते-आस्ते छिड़क कर व थोड़ा हल्के ढंग से पानी देकर एक कांच के ढक्कन या "बेलजार" से ढक कर एक पानी के पात्र के ऊपर रख देना चाहिये जिससे कि गमले के आस-पास आर्द्रता बनी रहे। बीज से 2-4 सप्ताह के अन्दर ही अंकुर निकलने लगते हैं। जब पौधे 1.5 से 2 माह के हो जायें तो इन्हें 10 से.मी. के गमले में बदल देना चाहिये और इन्हें ऐसे स्थानों पर रखना चाहिये जहां छाया व आर्द्रता हो। कलम के लिये 4-5 पत्ते युक्त परिपुष्ट तना ही ठीक होता है। इन तनों के कटे हुए स्थान पर 'सेराडिक्स' लगाकर भीगी काई से बांध देना चाहिये, और इन्हें भीगे हुए बालू में दबा देना चाहिये। इन कलमों को एक "बेलजार" से ढक देना चाहिये। जब लिपटी काई के बाहर जड़ें निकलने लगें तब इन कलमों को बालू, पत्तों की खाद, लकड़ी का कोयला व काई से भरे गमलों में लगा देना चाहिये। इन पौधों को सावधानी से पानी देना चाहिये। आवश्यक मात्रा से अधिक पानी कभी नहीं देना चाहिये। जब पौधा बड़ा हो जाता है तो इसे दिन में कम से कम एक बार पानी की पिचकारी मारकर धो देना चाहिये और सूर्य की किरणों से बचा कर रखना चाहिये।

यह पौधा भारतीय वनस्पति सर्वेक्षण के आधीन विभिन्न उद्यानों—बड़ा पानी (शिलांग), ऐरकाड (कोयम्बतूर) तथा हावड़ा में अध्ययन के लिए उगाया जा रहा है। इसके साथ ही अनेक लुप्तप्राय पौधों का संरक्षण व अध्ययन भी किया जा रहा है। परिणामस्वरूप इन सब शोध कार्यों का नियमित रूप से प्रकाशन भी हो रहा है।

आभार

लेखक, चित्र हेतु श्री चरण चांद मुखर्जी का आभारी है।

परिशिष्ट

1

पौधों के वंश तथा जाति नामों की अनुक्रमणिका

अएगीनेटिआ ईन्डिका	Aeginetia indica
अएर्वा जावानिका	Aerva javanica
अकान्थुस इलीसिफोलिउस	Acanthus ilicifolius
अकान्थोलिमोन लीकोपेडि ओइडेस	Acantholimon lycopodioides
अकासिआ	Acacia
अ० काटेचू	A. catechu
अ० कोन्सिन्ना	A. concinna
अ० चुन्द्रा	A. chundra
अ० जाक्वेमोन्टिई	A. jacquemontii
अ० डेआलबाटा	A. dealbata
अ० नीलोटिका	A. nilotica
अ० नीलोटिका उपजाति ईन्डिका	A. nilotica ssp. indica
अ० पेन्नाटा	A. pennata
अ० प्लेनीफ्रॉन्स	A. plenifrons
अ० फार्नेसिआना	A. farnesiana
अ० मेलानोक्सीलोन	A. melanoxylon
अ० मोडेस्टा	A. modesta
अ० लेउकोफ्लोएआ	A. leucophloea
अ० सेनेगल	A. senegal
अक्रोस्टीचुम आउरेउम	Acrostichum aureum
अगारिकुस काम्पेस्ट्रिस	Agaricus campestris
अ० बीस्पोरुस	A. bisporus
अगावे सीसालाना	Agave sisalana
अग्रोपीरोन रेपेन्स	Agropyron repens
अजाडीराक्टा ईन्डिका	Azadirachta indica
अटालान्टिआ मोनोफील्ला	Atalantia monophylla
अटीलोसिआ वोलुबिलिस	Atylosia volubilis
अडानसोनिआ डिजिटाटा	Adansonia digitata
अडीना कोर्डीफोलिआ	Adina cordifolia
अथीरिउम जापोनिकुम	Athyrium japonicum
अन्नागाल्लिस पुमिला	Anagallis pumila
अनाफालिस	Anaphalis
अ० बुसुआ	A. busua
अनाबाएना	Anabaena
अनीसोप्टेरा	Anisoptera
अनेमोने	Anemone
अ० नारसिस्सीफ्लोरा	A. narcissiflora
अनोगेइस्सुस	Anogeissus sp.
अ० पेन्डुला	A. pendula
अ० लाटीफोलिआ	A. latifolia
अन्ड्रे आसाएआ	Andreaea
अ० रुपेस्ट्रिस	A. rupestris
अभोरिऑन	Abhorion

अ० मीक्रोस्पोरॉन	A. mircosporon
अमानिटा	Amanita
अम्मानिआ डेसेर्टोरुम	Ammannia desertorum
अ० बाक्सीफेरा	A. baccifera
अम्हेर्स्टिआ नोबिलिस	Amherstia nobilis
अराकिस हीपोजेआ	Arachis hypogea
अराबिस टिबेटिका	Arabis tibetica
अरिस्टोलोकिआ ब्राक्टेआटा	Aristolochia bracteata
अरीसाएमा	Arisaema
अ० टोर्टुओसुम	A. tortuosum
अरुन्डीनारिआ	Arundinaria
अ० फल्काटा	A. falcata
अरुन्डो डोनाक्स	Arundo donax
अ० डोनाक्स प्रभेद वेर्सीकोलोर	A. donax var. versicolor
अलीसिकार्पुस मोनिलिफेर प्र० वेनोसा	Alysicarpus monilifer var. venosa
अवस्थीएला	Awasthiella
आइलान्थुस आल्टिस्सिमा	Ailanthus altissima
आउलोसिरा	Aulosira
आएग्ले मार्मेलोस	Aegle marmelos
आएजीसेरास कोर्नीकुलाटुम	Aegiceras corniculatum
आएरीडेस	Aerides
आएस्कुलुस इन्डिका	Aesculus indica
अ|कालिफा इन्डिका	Acalypha indica
आकीरान्थेस आस्पेरा	Achyranthes aspera
आकोनीटुम	Aconitum
आ० कासमान्थुम	A. chasmanthum
आ० नापेल्लुस	A. napellus
आ० फालकोनरी	A. falconeri
आ० लुरिडुम	A. luridum
आ० लेथाले	A. lethale
आ० विओलासेउम	A. violaceum
आ० हेटेरोफिल्लुम	A. heterophyllum
आकोरुस कालामुस	Acorus calamus
आक्टाएआ	Actaea
आक्टीनीडिआ काल्लोसा	Actinidia callosa
आक्टीनोडाफ्ने ओबोवाटा	Actinodaphne obovata
आक्टीनोप्टेरिस राडिआटा	Actinopteris radiata
आक्वीलारिआ अगालोचा	Aquillaria agallocha
आक्सोनोपुस कोम्प्रेस्सुस	Axonopus compressus
आगाथिस रोबुस्टा	Agathis robusta
आगापेटेस सिक्किमेन्सिस	Agapetes sikkimensis
आग्रोस्टिस वार्डिई	Agrostis wardii
आग्लाइआ कनारेन्सिस	Aglaia canarensis
आ० खासिआना	A. khasiana
आजेराटुम कोनीजोइडेस	Ageratum conyzoides

आ० हूस्टोनिआनुम	A. houstonianum
आट्रीप्लेक्स रेपेन्स	Atriplex repens
आट्रोपा	Atropa
आ० आकुमिनाटा	A. acuminata
आ० बेल्लाडोना	A. belladona
आडिआन्टुम कापील्लुस वेनेरिस	Adiantum capillus-veneris
आ० पेडाटुम	A. pedatum
आ० पेरुविआनुम	A. peruvianum
आ० फार्लेइएंसे	A. farleyense
आ० लुनलाटुम	A. lunulatum
आढाटोडा जेइलानिका	Adhatoda zeylanica
आनसिस्ट्रोक्लाडुस एक्सटेन्सुस	Ancistrocladus extensus
आनाकार्डिउम ओक्सीडेन्टाले	Anacardium occidentale
अनानास कोमोसुस्	Ananas comosus
आनेउरा ईन्डिका	Aneura indica
आ० पिन्गुइस	A. pinguis
आ० पूसील्ला	A. pusilla
आनोएक्टोचिलुस	Anoectochilus
आ० सिक्किमेन्सिस	A. sikkimensis
आन्जिओप्टेरिस एवेक्टा	Angiopteris evecta
आन्जेलिका ग्लाउका	Angelica glauca
आन्टीगोनोन लेप्टोपुस	Antigonon leptopus
आन्टीचारिस सेनेगालेन्सिस	Anticharis senegalensis
आन्टीडेस्मा डिआन्ड्र म	Antidesma diandrum
आन्टीर्रहीनुम माजुस	Antirrhinum majus
आन्ड्राक्ने कोर्डीफोलिआ	Andrachne cordifolia
आन्ड्रोग्राफिस पानीकुलाटा	Andrographis paniculata
आन्ड्रोपोगॉन अस्कीनोडिस	Andropogon ascinodis
आ० पुमीलुस	A. pumilus
आन्ड्रोसासे पोइस्सोनी	Androsace poissonii
आ० प्रिमुलोइडेस	A. primuloides
आ० रोटुन्डीफोलिआ	A. rotundifolia
आन्थोसेफालुस कदम्बा	Anthocephalus cadamba
आन्थोसेरॉस	Anthoceros
आन्थ्राकोथेसिउम	Anthracothecium
आन्नोना मूरीकाटा	Annona muricata
आ० रेटीकुलाटा	A. reticulata
स्कुआमोसा	A. squamosa
आपोमेट्जगारिआ पुबेस्सेंस	Apometzgaria pubescens
आप्लूडा मूटिका	Apluda mutica
आबिएस बिएस	Abies
आ० डेन्सा	A. densa
आ० डेलावायी	A. delavayi
आ० पिन्डरोव	A. pindrow
आ० स्पेक्टाबिलिस	A. spectabilis

आबूटिलोन फ्रूटिकोसुम प्रभेद क्रीसोकार्पा	Abutilon fruticosum var. chrysocarpa
आ० बीडेन्टाटुम प्र० माजोर	A. bidentatum var. major
आबल मोस्कुस एस्कुलेन्टुस	Abelmoschus esculentus
आब्रुस प्रेकाटोरिउस	Abrus precatorius
आब्रुस फ्रूटीकुलोसुस	A. fruticulosus
आब्रोमा आगुस्टा	Abroma augusta
आमोओरा	Amoora
आ० वालिचियआना	A. wallichiana
आम्पेलोप्टेरिस प्रोलीफेरा	Ampelopteris prolifer a
आम्पेलोसीस्सुस डीवारीकाटा	Ampelocissus divaricata
आ० लाटीफोलिआ	A. latifolia
आराउकारिआ एक्सेल्सा	Araucaria excelsa
आ० कन्निंघमिई	A. cunninghamii
आ० कुकिई	A. cookii
आरिस्टिडा अडस्केन्सिओनिस	Aristida adscenscionis
आ० फूनीकुलाटा	A. funiculata
आ० सेटासेआ	A. setacea
आरेका नागेंसिस	Areca nagensis
आरेनारिआ	Arenaria
आ० ब्रीओफिल्ला	A. bryophylla
आरेंगा पीन्नाटा	Arenga pinnata
आर्कीलेजेउनेआ	Archilejeunea
आ० ईन्डिका	A. indica
आ० मीनुटीलोबुल्ला	A. minutilobulla
आर्केउथोबिउम मिनुस्टीस्सिमुम	Arceuthobium minutissimnm
आर्क्टोटिस स्टोएचाडीफोलिआ प्र० ग्रान्डिस	Arctotis stoechadifolia var. grandis
आर्जेमोने मेक्सिकाना	Argemone mexicana
आर्टेमीसिआ	Artemisia
आ० मीनोर	A. minor
आ० स्कोपारिआ	A. scoparia
आर्टोकार्पुस आल्टोटिस	Artocarpus altitis
आ० कोम्मूनिस	A. communis
आ० चपलासा	A. chaplasa
आ० हिर्सुटुम	A. hirsutums
आर्डीसिआ उन्डुलाटा	Ardisia undulata
आ० सोलानासेआ	A. solanacea
आर्थ्राक्सोन प्रीओनोडेस	Arthraxon prionodes
आर्नेबिआ	Arnebia
आ० एउक्रोमा	A. euchroma
आ० पेरेन्निस	A. perennis
आ० बेन्थामी	A. benthami
अ० हिस्पिडीस्सिमा	A. hispidissima
आलोए बार्बाडेन्सिस	Aloe barbadensis
आल्टीन्जिसाएक्सेल्सा	Altingia excelsa
आल्टेर्नान्थेरा	Alternanthera

आ० पुन्गेन्स	A. pungens
आ० पोलीगोनोइडेस	A. polygonoides
आ० फिकोइडेआ	A. ficoidea
आल्ड्रोवान्डा	Aldrovanda
आल्थाएआ रोसेआ	Althaea rosea
आल्नुस नेपालेन्सिस	Alnus nepalensis
आल्बीजिआ	Albizia
आ० अमारा	A. amara
आ० ओडोराटीस्सिमा	A. odoratissima
आ० लेब्बेक	A. lebbek
आल्लामान्डा काथार्टिका	Allamanda cathartica
आल्लिउम	Allium
आ० गोवानिआनुम	A. govanianum
आ० जाक्वेमोंटिई	A. jacquemontii
आ० प्रजेवाल्सकिआनुम	A. preazewalskianum
आ० स्ट्राचेयी	A. stracheyi
आ० हुमिले	A. humile
आल्सोडेआ बेंगालेन्सिस	Alsodea bengalensis
आवीसेन्निआ	Avicennia
आ० आल्बा	A. alba
आ० ओफ्फिसिनालिस	A. officinais
आ० मारीना	A. marina
आवेना साटीवा	Avena sativa
आवेर्होआ काराम्बोला	Averrhoa carambola
आसेर	Acer
आ० आकुमीनाटुम	A. acuminatum
आ० ओब्लोन्गुम	A. oblongum
आ० पेक्टिनाटुम	A. pectinatum
आ० वील्लोसुम	A. villosum
आ० हूकेरी	A. hookeri
आस्क्लेपिआस कुरास्साविका	Asclepias curassavica
आस्टेर अल्बेस्सेंस	Aster albescens
आस्ट्रागालुस	Astragalus
आ० क्लोरोस्टाकिस	A. chlorostachys
आ० मुनरोई	A. munroi
आ० वेब्बिआनुस	A. webbianus
आ० होफ्फमीस्टेरी	A. hoffmeisteri
आस्पारागुस फाइसोनिई	Asparagus fysonii
आ० रासेमोसुस	A. racemosus
आस्पिडोकारिआ	Aspidocarys
आस्पेरजील्लुस	Aspergillus
आस्प्लेनिउम	Asplenium
आ० आडिआन्टुम नीग्रुम	A. adiantum nigrum
आ० नीडुस	A. nidus
आस्बिआ	Asbbya

इक्नोकार्पुस फ्रुटेस्सेन्स	Ichnocarpus frutescens
इक्सोरा आर्बोरेआ	Ixora arborea
इनुला राइलेआना	Inula royleana
इ० सीमोसा	I. cymosa
इन्डीगोफेरा	Indigofera
इ० आर्जेन्टेआ	I. argentea
इ० कास्सिओइडेस	I. cassioides
इ० कोर्डीफोलिआ	I. cordifolia
इ० जेरार्डिआना	I. gerardiana
इ० लिनीफोलिआ	I.linifolia
इ० लीन्नाएई	I. linnaei
इ० सीम्लेन्सीस	I. simlensis
इ० हामिल्टोनिई	I. hamiltonii
इ० हेटेरान्था	I. heterantha
इ० होच्स्टेट्टेरी	I. hochstetteri
इपोमोएआ अकुआटिका	Ipomoea aquatica
इ० कारिका प्र० सेमीनेग्लाब्रा	I. carica ver. semineglabra
इ० कार्नेआ	I. carnea
इ० पुर्पुरेआ	I. purpurea
इ० पेसकाप्राए	I. pes-caprae
इ० फीस्टुलोसा	I. fistulosa
इबेरिस अमारा	Iberis amara
इम्पाटिएन्स	Impatiens
इ० आकुमिनाटा	I. acuuminata
इ० खासिआना	I. khasiana
इ० ग्लान्डुलीफेरा	I. glandulifera
इ० जिजान्टेआ	I. gigantea
इ० पालूडोसा	I. paludosa
इ० पोरेक्टा	I. porreeta
इ० राडिआटा	I. radiata
इ० रिवुलीकोला	I. rivulicola
इ० लाएविगाटा	I. laevigata
इ० विरीडीफ्लोरा	I. viridiflora
इम्पेराटा सीलिन्ड्रिका	Imperata cylindrica
इसाक्ने ग्लोबोसा	Isachne globosa
इसेइलेमा आन्थेफोरोइडेस	Iseilema anthephoroides
इ० लाक्सुम	I. laxum
इस्चाएमुम रुगोसुम	Ischaemum rugosum
ईरिस	Iris
ई० डुथिई	I. duthiei
उनडारिआ	Undaria
उपुना	Upuna
उम्बिलिकारिआ	Umbilicaria
उरारिआ पिक्टा	Uraria picta
उर्जीनिआ ईन्डिका	Urginea india

उर्टिका डिओइका	Urtica dioica
उ० पार्वीफ्लोरा	U. parviflora
उलोटा फिलान्था	Ulota phyllantha
उल्मुस वालिचिआना	Ulmus wallichiana
उवारिआ हामिल्टोनिई	Uvaria hamiltonii
उस्नेआ	Usnea
ऊट्रीकुलारिआ	Utricularia
ऊ० आउरेआ	U. aurea
एइकोर्निआ क्रास्सीपेस	Eichhornia crassipes
एउकारिडिउम	Eucharidium
एउकालिप्टुस	Eucalyptus
एउ० सीट्रिओडोरा	E. citriodora
एउपाटोरिउम	Eupatorium
एउ० आडेनोफोरुम	E. adenophorum
उफोर्बिआ	Euphorbia
एउ० आन्टिकुओरुम	E. antiquorum
एउ० काडुसीफोलिआ	E. caducifolia
एउ० क्लार्किआना	E. clarkeana
एउ० ग्रानुलाटा	E. granulata
एउ० चामाएसिसे	F. chamaesyce
एउ० टबेटिका	E. tibetica
एउ० डिन्सीफ्लोरा	E. densiflora
एउ० थोम्सोनिआना	E. thomsoniana
एउ० नीवुलिआ	E. nivulia
एउ० मिलिई	E. milii
एउ० रोइलेआना	E. royleana
एउ० वालिचिआना	E. wallichiana
एउ० शर्माए	E. sharmae
एउ० हेलिओस्कोपिआ	E. helioscopia
एउरिआले फेरोक्स	Euryale ferox
एउलालिआ मोल्लीस	Eulalia mollis
एउ० ओब्टुसा	Eulalia obtusa
एउ० सीआमेन्सीस	E. siamensis
एउ० स्टेन्टोनिई	E. staintonii
एउलालिओप्सिस बीनाटा	Eulaliopsis binata
एउलोफिआ ओब्टुसा	Eulophia obtusa
एउ० डाबीआ	Eulophia dabia
एउ० नुडा	Eulophia nuda
एकीनोकाक्टुस हॉरिडुस	Echinocactus horridus
एकीनोक्लोआ कोलोना	Echinochloa colona
एकी० फ्रुमेन्टासेआ	E. frumentacea
एकीनोप्स कोर्निगेरुस	Echinops cornigerus
एक्लिप्टा आल्बा	Eclipta alba
ए० प्रोस्ट्राटा	E. prostrata
एक्वीसेटुम आर्वेन्स	Equisetum arvense

एक्सकोएकारिआ अगाल्लोचा	Excoecaria agallocha
एक्सबुकलान्डिआ	Exbucklandia
एक्स० पोपुल्नेआ	E. populaea
एनिकोस्टेमा हिस्सोपीफोलिआ	Enicostema hyssopifolia
एन्टाडा स्कान्डेन्स एन्टेरोमॉर्फा	Entada scandens
एन्नेआपोगॉन ऐलेगन्स	Enneapogon elegans
ए० ब्राचीस्टाचीउस	E. brachystachyus
ए० शिम्पेरानुस	E. schimper-anus
एपीडरमोफाईटोन	Epidermophyton
एपीपोगिउम टूबेरोसुम	Epipogium tuberosum
एपीलोबिउम पार्वीफ्लोरुम	Epilobium parviflorum
एपी० लाटीफोलिउम	E. latifolium
एफेड्रा	Ephedra
ए० इन्टेरमेडिआ	E. intermedia
ए० एक्यूईसेटिना	E. equisetina
ए० जेरार्डिआना	E. gerardiana
ए० नेब्रोडेन्सिस	E. nebrodensis
ए० फोलिआटा	E. foliata
ए० रेगेलिआना	E. regeliana
ए० साक्साटीलिस	E. saxatilis
एम्ब्लिका ऑफ्फीसिनालिस	Emblica officinalis
एम्बेलिआ त्स्जेरिअम-कोट्टाम	Embelia tsjeriam-cottam
एराग्रोस्टिस	Eragrostis
ए० कुर्वुला	E. curvula
ए० गान्गेटिका	E. gangetica
ए० टेनेल्ला	E. tenella
ए० टेफ	E. tef
ए० ट्रेमुला	E. tremula
ए० डिआर्र्हेना	E. diarrhena
ए० सीलिआरिस	E. ciliaris
एरिआ आल्बीफ्लोरा	Eria albiflora
ए० पुबेस्सेन्स	E. pubescens
एरिआन्थुस रावेन्नाए	Erianthus ravennae
एरिओबोट्रिआ जापोनिका	Eriobotrya japonica
एरिओलाएना हुकेरिआना	Eriolaena hookeriana
एरिओसेमा हिमालाइकुम	Eriosema himalaicum
एरीजेरोन कार्विन्स्किआनुस	Erigeron karvinskianus
एरीथ्रोक्सीलुम कोका	Erythroxylum coca
एरेमुरुस हिमालाइकुस	Eremurus himalaicus
एरेमोथेसिउम	Eremothecium
एरेमोस्टाकिस सुपेर्बा	Eremostachys superba
एलाएइस गुईनीसिस	Elaeis guineensis
एलाएओकार्पुस सेर्राटुस	Elaeocarpus serratus
एलाटिने आम्बिगुआ	Elatine ambigua

एलेउसीने ईन्डिका	Eleusine indica
एलेओकारिस डुल्किस	Eleocharis dulcis
ऐलेफान्टोपुस स्कावेर	Elephantopus scaber
एवेर्निआ प्रूनास्ट्री	Evernia prunastri
एवोडिआ फ्राक्सीनिफोलिआ	Evodia fraxinifolia
एवोल्वुलुस अल्सीनोइडेस	Evolvulus alsinoides
एश्चोल्ट्जिआ कालीफोर्निका	Eschscholtzia californica
एह्रेटिआ आस्पेरा	Ehretia aspera
ए० लाएवीस	E. laevis
ओउजेईनिआ अकामेन्थेरा	Ougeinia acamenthera
ओ० ओउजेइनेन्सिस	O. ougeinensis
ओक्थोक्लोआ कॉम्प्रेस्सा	Ochthochloa compressa
ओक्ना ओब्टूसाटा	Ochna obtusata
ओक्लान्ड्रा	Ochlandra
ओक्सीस्पोरा पानीकुलाटा	Oxyspora paniculata
ओडिउम लाक्टिस	Odium lactis
ओनीचिउम	Onychium
ओपुन्टिआ	Opuntia
ओप्लिस्मेनुस कोम्पोसिटुस	Oplismenus compositus
ओ० बुर्मान्नि	O. burmanni
ओफिओग्लोस्सुम ग्रामीनेउम	Ophioglossum gramineum
ओ० रेटीकुलाटुम	O. reticulatum
ओबेरोनिआ फाल्कोनेरी	Oberonia falconeri
ओर्बिग्निआ कोहुने	Orbignya cohune
ओरिगानुम	Origanum
ओरीजा साटीवा	Oryza sativa
ओरोपेटिउम थोमाएउम	Oropetium thomaeum
ओरोबान्चे	Orobanche
ओलाक्स नाना	Olax nana
ओ० स्कान्डेन्स	O. scandens
ओलेआ	Olea
ओ० डीओइका	O. dioica
ओल्डेनलान्डिआ क्लाउसा	Oldenlandia clausa
ओसीरिस वाइटिआना	Osyris wightiana
ओस्मुन्डा क्लेल्टोनिआना	Osmunda claytoniana
ओ० रेगालिस	O. regalis
कनारिउम	Canarium
कनावालिआ ग्लाडिआटा	Canavalia gladiata
करागाना	Caragana
करागाना वेर्सीकोलोर	C. versicolor
करीका पपाया	Carica papaya
करेया आर्बोरिआ	Careya arborea
कलान्थे	Calanthe
काइराटिआ ट्रिफोलिआ	Cayratia trifolia
काटील्लरिआ मनीपुरेन्सिस	Catillaria manipurensis

कान्डेलिआ कन्डाल	Kanaelia candl
कांडोनान्थुस	Chandonanthus
काथारान्थुस रोसेउस	Catharanthus roseus
कान्थिउम ग्रासिलिपेस	Canthium gracilipes
कान्नाबिस साटिवा	Cannabis sativa
कापील्लिपेडिउम आस्सीमिले	Capillipedium assimile
काप्पारिस	Capparis
का० आफिल्ला	C. aphylla
का० डेसीडुआ	C. decidua
का० सेपिआरिआ	C. sepiaria
का० स्पिनोसा	C. spinosa
काप्सीकुम आन्नुउम	Capsicum annuum
कामेल्लिआ काडुका	Camellia caduca
काम्पानुला रुडेरालिस	Campanula ruderalis
काम्पीलोपुस	Campylopus
कारेक्स	Carex
कारीस्सा	Carissa
का० कोन्गेस्टा	C. congesta
का० स्पिनारुम	C. spinarum
कार्डिओस्पेर्मुम हालीकाकाबुम	Cardiospermum halicacabum
कार्विआ काल्लोसा	Carvia callosa
कालस्ट्रोएमिआ पुबेस्सेन्स	Kallstroemia pubescens
कालामाग्रोस्टिस स्टोलिज्काई	Calamagrostis stoliczkai
कालामिन्था क्लिनोपोडिउम	Calamintha clinopodium
कालामुस अन्डामानिकुस	Calamus andamanicus
का० एरेक्टुस	C. erectus
का० निकोबारिकुस	C. nicobaricus
का० पालुस्ट्रिस	C. palustris
का० लेप्टोस्पाडिक्स	C. leptospadix
कालीप्ट्रोकालीक्स स्पिकाटुस	Calyptrocalyx spicatus
कालेन्डुला ओफ्फीसिनालिस	Calendula officinalis
कालोट्रोपिस जिजान्टेआ	Calotropis gigantea
का० प्रोसेरा	C. procera
उपजाति हामिल्टोनिई	C. procera subspecies hamiltonii
कालोथ्रिक्स	Calothrix
कालोफील्लुम	Calophyllum
का० अपेटालुम	C. apetalum
का० इनोफील्लुम	C. inophyllum
कालोब्रिउम ईन्डिकुम	Calobryum indicum
का० डेन्टाटुम	C. dentatum
काल्था	Caltha
का० पालुस्ट्रिस	C. palustris
काल्लीकार्पा आर्बोरिआ	Callicarpa arborea
का० माक्रोफिल्ला	C. macrophylla

काल्लीगोनुम पोलीगोनोइडेस	Calligonum polygonoides
काल्लीट्रिस कूप्रेस्सी	Callitris cupressi
काल्लीस्टेफुस चीनेन्सिस	Callistephus chinensis
काल्लीस्टमोन सिट्रिनुस	Callistemon citrinus
कासुआरिना इक्युइसेटिफोलिआ	Casuarina equisetifolia
का० कालोफिल्लुम	C. calophyllum
कासेआरिआ एल्लिप्टिका	Casearia elliptica
कास्टानोप्सिस ईन्डिका	Castanopsis indica
का० कुर्जिई	C. kurzii
कास्सिआ अब्सुस	Cassia absus
का० आउरीकुलाटा	C. auriculata
का० आकुटीफोलिआ	C. acutifolia
का० आंगुस्टीफोलिआ	C. angustifolia
का० ओक्सीडेन्टालिस	C. occidentalis
का० ओबोवाटा	C. obovata
का० जावानिका	C. javanica
का० टोरा	C. tora
का० नीग्रींकान्स	C. nigricans
का० फीस्टुला	C. fistula
कास्सीओपे फास्टीगिआटा	Cassiope fastigiata
किन्गिओडेन्ड्रोन पीन्नाटुम	Kingiodendron pinnatum
किमोनोबाम्बुसा	Chimonobambusa
कीडिआ कालीसिना	Kydia calycina
कुइस्कुआलिस ईन्डिका	Quisqualis indica
कुएरकुस	Quercus
कु० इनकाना	Q. incana
कु० इलेक्स	Q. ilex
कु० ग्लाउका	Q. glauca
कु० डीलाटाटा	Quercus dilatata
कु० लामेल्लोसा	Q. lamellosa
कु० लेउकोट्रीकोफोरा	Q. leucotrichophora
कु० सेमेकार्पीफोलिआ	Q. semecarpifolia
कुकुमिस प्रोफेटारूम	Cucumis prophetarum
कु० मेलो प्र० कुल्टा	C. melo var. culta
कुरकुमा	Curcuma
कुर्कूलीगो रेकुर्वाटा	Curculigo recurvata
कुस्कुटा	Cuscuta
कु० रेफ्लेक्सा	C. reflexa
कूप्रेस्सुस कश्मेरिआना	Cupressus cashmeriana
कू० टोरूलोसा	C. torulosa
कू० फूनेब्रिस	C. funebris
कू० सेम्पेर्वीरेन्स	C. sempervirens
कोइक्स लाक्रीमा-जोबी	Coix lacryma-jobi
कोउरोउपीटा गुइआनेन्सिस	Couroupita guianensis
कोकोस नूसीफेरा	Cocos nucifera

कोक्कुलुस पेंडुलुस	Cocculus pendulu s
कोक्लोस्पेर्मुम रेलीजिओसुम	Cochlospermum reli giosum
कोक्सीनिआ ग्रान्डिस	Coccinia grandis
कोटीलेलोबिउम	Cotylelobium
कोटोनेआस्टेर प्रोस्ट्राटुस	Cotoneaster prostratus
को० बासिल्लारिस	C. bacillaris
को० मीक्रोफिल्ला	C. microphylla
कोडीआएउम वारिएगाटुम प्र० पिक्टुम	Codiaeum variegatum var. pictum
कोनेकोलेआ	Chonecolea
कोन्ड्रुस	Chondrus
कोन्वोल्वुलुस आउरीकोमुस प्र० फेर्रुगिनोसुस	Convolvulus auricomus var. ferruginosus
को० आर्वेन्सिस	C. arvensis
को० ब्लाट्टेरी	C. blatteri
को० मीक्रोफिल्लुस	C. microphyllus
कोप्टिस टीटा	Coptis teeta
कोफ्फेआ अराबिका	Coffea arabica
को० बेन्गालेन्सिस	C. bengalensis
को० लीबेरिका	C. liberica
कोम्ब्रेटुम नानुम	Combretum nanum
को० राक्सबर्घिई	C. roxburghii
कोम्मीकार्पुस वेर्टीसील्लाटुस	Commicarpus verticillatus
कोम्मीफोरा वाइटिई	Commiphora wightii
कोरिआन्ड्रुम साटीवुम	Coriandrum sativum
कोरिआरिआ	Coriaria
को० नेपालेन्सिस	C. nepalensis
को० मीर्टिफोलिआ	C. myrtifolia
कोरीडालीस	Corydal is
को० कश्मीरिआना	C. kashmiriana
को० क्रास्सीस्सिमा	C. crassissima
को० फ्लाबेल्लाटा	C. flabellata
का० रामोसा	C. ramosa
कोरीलुस कोलुर्ना	Corylus colurna
कोरीलोप्सिस हिमालयाना	Corylopsis himalayana
कोरीस्पोरा साबुलोसा	Chorispora sabulosa
कोरेओप्सिस लान्सेओलाटा	Coreopsis lanceolata
को० स्टिलमानिई	C. stillmanii
कोर्कोरुस डेप्रेस्सुस	Corchorus depressus
कोर्डिआ ओब्लीकुआ	Cordia obliqua
को० डिकोटोमा	C. dichotoma
को० सुबकोर्डाटा	C. subcordata
कोर्नुस	Cornus
को० माक्रोफिल्ला	C. macrophylla
कोर्थाल्सेल्लाओपुन्टिआ	Kosthalsella opuntia
कोलविल्लेआ रासेमोसा	Colvillea rucemosa

कोलूरा	Colura
कोलेब्रूकेआ ओप्पोसिटीफोलिआ	Colebrookea oppositifolia
कोलोकासिआ एस्कुलेन्टा	Colocasia esculenta
कोल्लेमा	Collema
कोसमोस बीपिन्नाटुस	Cosmos bipinnatus
कोस्सिनिऊम फेनेस्ट्राटुम	Coscinium fenestratum
क्निफोफिआ अलोइडेस	Kniphofia aloides
क्राटेवा नुर्वाला	Crateva nurvala
क्राटोक्सीलोन फॉर्मोसुम	Cratoxylon formosum
क्रिप्टोकोरीने स्पिरालिस	Cryptocoryne spiralis
क्रिप्टोमिट्रिउम हिमालयेन्से	Cryptomitrium himalayense
क्रिप्टोमेरिआ जापोनिका	Cryptomeria japonica
क्रिप्टोलेपिस बुकानानिई	Cryptolepis buchananii
क्रिस्टोलेआ	Christolea
क्रि० क्रास्सीफोलिआ	C. crassifolia
क्रीसोपोगॉन आसीकुलाटुस	Chrysopogon aciculatus
क्री० फुल्वुस	C. fulvus
क्रेपिस	Crepis
क्रेमान्थेडिउम आर्निकोइडेस	Cremanthodium arnicoides
क्रेसेन्टिआ कुजेटे	Cresentia cujete
क्रेस्सा क्रेटिका	Cressa cretica
क्रेस्सोसेफालुम क्रेपीडिओइडेस	Cressocephalum crepidioides
क्रोकुस	Crocus
क्रोटालारिआ प्रोस्ट्राटा	Crotalaria prostrata
क्रो० बुर्हिआ	C. burhia
क्रो० मेडिकागिनेआ	C. medicaginea
क्रोटोन बोन्प्लान्डिआनुम	Croton bonplandianum
क्लाउसेना पेन्टाफिल्ला	Clausena pentaphylla
क्लाडोनिआ	Cladonia
क्लार्किआ	Clarkia
क्ला० एलेगान्स	C. elegans
क्लावारिआ	Clavaria
क्लावीसेप्स पुरपुरआ	Claviceps purpurea
क्लीआन्थुस डाम्पिएरी	Clianthus dampieri
क्लीटोरिआ टेर्नटिआ	Clitoria ternatea
क्लेइस्टान्थुस कोल्लिनुस	Cleistanthus collinus
क्लेओमे गिनान्ड्रा व्र० नाना	Cleome gynandra var. nana
क्ले० ब्राचीकार्पा	C. brachycarpa
क्ले० रूटीडोस्पेर्मा	C. rutidosperma
क्ले० विस्कोसा	C. viscosa
क्ले० स्कापोसा	C. scaposa
क्लेमाटिस ओरिएन्टालिस	Clematis orientalis
क्ले० गोउरिआना	C. gouriana
क्ले० ग्राटा	C. grata
क्लेरोडेन्ड्रुम	Clerodendrum

क्लें० इनेर्मे	C. inerme
क्लें० इन्फोर्चुनाटुम	C. infortunatum
क्ले० ग्लान्डुलोसुम	C. glandulosum
क्ले० फ्लोमिडिस	C. phlomidis
क्ले० विस्कोसुम	C. viscosum
क्ले० वेनोसुम	C. venosum
क्ले० सेर्राटुम	C. serratum
क्लोरिस गायाना	Chloris gayana
क्लो० डोलीकोस्टाचिआ	C. dolichostachya
क्लो० बार्बाटा	C. barbata
क्लोरेल्ला	Chlorella
क्लोरोक्सीलोन स्वीएटेनिआ	Chloroxylon Swietenia
गाइल्लार्डिआ पुल्चेल्ला	Gaillardia pulchella
गाउल्थेरिआ	Gaultheria
गा० फ्राग्रान्टीस्सिमा	G. fragrantissima
गाजानिआ रिंजेंस	Gazania ringens
गामोलेपिस टाजेटेस	Gamolepis tagetes
गारूगा पीन्नाटा	Garuga pinnata
गार्डेनिआ जास्मीनिओइडेस	Gardenia jasminioides
गार्सीनिआ अन्डामानिका	Garcinia andamanica
गा० आकुमिनाटा	G. acuminata
गा० क्सान्थोचीमुस	G. xanthochymus
गा० स्पेसिओसा	G. speciosa
गालीउम कॉनफेर्टुम	Galium confertum
गालेआरिस स्ट्राचेयी	Galearis stracheyi
गालेओला फाल्कोनेरी	Galeola falconeri
गास्ट्रोडिआ	Gastrodia
गिसेकिआ फार्नासेओइडेस	Gisekia pharnaceoides
गीनोकार्डिआ ओडोराटा	Gynocardia odorata
गीरोमित्रा एस्कुलेन्टा	Gyromitra esculenta
गूडयेरा	Goodyera
गोट्शेलिआ शीजोप्लेउरा	Gottschelia schizopleura
गोडेटिआ	Godetia
गो० अमोएना	G. amoena
गोम्फ्रेना सेलोसिओइडेस	Gomphrena celosioides
गोस्सीपिउम हीर्सुटुम	Gossypium hirsutum
गो० हेर्बासेउम	G. herbaceum
ग्नाफालिउम पुर्पुरेउम	Gnaphalium purpureum
ग्ना० थाम्सोनिई	G. thomsonii
ग्नेटुम	Gnetum
ग्ने० उला	G. ula
ग्ने० कोन्ट्राक्टुम	G. contractum
ग्ने० मोन्टानुम	G. montanum
ग्ने० लाटीफोलिउम	G. latifolium

ग्ने० स्कान्डेन्स	G. scandens
ग्मेलिना आर्बोरेआ	Gmelina arborea
ग्राफीना	Graphina
ग्रा० दार्जिलिंगेन्सिस	G. darjeelingensis
ग्रिम्मिआ	Grimmia
ग्रेविआ	Grewia
ग्रे० ओप्टिवा	G. optiva
ग्रे० टीलिआएफोलिआ	G. tiliaefolia
ग्रे० टेनाक्स	G. tenax
ग्रे० फ्लावेस्सेन्स	G. flavescens
ग्रे० सापिडा	G. sapida
ग्रे० हिर्सुटा	G. hirsuta
ग्रेविल्लेआ रोबुस्टा	Grevillea robusta
ग्लाउक्स मारीटिमा	Glaux maritima
ग्लीनुस	Glinus
ग्ली० लोटोइडेस	G. lotoides
ग्लीसिने माक्स	Glycine max
ग्लेइचेनिआ	Gleichenia
ग्ले० लोन्गीस्सिमा	G. longissima
ग्लोचीडिओन लान्सेओलारिउम	Glochidion lanceolarium
ग्लोरिओसा सुपेर्बा	Gloriosa superba
ग्लोस्सोनेमा वारिआन्स	Glossonema varians
चाएनाक्टिस	Chaenactis
चारा	Chara
चिओनाक्ने कोएनिगिई	Chionachne koenigii
चुकरासिआ टाबुलारिस	Chukrasia tabularis
चेइरान्थुस चेइरिई	Cheiranthus cheirii
चेइलान्थेस टेनुइफोलिआ	Cheilanthes tenuifolia
चेइलान्थेस फारीनोसा	C. farinosa
चेस्नेया कूनेआटा	Chesneya cuneata
जर्बेरा गोस्सीपिना	Gerbera gossypina
जान्थोक्सीलुम	Zanthoxylum
जा० अर्माटम	Z. armatum
जा० बुडरुन्गा	Z. budrunga
जास्मिनुम	Jasminum
जा० मुल्टीफ्लोरुम	J. multiflorum
जा० हुमीले	J. humile
जिजीफुस	Ziziphus
जि० जीलोपीरुस	Z. xplopyrus
जि० ट्रुन्काटा	Z. truncata
जि० नुम्मुलारिआ	Z. nummularia
जि० माउरीटिआना	Z. mauritiana
जि० रुगोसा	Z. rugosa
जि० वुल्गारिस	Z. vulgaris
जि० साटिवा	Z. sativa

जिन्जीबेर	Zingiber
जिप्सोफिला एलेगान्स	Gypsophila elegans
जि॰ सेडीफोलिआ	G. sedifolia
जिम्नेमा कुस्पीडाटुम	Gymnema cuspidatum
जिम्नोस्पोरिआ रॉइलेआना	Gymnosporia royleana
जिरार्डिनिआ जेइलानिआ	Girardinia zeylanica
जि॰ डिवेर्सीफोलिआ	G. diversifolia
जीगोफील्लुम सिम्प्लेक्स	Zygophyllum simplex
जीन्निआ एलेगान्स	Zinnia elegans
जीलिआ जीलोकार्पा	Xylia xylocarpa
जीलोकार्पुस गांजेटिकुम	Xylocarpus gangeticum
जुग्लान्स रेजिआ	Juglans regia
जुन्गेरमान्निआ रुब्रीपुंक्टाटा	Jungermannia rubripunctata
जुबूला	Jubula
जुस्टीसिआ बेटोनिका	Justicia betonica
जूनीपेरुस	Juniperus
जू॰ कोम्मूनिस	J. communis
जू॰ स्कुआमाटा	J. squamata
जूरीनेआ डोलोमिआएआ	Jurinea dolomiaea
जू॰ माक्रोसेफाला	J. macrocephala
जेआ माइस	Zea mays
जेउम	Geum
जेओकालिक्स	Geocalyx
जे॰ ग्रावेओलान्स	G. graveolans
जेओट्रीकुम	Geotrichum
जेन्टिआना	Gentiana
जे॰ अल्जिडा	G. algida
जे॰ कुर्रू	G. kurroo
जे॰ लुटेआ	G. lutea
जे॰ लेउकोमेलाएना	G. leucomelaena
जेन्टिआनोप्सिस डेटोन्सा	Gentianopsis detonsa
जेब्रीना पेन्डुला	Zebrina pendula
जेरानिउम	Geranium
जे॰ वालिच्चिआनुम	G. wallichianum
जेरोम्फिस	Xeromphis
जे॰ स्पीनोसा	X. spinosa
जेलीडिउम	Gelidium
जैलकिएा	Jakciella
जोइसिआ माट्रेल्ला	Loysia matrella
जोर्निआ गीब्बोसा	Zornia gibbosa
टाक्का लेओन्टोपेटालोइडेस	Tacca leontopetaloides
टाक्सील्लुस वेस्टिटुस	Taxillus vestitus
टाक्सुस बक्काटा	Taxus baccata
टाक्सोडिउम डिस्टीकुम	Taxodium distichum

टाजेटेस एरेक्टा	Tagetes erecta
टा० पाटुला	T. patula
टामारिन्डुस ईन्डिका	Tamarindus indica
टारावसाकुम	Taraxacum
टा० ओफीसिनाले	T. officinale
टा० लेउकान्थुम	T. leucanthum
टालाउमा होद्गसोनी	Talauma hodgsoni
टीनोस्पोरा कोर्डीफोलिआ	Tinospora cordifolia
टी० मालाबारिका	T. malabarica
टीलोफोरा ईन्डिका	Tylophora indica
टुर्नेरा सुबूलाटा	Turnera subulata
टुलिपा स्टेल्लाटा	Tulipa stellata
टूना सीलिआटा	Toona ciliata
टेकोमेल्ला उन्डुलाटा	Tecomella undulata
टेक्टारिआ	Tectaria
टे० कोआडुनाटा	T. coadunata
टेक्टोना ग्रान्डिस	Tectona grandis
टेफ्रोसिआ	Tephrosia
टे० अप्पोलिनेआ	T. appolinea
टे० फाल्सीफॉर्मिस	T. falciformis
टे० पुरपुरेआ	T. purpurea
टे० स्ट्रिगोसा	T. strigosa
टेट्रामेलेस नूडीफ्लोरा	Tetrameles nudiflora
टेट्रासेन्ट्रोन	Tetracentron
टे० सिनेन्से	T. sinense
टेर्मिनालिआ	Terminalia
टे० अर्जुना	T. arjuna
टे० अलाटा	T. alata
टे० चेबुला	T. chebula
टे० टोमेन्टोसा	T. tomentosa
टे० पानिकुलाटा	T. paniculata
टे० बीअलाटा	T. bialata
टे० बेल्लीरिका	T. bellirica
टे० मीरिओकार्पा	T. myriocarpa
टोड्डालिआ एशिआटिका	Toddalia asiatica
टोलीपोथ्रिक्स	Tolypothrix
ट्राकीफुस बीकोलॉर	Trachyphus bicolor
ट्रागुस राक्सबर्घिई	Tragus roxburghii
ट्रागोपोगॉन	Tragopogon
ट्रापा बीस्पिनोसा	Trapa bispinosa
ट्रिआंथेमा पोर्टुलाकास्ट्रुम	Trianthema portutacastrum
ट्रिबुलुस टेर्रेस्ट्रिस	Tribulus terrestris
ट्रि० राजस्थानेन्सिस	T. rajasthanensis
ट्रि० लॉन्गीपेटालुस उपजाति माक्रोप्टेरुस	T. longipetalus Subsp macropterus

ट्रि॰ लॉन्गीपेटालुस उपजाति लॉन्गीपेटालुस	T. longipetalus Sssp longipetalus
ट्रीउम्फेट्टा पिलोसा	Triumfetta pilosa
ट्री॰ र्होम्बोइडेआ	T. rhomboidea
ट्रीकोकॉलेआ टोमेन्टेला	Trichocolea tomentella
ट्रीकोडेस्मा ईन्डिकुम	Trichodesma indicum
ट्रीटिकुम	Triticum
ट्रीडाक्स प्रोकुम्बेन्स	Tridax procumbens
ट्रीफोलिउम आलेक्सान्ड्रिनुम	Trifolium alexandrinum
ट्रेमा ओरिएन्टालिस	Trema orientalis
डाउकुस कारोटा उपजाति साटीवुस	Daucus carota ssp. sativus
डाक्टीलोक्टेनिउम आएजीप्टिउम	Dactyloctenium aegyptium
डा॰ सीन्डिकुम	D. sindicum
डाक्टीलोर्हीजा हाटागिरेआ	Dactylorhiza hatagirea
डाटूरा	Datura
डा॰ मेटेल	D. metel
डाफ्ने	Daphne
डालबेर्जिआ पानीकुलाटा	Dalbergia paniculata
डा॰ लाटीफोलिआ	D. latifolia
डा॰ सिस्सू	D. sissoo
डावाल्लिआ	Davallia
डा॰ ट्रीकोमानोइडेस	D. trichomanoides
डाहलिया पीन्नाटा	Dahlia pinnata
डिओस्कोरेआ	Dioscorea
डि॰ अन्गुइना	D. anguina
डि॰ डेल्टोइडेआ	D. deltoidea
डि॰ बेलोफिल्ला	D. belophylla
डिओस्पीरॉस	Diospyros
डि॰ एक्सस्कुल्प्टा	D. exsculpta
डि॰ कोर्डीफोलिआ	D. cordifolia
डि॰ मेलानोक्सीलोन	D. melanoxylon
डि॰ मोन्टाना	D. montana
डिक्लीप्टेरा आबुएन्सिस	Dicliptera abuensis
डीआंथुस चीनेन्सिस	Dianthus chinensis
डी॰ बार्बाटुस	D. barbatus
डीकान्थिउम आन्नुलाटुम	Dichanthium annulatum
डीकान्थिउम कारीकोसुम	D. caricosum
डी॰ पंचगनिएन्से	D. panchganiense
डीक्रानेल्ला	Dicranella
डीक्रानोप्टेरिस	Dicranopteris
डी॰ लीनेआरिस	D. linearis
डीकोमा टोमेन्टोसा	Dicoma tomentosa
डीक्रोफिल्लुम ईन्डिकुम	Dycrophyllum indicum
डीक्रोस्टाचिस सिनेरेआ	Dichrostachys cinerea
डीजीटारिआ	Digitaria

डी० क्रुसीआटा	D. cruciata
डीजीटालिस पुर्पुरेआ	Digitalis purpurea
डीडीमोकार्पुस पीग्माएआ	Didymocarpus pygmaea
डीनोक्लोआ अण्डामानिका	Dinochloa andamanica
डीमेरिआ वुडरोई	Dimeria woodrowii
डीप्काडी एरीथ्राएउम	Dipcadi erythraeum
डीप्टेराकान्थुस पाटुलुस प्र० आल्बा	Dipteracanthus patulus var. alba
डीप्टेरीजिउम ग्लाउकुम	Dipterygium glaucum
डीप्टेरोकार्पुस	Dipterocarpus
डी० अलाटुस	D. alatus
डी० ईन्डिकुस	D. indicus
डी० कोस्टाटुस	D. costatus
डी० ग्रासीलिस	D. gracilis
डी० ग्रान्डीफ्लोरुस	D. grandiflorus
डी० टूर्बिनाटुस	D. turbinatus
डी० बोर्डील्लोनी	D. bourdilloni
डी० रेटुसुस	D. retusus
डीप्लाजिउम एस्कुलेन्टुम	Diplazium esculentum
डीप्लोक्सीलॉन	Diploxylon
डीमोरफोथेका प्लूविआलिस	Dimorphotheca pluvialis
डील्लेनिआ आउरेआ	Dillenia aurea
डी० पेन्टागिना	D. pentagyna
डीसोक्सीलुम प्रोसेरुम	Dysoxylum procerum
डा० मालाबारिकुम	D. malabaricum
डीस्चीडिआ बेंगालेंसिस	Dischidia benghalensis
डेउक्सिआ	Deyeuxia
डे० सीम्लेन्सिस	D. simlensis
डेन्टेल्ला सेर्पिल्लीफोलिआ	Dentella serpyllifolia
डेन्ड्रोकालामुस	Dendrocalamus
डे० जीजाटेआ	D. gigantea
डे० स्ट्रिक्टुस	D. strictus
डे० हामिल्टोनिई	D. hamiltonii
डेन्ड्रोफ्थोए फाल्काटा	Dendrophthoe falcata
डेन्ड्रोबिउम	Dendrobium
डे० डेंसिफ्लोरुम	D. densiflorum
डेन्ड्रोसेरोस क्रीस्पुस	Dendroceros crispus
डेरिस ट्रीफोलिआटा	Derris trifoliata
डेलफीनिउम अजाकिस	Delphinium ajacis
डे० ब्रूनोनिआनुम	D. brunonianum
डेलोनिक्स रेजिआ	Delonix regia
डेस्मोडिउम	Desmodium
डे० औजेइनेन्से	D. oojeinense
डे० ट्रीफ्लोरुम	D. triflorum
डे० मोटोरिउम	D. motorium

डे० वेलुटिनुम	D. velutinum
डेस्मोस्टाचिआ बीपिन्नाटा	Desmostachya bipinnata
डोडोनाएआ विस्कोसा	Dodonaea viscosa
ड्राकोसेफालुम नुटान्स	Dracocephalum nutans
ड्राबा	Draba
ड्रा० ओरेआडेस	D. oreades
ड्रा० सेटोसा	D. setosa
ड्रा० स्टेनोकार्पा	D. stenocarpa
ड्रीओप्टेरीस	Dryopteris
ड्री० ओडोन्टोलोमा	D. odontolonma
ड्री० कॉच्लेआटा	D. cochleata
ड्रीओबालानोप्स	Dryobalanops
ड्रोसेरा ईन्डिका	Drosera indiea
ड्रो० बुर्मानी	D. burmanni
त्सुगा डुमोसा	Tsuga dumosa
थालीक्ट्रुम	Thalictrum
था० फोलिओलोसुम	T. foliolosum
थीलाकोस्पेर्मुम काएस्पीटोसुम	Thylacospermum caespitosum
थीसानोलाएना माक्सिमा	Thysanolaena maximao
थुईडिउम कॉन्टोर्टुलुम	Thuidium contortulum
थूजा ओक्सीडेन्टालिस	Thuja occidentalis
थेओब्रोमा काकाओ	Theobiroma cacao
थेमेडा	Themeda
थे० अरुन्डीनासेआ	T. arundinacea
थे० ट्रिआन्ड्रा	T. triandra
थे० लाक्सा	T. laxa
थे० विल्लोसा	T. villosa
थेर्मोप्सिस इनफ्लाटा	Thermopsis inflata
थे० बारबाटा	T. barbata
थेवेटिआ पेरुविआना	Thevetia peruviana
थेस्पेसिआ पोपुल्नेआ	Thespesia populnea
डुआबान्गा सोन्नेराटिओइडेस	Duabanga sonneratioides
नारेन्गा पोर्फीरोकोमा	Naranga porphyrocoma
नार्डिआ आसामिका	Nardia assamica
ना० सीबोल्डिई	N. sieboldii
नार्डोस्टाकिस	Nardostachys
ना० ग्रान्डीफ्लोरा	N. grandiflora
ना० जटामांसी	N. jatamansi
निक्टान्थेस आर्बोर ट्रिसटिस	Nyctanthes arbor-tristis
नीकोटिआना	Nicotiana
नी० अलाटा प्र० ग्रान्डीफ्लोरा	N. alata var grandiflora
नी० टाबाकुम	N. tabacum
नीजेल्ला डामास्सेना	Nigella damanascena
नीपा फ्रूटीकान्स	Nipa fruticans
नीम्फाएआ	Nymphaea

नी० टेट्रागोना	N. tetragona
नीम्फोइडेस ईन्डिका	Numphoides indica
नी० क्रिस्टाटा	N. cristata
नेउरोस्पोरा क्रास्सा	Neurospora crassa
नेओबालानोकर्पुस	Neobalanocarpus
नेपेटा	Nepeta
ने० कोन्नाटा	N. connata
ने० फ्लोक्कुलोसा	N. flocculosa
नेपेन्थेस खासिआना	Nepenthes khasiana
नेफरोडिउम	Nephrodium
नेमेसिआ वेर्सीकोलोर	Nemesia versicolor
ने० स्ट्रुमोसा	N. strumosa
नेलुम्बोनूसीफेरा	Nelumbo nucifera
नेल्सोनिआ कानेस्सेन्स	Nelsonia canescens
नेर्वीलिआ अरागोआना	Nervilia aragoana
नोटोथीलास	Notothylas
नो० डिस्सेक्टा	N. dissecta
नो० लेविएरी	N. levieri
नोटोस्कीफुस पान्डेई	Notoscyphus pandeyii
नो० लेउटेस्सेन्स	N. leutescens
नोमोकारिस ओक्सीपेटाला	Nomocharis oxypetala
नोस्टोक	Nostoc
पकाराइमेआ	Pakaraimea
पाएओनिआ पा० इमोडी	Paeonia
पा० एमोडी	P. emodi
पानीकुम आन्टीडोटाले	Panicum antidotale
पा० टुर्जीडुम	P. turgidum
पा० मीलिआरे	P. miliare
पा० मीलिआसेउम	P. miliaceum
पा० रेपेन्स	P. repens
पान्डानुस	Poandanus
पा० टेक्टोरिउस	P. tectorius
पापावेर र्होएआस	Papaver rhoeas
पा० सोम्नीफेरुम	P. somniferum
पाफिओ पेडीलुम	Paphiopedilum
पारमेलिआ	Parmelia
पा० नेपालेन्सिस	P. nepalensis
पा० सिर्हाटा	P. cirrhata
पाराशोरेआ	Parashorea
पार्किन्सोनिआ आकूलेआटा	Parkinsonia acusata
पार्थेनिउम	Parthenium
पा० हिस्टेरोफोरुस	P. hysterophorus
पार्मेन्टिआ सेरेइफेरा	Parmentia cereifera
पारौटिआ जाक्यूमोन्टिआना	Parrotia jacquemontiana
पालेओक्सान्थेस	Paleoxanthes

पावोनिआ अराबिका प्र० ग्लुटीनोसा	*Pavonia arabica var. glutinosa*
पा० अराबिका प्र० मुस्सोरीएन्सिस	P. arabica var. mussoriensis
पा० जेइलानिका	P. zeylanica
पास्पालुम डीस्टिचुम	Paspalum distichum
पा० वागीनाटुम	P. vaginatum
पा० स्क्रोबीकुलाटुम	P. scrobiculatum
पास्सी फ्लोरा काएरुलेआ	Passiflora caerulea
पिक्रोरि्हज़ा	Picrorhiza
पि० कुरोंआ	P. kurrooa
पि० स्क्रोफुलारिआ	P. scrophularia
पिटीरोग्रामा कालोमेलानोस	Pityrogramma calomelanos
पिथेसेल्लोबिउम डुल्से	Pithecellobium dulce
पीनुस	Pinus
पीनुस आरमान्डी	P. armandi
पी० इन्सुलारिस	P. insularis
पी० जेरार्डिआना	P. gerardiana
पी० राक्सबर्घिई	P. roxburghii
पी० वालिचिआना	P. wallichiana
पीपेर नीग्रुम	Piper nigrum
पीरुस	Pyrus
पी० लानाटा	P. lanata
पीलिओस्टिग्मा मालाबारिकुम	Piliostigma malabaricum
पीसेआ स्मिथिआना	Picea smithiana
पीस्टिआ स्ट्राटिओइटेस	Pistia stratioites
पुक्सीनेल्लिआ थाम्सोनिई	Puccinellaia *thomsonii*
पुनीका ग्रानाटुम	Punica granatum
पुलीकारिआ क्रिस्पा	Pulicaria crispa
पु० राजपुतानाए	P. rajputanae
पेउसेडानुम धाना	Peucedanum dhana
पेटालीडिउम बार्लेरिओइडेस	Petalidium barlerioides
पेटालोफिल्लुम ईन्डिकुम	Petalophyllum indicum
पेडीकुलारिस	Pedicularis
पे० टूबी फ्लोरा	P. tubiflora
पे० पेक्टिनाटा	P. pectinata
पेनिसीलिउम रूब्रुम	Penicillium rubrum
पेन्नीसेटुम क्लांडेस्टीनुम	Pennisetum clandestinum
पे० टीफोइडेस	P. typhoides
पेम्फिस आसीडुला	Pemphis acidula
पेरिल्ला फ्रुटेसेन्स	Perilla frutescens
पेरीलेप्टा एडगवोर्थिआना	Perilepta edgeworthiana
पेरेस्किआ आकुलीआटा प्र० गोडसेफ्फिआना	Pereskia aculeata var. godseffiana
पेरोटिस हॉर्डेइफोर्मीस	Perotis hordeiformis
पेर्गुलारिआ डाएमिआ	Pergularia daemia
पेर्सेआ अमेरिकाना	Persea americana
पे० माक्रान्था	P. macrantha

पेल्टीगेरा	Peltigera
पे० कानिना	P. canina
पोंगामिआ	Pongamia
पों० पीन्नाटा	P. pinnata
पोआ	Poa
पो० आन्नुआ	P. annua
पो० इनफिर्मा	P. infirma
पो० सूपिना	P. supina
पोउजोल्जिआ ईन्डिका	Pouzolzia indica
पोगोस्टेमॉन बेन्घालेन्सिस	Pogostemon benghalensis
पोटामोजेटोन क्रिस्पुस	Potamogeton crispus
पोटेन्टिल्ला	Potentilla
पो० बीफुर्का	P. bifurca
पो० रेप्टान्स	P. reptans
पोडो कार्पुस	Podocarpus
पो० ग्रासीलिओर	Podocarpus gracilior
पो० नीरीफोलिआ	P. neeriifolia
पो० माक्रोफिल्लुस	P. macrophyllus
पो० वालिलचिआनुस	P. wallichianus
पोडो कील्कुम पोडोफील्लुम	Podophyllum
पो० हेक्सान्ड्रुम	P. hexandrum
पोडोस्टेमोन	Podostemon
पोडोस्पोरा	Podospora
पोपुलुस	Populus
पो० नीग्रा	P. nigra
पोरीफरा टेनेरा	Porphyra tenera
पोराना पानीकुलाटा	Porana paniculata
पोरेल्ला	Porella
पोर्टुलाका पीलोसा उपजाति ग्रान्डी फ्लोरा	Portulaca pilosa ssp. grandi flora
पोर्टेरेसिआ कोआक्टाटा	Porteresia coactatar
पोलीआन्थेस टुबेरोसा	Polyanthes tuberosa
पोलीआल्थिआ कोफ्फेओइडेस	Polyalhia coffeoides
पोलीकार्पाएिआ कोरिम्बोसा	Polycarpae aorymbosa
पो० स्पीकाटा	P. spicata
पोलीगाला एरिओप्टेरा	Polygala erioptera
पोलीगोनुम	Polygonum
पो० अफीने	P. affine
पो० प्लेबेइउम	P. plebeium
पो० पोलीस्टाचिउम	P. polystachyum
पो० नेपालेन्स	P. nepalense
पो० मोल्ले	P. molle
पोलीट्रीकुम	Polytrichum
पोली,पोरुस	Polyporus
पोलीस्टिकुम	Posystichum
पो० स्कुआरोसुम	P. squarrosum

पोह्लिआ	Pohlia
प्टीकान्थुस स्ट्रिओटुस	Ptychanthus striatus
प्टेरीगोटा अलाटा प्र० इर्रेगुलारिस	Pterygota alata var. irregularis
प्टेरीडिउम आक्युईलिनुम	Pteridium aquilinum
प्टेरीस बीआउरीटा	Pteris biaurita
प्टे० वालिचिआना	P. wallichiana
प्टे० वीट्टाटा	P. vittata
प्टेरोकार्पुर्स	Pterocarpus
प्टे० डाजबेजओइडेस	P. dalbergioides
प्टे० मार्सूपिउम	P. marsupium
प्टे० सान्टालिनुस	P. santalinus
प्टेरोलोबिउम	Pterolobium
प्रिन्सेपिआ ऊटीलिस *	Prinsepia utilis
प्रिमुला	Primula
प्रि० एल्लिप्टिका	P. elliptica
प्रि० क्लार्केइ	P. clarkei
प्रि० माक्रोफिल्ला	P. macrophylla
प्रूनुस	Prunus
प्रू० आर्मेनिआका	P. armeniaca
प्रू० क्रेनाटा	P. crenata
प्रू० नेपालेन्सिस	P. nepalensis
प्रू० प्रेसिका	P. persica
प्रेनान्थेस ब्रूनोनिआना	Prenanthes brunoniana
प्रोसोपिस जुलीफ्लोरा	Prosopis juliflora
प्रो० सिनेरारिआ	P. cineraria
प्लांचोनिआ	Planchonia
प्लांटागो ओवाटां	Plantago ovata
प्लां० एशिआटिका	P. asiatica
प्लाजिओ किला	Plagiochila
प्लाटीसेरिउम वालिचिई	Platycerium wallichii
प्लूमेरिआ आल्बा	Plumeria alba
प्लू० रुब्रा	P. rubra
प्लूकेआ लांसेओलाटा	Pluchea lanceolata
प्लेइओने प्राएकोक्स	Pleione praecox
प्लेउरोटुस सानजोर काजू	Pleurotus sanjor caju
प्लेउरोस्पेर्मुम	Pleurospermum
प्लेक्ट्रान्थुस टेर्नीफोलिउस	Plectranthus ternifolius
प्सीडिउम गुआजावा	Psidium guajava
प्सीलोटुम नुडुम	Psilotum nudum
प्सेउडेलेफान्टोपुस स्पीकाटुस	Pseudelephantopus spicatus
प्सेउडोड्रिनारिआ कोरोनोन्स	Pseudodrynaria coronons
प्सेउडोराफिस स्पीनेस्सेन्स	Pseudoraphis spinescens
प्सेउडोलेस्केआ रामुलीजेरा	Pseudoleskea ramuligera
फाइउस	Phaius

फाएओग्राफिस	Phaeographis
फाएओसेरॉस	Phaeoceros
फा० प्रोस्काउएरी	P. proskaueri
फागोनिआ ईन्डिका	Fagonia indica
फा० ईन्डिका प्र० श्वेनफुर्थिई	F. indica var. schweinfurthii
फानेरा इन्टेग्रीफोलिआ	Phanera integrifolia
फार्सेटिआ माक्रान्था	Farsetia macrantha
फा० हामिल्टोनिई	F. hamiltonii
फालारीस अरुन्डीनासेआ प्र० पिक्टा	Phalaris arundinacea var. picta
फा० मिनोर	P. minor
फासेओस्टोमा	Phaseostoma
फिलाडेल्फुस टोमेन्टोसुस	Philadelphus tomentosus
फिस्सिडेन्स	Fissidens
फीकुस आउरीकुलाटा	Ficus auriculata
फी० कारिका	F. carica
फी० कृष्णाए	F. krishnae
फी० नेर्वोसा	F. nervosa
फी० पाल्माटा	F. palmata
फी० बेंगालेंसिस	F. bengalensis
फी० राक्सबर्घिई	F. roxburghii
फी० रेलीजिओसा	F. religiosa
फी० विरेन्स	F. virens
फीटोलाक्का डेकान्ड्रा	Phytolacca decandra
फीर्मिआना कोलोराटा	Firmiana colorata
फी० फुल्गेन्स	F. fulgens
फीलान्थुस एम्ब्लिका	Phyllanthus emblica
फी० माडेरास्पाटेन्सिस	P. maderaspatensis
फीलोनोटिस	Philonotis
फीसारुम पॉलीसेफालुम	Physarum polycephalum
फीसोक्लाइना प्राएआल्टा	Physochlaina praealta
फुकुस	Fucus
फुसारिउम	Fusarium
फेनिक्स	Phoenix
फे० अकाउलिस	P. acaulis
फे० पालुडोसा	P. paludosa
फे० सिल्वेस्ट्रिस	P. sylvestris
फे० हुमिलिस	P. humilis
फेलीसिआ बेर्गेरिआना	Felicia bergeriana
फेस्टुका	Festuca
फे० ओवीना	F. ovina
फे० रुब्रा	F. rubra
फे० लेविन्गेई	F. levingei
फोएनीकुलुम वुल्गारे	Foeniculum vulgare
फोएबे लान्सेओलाटा	Phoebe lanceolata
फोटीनिआ नोटोनिआना	Photinia notoniana

फोलिओसेरॉस	Folioceros
फो० आप्पेन्डीकुलाटुस	F. appendiculatus
फो० पान्डेई	F. pandeii
फो० पॉलीफोर्मिस	F. polyformis
फो० मंगालोरेउस	F. mangaloreus
फोलिडोटा आर्टीकुलाटा	Pholidota articulata
फोसम्ब्रोनिआ कश्यपिई	Fossombronia kashyapii
फ्राक्सीनुस	Fraxinus
फ्रागारिआ ईन्डिका	Fragaria indica
फ्राग्मीटेस कोम्मूनिस	Phragmites communis
फ्रा० कार्का	P. karka
फ्रिटील्लारिआ रोयलेई	*Fritillaria roylei*
फ्रूल्लानिआ	Frullania
फ्रू० अवोलिनी	F. avolini
फ्रू० जेमुल्लोसा	F. gemullosa
फ्रू० तुएमी	F. tuyamae
फ्रेरेआ ईन्डिका	Frerea indica
फ्लेमिन्जिआ चप्पार	Flemingia chappar
फ्ले० नाना	F. nana
फ्ले० सेमीअलाटा	F. semialata
फ्ले० स्ट्रिक्टा	F. stricta
फ्ले० स्ट्रोबिलीफेरा	F. strobilifera
फ्लैकूर्टिआ	Flacourtia
फ्लै० ईन्डिका	F. indica
फ्लै० रामोन्ट्ची	F. ramontchi
फ्लोगाकान्थुस थीर्सीफ्लोरुस	Phlogacanthus thyrsiflorus
बाउहीनिआ	Bauhinia
बा० पुरपुरेआ	B. purpurea
बा० ब्लेकेआना	B. blakeana
बा० रासेमोसा	B. racemosa
बा० रेटुसा	B. retusa
बा० वारीएगाटा	B. variegata
बा० वाह्लिई	B. vahlii
बाम्बूसा	Bambusa
बारिन्गटोनिआ	Barringtonia
बा० रासेमोसा	B. racemosa
बार्लेरिआ अकान्थोइडेस	Barleria acanthoides
बा० क्रिस्टाटा	B. cristata
बा० प्रिओनिटिस	B. prionitis
बा० प्रिओनिटिस प्रभेद डिआकान्था	B. prionitis var. diacantha
बालानीटेस आएजिप्टिआका	Balanites aegyptiaca
बालानोफोरा	Balanophora
बा० इनवोलूक्राटा	B. involucrata
बा० डिओइका	B. dioica
बिक्सा ओरेल्लाना	Bixa orellana

बिग्नोनिआ आल्लिआसेआ	Bignonia alliacea
बिस्चोफिआ जावानिका	Bischofia javanica
बिस्टेल्ला डिगीना	Bistella digyna
बीएबेर्स्टेईनिआ ओडोरा	Biebersteinia
बीडेन्स सेर्नुआ	Bidens cernua
बुएल्लिआ मनीपुरेन्सिस	Buellia manipurensis
बुएट्नेरिआ आस्पेरा	Buettneria aspera
बुकनानिआ लन्जान	Buchanania lanzan
बुक्सुस वालिचिआना	Buxus wallichiana
बुटेआ	Butea
बु० मोनोस्पेर्म	B. monosperma
बु० सुपेर्बा	B. superba
बुड्लेजा एशिआटिका	Buddleja asiatica
बुप्लेउरुम ग्रासीलिलमुम	Bupleurum gracillimum
बु० फाल्काटुम	B. falcatum
बुल्बोफील्लुम	Bulbophyllum
बेटा वुल्गारिस	Beta vulgaris
बेटुला अलनोइडेस	Betula alnoides
बे० ऊटिलिस	B. utilis
बेन्थामीडिआ कापीटाटा	Benthamidia capitata
बेन्टिकिआ कोंडापन्ना	Bentinckia condapanna
बे० निकोबारिका	B. nicobarica
बेरबेरिस	Berberis
बे० आरिस्टास्टा	B. aristata
बे० एशिआटिका	B. asiatica
बे० ख्रासिआना	B. khasiana
बे० प्राएसिपुस	B. praecipus
बे० मीक्रोपेटाला	B. micropetala
बे० लीसिउम	B. lycium
बे० वालिचिआना	B. wallichiana
बेर्गेनिआ लिगुलाटा	Bergenia ligulata
बे० स्ट्राचेयी	B. stracheyi
बेर्जिआ अम्मानीओइडेस	Bergia ammanioides
बेल्लिस पेरेन्निस	Bellis perennis
बोउगाइनविल्लेआ स्पेक्टाबिलिस	Bougainvillea spectabilis
बोउचेआ मार्रुबीफोलिआ	Bouchea marrubifolia
बोएरहाविआ एरेक्टा	Boerhavia erecta
बो० एलेगान्स	B. elegans
बो० डिफ्फूसा	B. diffusa
बोट्रीकिउम टेर्नाटुम	Botrychium ternatum
बोथ्रीओक्लोआ इन्टेरमेडिआ	Bothriochloa intermedia
बो ओडोराटा	B. odorata
बो० पेर्टुसा	B. pertusa
बोन्नाया ब्राक्टेओइडेस	Bonnaya bracteoides
बोबारीटा	Bobarita

बोम्बाक्स इन्सिग्ने	Bombax insigne
बो० मालाबारिकुम	B. malabaricum
बो० सेइबा	B. ceiba
बोरास्सुस फ्लाबेलीफेर	Borassus flabellifer
बोलेटुस	Boletus
बोश्निआकिआ	Boschniakia
बोस्वेल्लिआ सेर्राटा	Boswellia serrata
बोह्मेरिआ नीवेआ	Boehmeria nivea
बो० माक्रोफिल्ला	B. macrophylla
बो० रुगुलोसा	B. rugulosa
ब्रोउस्सोनेटिआ	Broussonetia
ब्राकीथेसिउम वजीरिएन्से	Brachythecium waziriense
ब्राचीआरिआ डेफ्लेक्सा	B.rachiaria deflexa
ब्रा० रामोसा	B. ramosa
ब्राचीकोमे ईबेरिडिफोलिआ	Brachycome iberidifolia
ब्रास्सिका आलेरासेआ प्रभेद कापिटाटा	Brassica oleracea var. capitata
ब्रा० ओलेरासेआ प्रभेद गोनीलोइडेस	B. oleracea var. gonyloides
ब्रा० ओलेरासेआ प्रभेद बोट्रीटिस	B. oleracea var. botrytis
ब्रा० जुन्सेआ	B. juncea
ब्रीउम	Bryum
ब्री० रुबेन्स	B. rubens
ब्रीडेलिआ रेटुसा	Bridelia retusa
ब्री० स्कुआमोसा	B. squamosa
ब्री० स्टीपुल्लारिस	B. stipularis
ब्रूगइएरा कोंजुगाटा	Bruguiera conjugata
ब्रू० जिम्नोर्र्हीजा	B. gymnorrhiza
ब्रू० सीलिन्ड्रिका	B. cylindrica
ब्रूनेल्ला वुल्गारिस	Brunella vulgaris
ब्रोवाल्लिआ विस्कोसा	Browallia viscosa
ब्लासिआ पुसील्ला	Blasia pusilla
ब्लेच्नुम ओरिएन्टाले	Blechnum orientale
ब्लेफारिस लिनाराएफोलिआ	Blapharis linaraefolia
मकारांगा पेल्टाटा	Macaranga peltata
मधूका लोन्गीफोलिआ	Madhuca longifolia
म० लोन्गीफोलिआ प्रभेद लाटीफोलिआ	M. longifolia var. latifolia
माइटेनुस एमार्जीनाटुस	Maytenus emarginatus
माएसा ईन्डिका	Maesa indica
मा० मोन्टाना	M. montana
माक्रोमीट्रिउम पेरोट्टेटी	Macromitrium perrotteti
माक्रोसोलेन कोचीनचीनेन्सिस	Macrosolen cochinchinensis
माग्नोलिआ कैम्पबेल्लिई	Magnolia campbellii
मा० प्टेरोकार्पा	M. pterocarpa
मानिलकारा आक्रास	Manilkara achras
मान्गीफेरा ईन्डिका	Mangifera indica
मान्गलेइटिआ इन्सिग्निस	Mangleitia insignis

मान्टीसिआ साल्टाटोरिआ	Mantisia saltatoria
मा० स्पाथुलाटा	M. spathulata
माम्मिलारिआ एलोन्गाटा	Mammillaria elongata
मारकुइसिआ	Marquisia
मारोनिआ	Maronia
मार्कान्टिआ	Marchantia
मा० काश्यपिई	M. kashyapii
मा० पॉलीआसिआ	M. polyasia
मा० पॉलीमॉर्फा	M. polymorpha
मार्सीलिआ	Marsilea
मा० मिनूटा	M. minuta
मालाक्सिस आकुमीनाटा	Malaxis acuminata
मा० मुस्कीफेरा	M. muscifera
मा० रहीदिई	M. rheedii
माल्लोटुस फिलीप्पेन्सिस	Mallotus philippensis
माहोनिआ आकान्थीफोलिआ	Mahonia acanthifolia
मा० जौनसारेन्सिस	M. Jaunsarensis
मिकानिआ	Mikania
मिट्राकार्पुस वेर्टीसिल्लाटुस	Mitracarpus verticillatus
मिट्रागिना पार्वीफोलिआ	Mitragyna parvifolia
मिट्रास्टेमोन यामामोटोई	Mitrastemon yamamotoi
मीक्रोकोक्का मेरकूरिआलिस	Micrococca mercurialis
मीक्रोमेलुम पूबेस्सेन्स	Micromelum pubescens
मी० मीनूटुम	M. minutum
मीक्रोस्पोरॉन	Microsporon
मीचेलिया डॉल्टसोपा	Michelia doltsopa
मीमुलुस लूटेउस	Mimulus luteus
मीमूसॉप्स एलेन्गी	Mimusops elengi
मीमोसा पूडिका	Mimosa pudica
मी० रुबीकाउलिस	M. rubicaulis
मीरिओस्टाचिआ वाइटिआना	Myriostachiya wightiana
मीरिका एस्कूलेन्टा	Myrica esculenta
मीरिकारिआ एलेगान्स	Myricaria elegans
मीरिस्टिका अन्डमानिका	Myristicaandamanica
मी० फ्राग्रान्स	M. fragrans
मीर्सिने अफ्रीकाना	Myrsine africana
मीलिउसा टोमेन्टोसा	Miliusa tomentosa
मील्लेटीआ आउरिकुलाटा	Millettia auriculata
मी० एक्सटेन्सा	Milletita extensa
मुकिआ मडेरास्पटाना	Mukia amderaspatana
मुकूना आट्रोपुर्पुरेआ	Mucuna atropurpurea
मुर्राया एक्सोटिका	Murraya exotica
मु० कोएनिगिई	M. koenigii
मु० पानीकुलाटा	M. paniculata
मुसा बुल्बिसिआना	Musa bulbisiana

मुस्साएन्डा लूटेओला	Mussaenda luteola
मेकोनोप्सिस	Meconopsis
मे० आकूलेआटा	M. aculeata
मेट्जगेरिया	Metzgeria
मेडीकागो लुपुलिना	Medieago lupulina
मे० साटीवा	M. sativa
मेन्था	Mentha
मे० पीपेरिटा	M. piperita
मेलानोसेन्क्रिस अबीस्सीनिका	Melanocenchris abyssinica
मेलान्थेसा रहाम्नोइडेस	Melanthesa rhamnoides
मेलालेउका लेउकाडेन्ड्रोन	Melaleuca leucadendron
मेलिआ अजेडाराक	Melia azedarach
मेलिओस्मा सिम्प्लीसीफोलिआ	Meliosma simplicifolia
मेल्हानिआ डेन्हामिइ	Melhania denhamii
मेसुआ नागासारुम	Mesua nagasarum
मोनोटास	Monotas
मोनोट्रोपा	Monotropa
मोनोस्ट्रोमा	Monostroma
मोन्सोनिआ सेनेगालेन्सिस	Monsonia senegalensis
मोमोर्डिका डीओइका	Momordica dioica
मोरचेल्ला क्रास्सीपेस	Morchella crassipes
मो० ग्लाण्डुलोसा	M. glandulosa
मो० डेलीसिओसा	M. deliciosa
मोरिन्गा कोन्कानेन्सिस	Moringa concanensis
मोरीना कोउल्टेरिआना	Morina coulteriana
मोरुस सेर्राटा	Morus serrata
मोल्लुगो नुडीकाउलिस	Mollugo nudicaulis
मो० सेर्वीआना	M. cerviana
राइटिआ टोमेन्टोसा	Wrightia tomentosa
राउवोल्फिआ टेट्राफिल्ला	Rauvolfia tetraphylla
रा० डेंसीफ्लोरा	R. densiflora
रा० सेर्पेटीना	R. serpentina
राडेरमाचेरा जीलोकार्पा	Radermachera xylocarpa
रानुनकुलुस हिर्टेल्लुस	Ranunculus hirtellus
रान्डिआ स्पिनोसा	Randia spinosa
राफानुस साटीवुस	Raphanus sativus
रावेनाला माडागास्कारिएंसिस	Ravenala madagascariensis
रिक्सिआ	Riccia
रि० उदारिई	R. udarii
रि० डिस्कोलोर	R. discolor
रिचार्डिआ स्काब्रा	Richardia scabra
रिबुलिआ हेमीस्फेरिका	Ribulia hemispherica
रिसीनुस कोम्मूनिस	Ricinus communis
रीकार्डिआ	Riccardia
रीवेआ हिपोक्राटेरीफॉर्मिस	Rivea hopocrateriformis

रुटा ग्रावेओलेन्स	Ruta graveolens
रुबिआ टिबेटिका	Rubia tibetica
रुबुस एल्लीप्टिकुस	Rubus ellipticus
रु० फ्रुटीकोसुस	R. fruticosus
रुमेक्स नेपालेन्सिस	Rumax nepalensis
रुस्सुल्ला एमेटिका	Russula emetica
रेनांथेरा इम्सचूटिआना	Renanthera imschootiana
रेमीजिआ पुर्डिकाना	Remijia purdicana
रे० पेडुन्कुलाटा	R. pedunculata
रोइस्टोनेआ रेगिआ	Roystonea regia
रोट्टबोएल्लिआ एक्साल्टाटा	Rottboellia exalltata
रोसा इनवोलुक्राटा	Rosa involucrata
रो० चीनेन्सिस	R. chinensis
रो० डामास्सेना	R. damascena
रो० बोउर्बोनिका	R. bourbonica
रो० ब्रुनोनिई	R. brunonii
रो० वेब्बिआना	R. webbiana
रोसेल्ला	Rocella
रोस्टेल्लुलारिआ वाह्लिई	Rostellularia vahlii
र्हाफिडोफोरा डेकुर्सिवा	Rhaphidophora decursiva
र्हिन्कोसिआ मिनिमा	R. minima
र्हि० शिम्पेरी	R. schimperi
र्हीजोफोरा आपीकुलाटा	Rhizophora apiculata
र्ही० कान्डेलारिआ	R. candelaria
र्ही० मूक्रोनाटा	R. mucronata
र्हीन्केलीट्रुम रेपेन्स	Rhynchelytrum repens
र्हीप्सालिस पेंडुलीफ्लोरा	Rhipsalis penduliflora
र्हुस पार्वीफ्लोरा	Rhus parviflora
र्हेउम एमोडी	Rheum emodi
र्हे० टिबेटिकुम	R. tibeticum
र्हे० नोबिलें	R. nobile
र्हे० पाल्माटुम	R. palmatum
र्हे० वेब्बिआनुम	R. webbianum
र्हो० स्पीसिफोर्मे	R. spiciforme
र्होडोडेन्ड्रोन अन्थोपोगान	Rhododendron anthopogon
र्हो० आर्बोरेउम	R. arboreum
र्हो० ईलियोट्टिई	R. elliottii
र्हो० काम्पबेल्लिआए	R. campbelliae
र्हो० काम्पानुलाटुम	R. campanulatum
र्हो० नुट्टाल्लिई	R. nuttallii
र्हो० लेपीडोटुम	R. lepidotum
र्हो० सान्तापाउई	R. santapaui
र्हो० सुबान्सिरिएेन्से	R. subansiriense
र्हो० होद्गसोनिई	R. hodgsonii
र्होफालोक्नेमिस फाल्लोइड्मेस	Rhophalocne phalloidmis

र्‌ह्रोपालोब्लास्टे आउगुस्टा	Rhopaloblaste augusta
लाक्टूका	Lactuca
ला० डीस्सेक्टा	L. dissecta
लागुरुस ओवाटुस	Lagurus ovatus
लागेरस्ट्रोएमिआ पार्वीफ्लोरा	Lagerstroemia parviflora
ला० मीक्रोकार्पा	L. microcarpa
ला० स्पेसिओसा	L. speciosa
ला० हीपोलेउका	L. hypoleuca
लागोटिस ग्लोबोसा	Lagotis globosa
लाटीपेस सेनेगालेन्सिस	Latipes senegalensis
लाथीरुस ओडोराटुस	Lathyrus odoratus
लाथ्राएआ स्क्वुआमारिआ	Lathraea squamaria
लान्नेआ कोरोमान्डेलिका	Lannea coromandelica
लान्टाना	Lantana
ला० कामारा	L. camara
लान्सेआ टिबेटिका	Lancea tibetica
लामिउम	Lamium
लामीनारिआ	Laminaria
लारिक्स ग्रिफ्फिथिआना	Larix griffithiana
लासीउरुस सिन्डीकुस	Lasiurus sindicus
ला० हिर्सुटुस	L. hirsutus
लिकुआला ग्रान्डिस	Licuala grandis
लि० पेल्टाटा	L. peltata
लिट्सेआ कन्निघामिई	Litsea cunninghamii
लि० सालिसिफोलिआ	L. salicifolia
लिनोसिएरा पार्किन्सोनी	Linociera parkinsonii
लिन्डेनबेर्जिआ ईन्डिका	Lindenbergia indica
लिंडेर्निआ अनागाल्लिस	Lindernia anagallis
लिमोसेल्ला आक्वुआटिका	Limosella aquatica
लिम्नान्थेमुम क्रिस्टाटुम	Limnanthemum cristatum
लिम्नोपोआ	Limnopoa
लिलिउम नीलघेरेंस	Lilium neilgherrense
लि० माक्लीनिआए	L. mackliniae
लिविस्टोना	Livistona
लि० चीनेन्सिस	L. chinensis
लि० जेन्किन्सिआना	L. jenkinsiana
लिस्टेरा लोंगीकाउलिस	Listera longicaulis
लीओनिआ ओवालीफोलिआ	Lyonia ovalifolia
लीकोपेर्सिकोन लीकोपेर्सिकुम	Lycopersicon lycopersicum
लीकोपोडिउम सेर्नुउम	Lycopodium cernuum
लीगोडिउम	Lygodium
ली० फ्लेक्सुओसुम	L. flexuosum
लीची चीनेन्सिस	Litchi chinensis
लीनुम उसीटाटीस्सिमुम	Linum usitatissimum
ली० ग्रान्डीफ्लोरुम	L. grandiflorum

लीमेउम ईन्डिकुम	Limeum indicum
लीमोनिउम सिनुआटुम	Limonium sinuatum
लीर्सिआ हेक्सान्ड्रा	Leersia hexandra
लीसिउम बरबारुम	Lycium barbarum
लुड्वीगिआ हिस्सोपीफोलिआ	Ludwigia hyssopifolia
लेओन्टोडोन	Leontodon
लेउकोस्टेगिआ ईम्मेर्सा	Leucostegia immersa
लेकानोरा	Lecanora
लेपिस्मिउम	Lepismium crusiforme
लेपीडागाथिस क्लावाटा	Lepidagathis ciavata
लेप्टाडेनिआ पीरोटेक्निका	Leptadenia pyrotechnica
लेप्टोजिउम	Leptogium
लेप्टोटेरीगीनांड्रुम ब्रेवीसेटा	Leptopterigynandrum breviseta
लेप्टालेजउनिआ सिक्किमेन्सिस	Leptolejeunia sikkimensis
लेम्ना	Lemna
लेस्पेडेजा सेरीसेआ	Lespedeza sericea
लोडोइसेआ मालडीविका	Lodoicea maldivica
लोनीसेरा	Lonicera
लो० क्युइन्क्युएलोकुलारिस	L. quinquelocularis
लो० स्पिनोसा	L: spinosa
लोफोकोलेआ बीडेन्टाटा	Lophocolea bidentata
लो० भूटानेन्सिस	L. bhutanensis
लो० सिक्किमेन्सिस	L. sikkimensis
लोफोपेटालुम वाइटिआनुम	Lophopetalum wightianum
लोबारिआ	Lobaria
लो० पुल्मोनारिआ	L. pulmonaria
लोबेलिआ एरीनुस	Lobelia erinus
लो० राडीकान्स	L. radicans
वाटिका	Vatica
वाटेरिआ	Vateria
वा० ईन्डिका	Vindica
वाटेरिओप्सिस	Vateriopsis
वानील्ला फ्राग्रान्स	Vanilla fragrans
वान्डा काएरुलेआ	Vanda caerulea
वा० टेस्टासेआ	V. testacea
वा० टेस्सेल्लाटा	V. tessellata
वालिचिआ डेन्सीफ्लोरा	Wallichia densiflora
वालेरिआना ऑफ्फीसिनालिस	Valeriana officinalis
वा० जटामांसी	V. jatamansi
वा० वालिचिई	V. wallichii
वाल्लारिस सोलानासेआ	Vallaris solanacea
वाल्लिस्नेरिआ स्पीरालिस	Vallisneria spiralis
वाशिंगटोनिआ फिलिफेरा	Washingtonia filifera
वि० ओडोराटा	Viola odorata
वि० पाट्रिनिई	V. patrinii

वि० पीलोसा	V. pilosa
वि० ट्रीकोलोर प्र० हॉर्टेन्सिस	V. tricolor Var. hortensis
विटेक्स नेगुन्डो	Vitex negundo
विस्कुम अल्बुम	Viscum album
वि० आर्टीकुलाटुम	V. articulatum
वि० ओरिएन्टालिस	V. orientalis
वि० मीसोरेन्स	V. msyorense
विक्टोरिआ अमाजोनिका	Victoria amazonica
वि० क्रूजिआना	V. cruziana
विबुर्नुम कोटीनिफोलिउम	Viburnum cotinifolium
वि० फोएटिडुम	V. foetidum
वीसिआ फाबा	Vicia faba
वूडफोर्डिआ फ्रूटीकोसा	Woodfordia fruticosa
वेटीवेरिआ जीजानीओइडेस	Vetiveria zizanioides
वेनीडिउम फास्टुओसुम	Venidium fastuosum
वेन्टीलागो डेन्टीकुलाटा	Ventilago denticulata
वेन्टूरिआ इनएकुआलिस	Venturia inequalis
वेरोनिका अनागाल्लिस प्र० ब्राक्टेओसा	Veronica anagallis var. bracteosa
वेर्नोनिआ सीनेरेआ	Vernonia cinerea
वेर्बास्कुम थप्सुस	Verbascum thapsus
वेलविट्शिआ	Welwitschia
वोल्वारिआ वोल्वासेआ	Volvaria volvacea
शीजान्थुस वीसेटोनेन्सिस	Schizanthus wisetonensis
शोरेआ	Shorea
शो० आसामिका	S. assamica
शो० तुम्बुग्गाइआ	S. tumbuggaia
शो० राक्सबर्घिई	S. roxburghii
शो० रोबुस्टा	S. robusta
श्लेइखेरा ओलेओसा	Schleichera oleosa
सरगासुम	Sargassum
साउस्सुरेआ	Saussurea
सा० ओब्वालाटा	S. obvallata
सा० जासेआ	S. jacea
सा० काएस्पिटोसा	S. caespitosa
सा० गोस्सिपीफोरा	S. gossypiphora
सा० ग्नाफालोडेस	S. gnaphalodes
सा० ग्रामिनीफोलिआ	S. graminifolia
सा० ग्लान्डुलीगेरा	S. glanduligera
सा० ग्लासिआलिस	S. glacialis
सा० पिप्टाथेरा	S. piptathera
सा० ब्राक्टेआटा	S. bracteata
सा० लाप्पा	S. lappa
सा० सिम्पसोनिआना	S. simpsoniana
साएसलपीनिआ बोन्डुक	Caesalpinia bonduc
सा० कोरिआरिआ	C. coriaria

सावकारुम	Saccharum
सा० ओप्फीसीनारुम	S. officinarum
सा० बेंगालेन्से	S. bengalense
सा० स्पोन्टानेउम	S. spontaneum
साक्सीफ्रागा	Saxifraga
सा० डीवेर्सीफोलिआ	S. diversifolia
सा० फ्लाजेल्लारिस	S. flagellaris
सान्टालुम आल्बुम	Santalum album
सापिन्डुस एमार्गीनाटुस	Sapindus emarginatus
साप्रिआ हिमालयाना	Sapria himalayana
सालिक्स	Salix
सा० पिक्नोस्टाचिआ	S. pycnostachya
सा० फ्लाबेल्लारिस	S. flabellaris
सा० लिन्डलेइ आना	S. lindleyana
साल्वाडोरा ओलेऑइडेस	S. oleoides
सा० पेर्सिका	S. persiea
साल्विआ आएजिप्टिआका	Salvia aegyptiaca
सा० लानाटा	S. lanata
सा० स्प्लेन्डेंस	S. speendens
सिआनान्थुस	Cyananthus
सिक्लोस्टेमोन आसामिकुस	Cyclostemon assamicus
सिट्रुल्लुस कोलोसीन्थिस	Citrullus colocynthis
सिट्रुल्लुस लानाटुस	Citrullus lanatus
सिट्रुस मेडिका	Citrus medica
सिप्रीपेडिउम	Cypripedium
सि० कोर्डिगेरुम	C. cordigerum
सिमलोकॉस	Symplocos
सि० रासेमोसा	S. racemosa
सिम्बीडिउम	Cymdidium
सिर्काएआस्टेर अग्रेस्टिस	Ciraester agrestis
सिलिन्ड्रोस्पेर्मुम	Cylindrospermum
सिलेने	Silene
सि० आर्मेरिआ	S. armeria
सिसेर सोन्गारीकुम	Cicer songaricum
सिस्टान्चे टुबुलोसा	Cistanche tubulosa
सींकोना आफ्फीसिनालिस	Cinchona officinalis
सी० कालीसाया	C. calisaya
सी० लांसेफोलिआ	C. lanceaefolia
सी० लेजेरिआना	C. ledgeriana
सी० सुक्कीरुब्रा	C. succirubra
सीआथेआ	Cyathea
सीआथोडिउम ईन्डिकुम	Cyathodium indicum
सी० डेंटीकुलाटुम	C. denticulatum
सी० मेहरानुम	C. mehranum

सीआमोप्सिस टेट्रागोनोलोबा	Cyamopsis tetragonoloba
सीकास पॅक्टीनाटा	Cycas pectinata
सी० बेॅड्डोमेई	C. beddomei
सी० रुम्फिई	C. rumphii
सी० रेवोलूटा	C. revoluta
सी० सीर्सिनालिस	C. circinalis
सीगेस्बॅकिआ ओरिएन्टालिस	Sigesbeckia orientalis
सीजीजिउम कूमिनी	Syzygium cumini
सी० प्सेउडोफोर्मोसुम	S. pseudoformosum
सीट्ज़ेनिआ लानाटा	Seetzenia lanata
सीडा आकूटा	Sida acuta
सी० कोर्डाटा	S. cordata
सी० त्यागिई	S. tiaggii
सी० र्‌होम्बीफोलिआ	S. rhombifolia
सी० वेरोनिसीफोलिआ	S. veronicifolia
सीडेरोक्सीलोन	Sideroxylon
सीनोग्लोस्सुम	Cynoglossum
सी० अमाबिले	C. amabile
सी० रिचीएेई	C. ritchiei
सीनोडोन डाक्टीलोन	Cynodon dactylon
सीन्नामोमुम काम्फोरा	Cinnamomum camphora
सी० जेइलानिकुम	C. zeylanicum
सी० टमाला	C. tamala
सी० सेसिकोडाफ्ने	C. cecicodaphne
सीपेरुस एटकिन्सोनी	Cyperus atkinsoni
सी० आरेनारिउस	C. arenarius
सी० ईरिआ	C. iria
सी० कोन्ग्लोमेराटुस	C. conglomeratus
सी० नीवेउस	C. niveus
सी० रोटुन्डुस	C. rotundus
सीबोटिउम आसामिकुम	Cibotium assamicum
सीमोडोसेआ रोटुन्डाटा	Cymodocea rotundata
सीम्बोपोगोन	Cymbopogon
सी० ज्वारान्कुसा	C. jwarancusa
सी० नार्डुस	C. nardus
सी० फ्लेक्सुओसुस	C. flexuosus
सी० मार्टिनिई	C. martinii
सी स्चोएनान्थुस	C. schoenanthus
सीर्टोकोक्कुम अक्रेस्सेन्स	Cyrtococcum accrescens
सीट्टारिआ	Cyttaria
सीरिंगा एमोडी	Syringa emodic
सीसाम्पेलोस पारेइरा	Cissampelos pareira
सीस्सुस क्युआड्रान्गुलारिस	Cissus quadrangularis
सी० रेपान्डा	C. repanda
सूरिआना मारीटिमा	Suriana maritima

सेकाले सेरेआले	Secale cereale
सेटारिआ	Setaria
से० इटालीका	S. italica
से० टोमेन्टोसा	S. tomentosa
सेडुम	Sedum
से० टिबेटिकुम	S. tibeticum
सेट्रारिआ	Cetraria
सेड्डेरा लाटीफोलिआ	Seddera latifolia
सेड्रुस देओदारा	Cedrus deodara
सेड्रेला टूना	Cedrela toona
सेनेसिओ	Senecio
से० वुल्गारिस	S. vulgaris
सेन्क्रुस प्रीएउरिई	Cenchrus prieurii
से० प्रीऐउरिई प्र० साक्रा	C. prieurii var sacra
से० बीफ्लोरुस	C. biflorus
से० राजस्थानेन्सिस	C. rajasthanensis
से० सीलिआरिस	C. ciliaris
से० सेटीगेरुस	C. setigerus
सेन्टाउरेआ सीआनुस	Centaurea cyanus
सेन्टेल्ला एशिआटिका	Centella asiatica
सेफाएलिस इपेकाकुआन्हा	Cephaelis ipecacuanha
सेफालोजिआ ईन्डिका	Cephalozia indica
से० गोल्लानिई	C. gollani
से० सिआमेन्सिस	C. Siamensis
से० हेर्जोगिआना	C. herzogiana
सेफालोटाक्सुस ग्रिफ्फिथिई	Cephalotaxus griffithii
से० मान्निई	C. mannii
सेमेकार्पुस अनाकार्डिउम	Semecarpus anacardinm
से० कुर्जिई	S. kurzii
से० प्रेनिई	S, prainii
सेराटोप्टेरिस	Ceratopteris
से० थालिक्ट्रोइडेस	C. thalictroides
सेरिऑप्स टगाल	Ceriops tagal
से० राक्सबर्घिआना	C. roxburghiana
सेरिकोस्टोमा पाउसीफ्लोरुम	Sericostoma pauciflorum
सेरोपेजिआ फान्टास्टिका	Ceropegia fantastica
सेलाजीनेल्ला ब्रीओप्टेरिस	Selaginella bryopteris
सेलास्ट्रुस पानीकुलाटुस	Celastrus paniculatus
सेलीनुम	Selinum
से० टेनुईफोलिउम	S. tenuifolium
सेर्वाएला टूबेरीफेरा	Sewardiella tuberifera
सेसुविउम पोर्टुलाकास्ट्रुम	Sesuvium portulacastrum
से० सेसुविओइडेस	S. sesuvioides
सोएलोगिने	Coelogyne
सो० आंगुस्टीफोलिआ	C. angustifolia

सो० कोरीम्बोसा	C. corymbosa
सोन्नेराटिआ	Sonneratia
सो० अपेटला	S. apetala
सोयमीडा फेब्रीफुगा	Soymida febrifuga
सोरबारिआ टोमेन्टोसा	Sorbaria tomentosa
सोरघुम	Sorghum
सो० हालेपेन्से	S. halepense
सोलानुम टुबेरोसुम	Solanum tuberosum
सो० नीग्रुम	S. nigrum
सो० सेआफोर्थिआनुम	S. seaforthianum
सोलेनोस्टेम्मा	Solenostemma
स्काएवोला प्लूमिएरी	Scaevola plumieri
स्का० सेरीसेआ	S. sericea
स्कीमा	Schima
स्की० खासिआना	S. khasiana
स्की० वालिचिई	Schima wallichii
स्कीर्पुस टेर्नाटुस	Scirpus ternatus
स्की० रोइलेई	S. roylei
स्कुर्रुला एलाटा	Scurrula elata
स्कु० कोर्डीफोलिआ	S. cordifolia
स्कु० पुल्वेरुलेन्टा	S. pulverulenta
स्केनेडेस्मुस	Scenedesmus
स्कोलोपिआ कार्निओलिक	Scolopia carniolic
स्क्रोफुलारिआ	Scrophularia
स्क्रो० डेन्टाटा	S. dentata
स्क्लेरोस्टाचीआ फुस्का	Sclerostachya fusca
स्कीजाचीरिउम एक्सीले	Schizachyrium exile
स्टाकिस टिबेटिका	Stachys tibetica
स्टाचीटार्फेटा ईन्डिका	Stachytarpheta indica
स्टा० जामाइकेन्सिस	S. jamaicensis
स्टिगोनेमा	stigonema
स्टीपाग्रोस्टिस पोगोनोप्टिला	Stipagrostis pogonoptila
स्टी० हिर्टीग्लुमा	S. hirtigluma
स्टेफानिआ हेर्नान्डीफोलिआ	Stephania hernandifolia
स्टेमेनोपोरुस	Stemenoporus
स्टेरेओस्पेर्मुम सुआविओलेन्स	Stereospermum suaveolens
स्टेर्कुलिआ उरेन्स	Sterculia urens
स्टे० काम्पानुलाटा	S. campanulata
स्टे० विल्लोसा	S. Villosa
स्टेल्लारिआ मेडिआ	Stellaria media
स्ट्रेब्लुस आस्पेर	Streebus asper
स्ट्रोबिलान्थेस हालबेर्जिई	Strobilanthes hallbergii
स्पाथोडेआ काम्पानुलाटा	Spathodea campanulata
स्पार्टिना	Spartina
स्पारास्सिस क्रिस्पा	Sparassis crispa

स्पिनीफेक्स लीट्टोरेउस	Spinifex littoreus
स्पि० स्क्वार्रोसुस	S. squarrosus
स्पीनासिआ ओलेरासेआ	Spinacia oleracea
स्पीराएआ कानेस्सेंस	Spiraea canescens
स्पी० वाक्सीनिफोलिआ	S. vaccenifolia
स्पेर्माकोसे लाटीफोलिआ	Spermacoce latifolia
स्पेर्माडिक्टीऑन सुआवेओलेन्स	Spermadictyon suaveolens
स्पोन्डिआस पीन्नाटा	Spondias pinnata
स्पोरोबोलुस ट्रेमुलुस	Sporobolus tremulus
स्पो० हेल्वोलुस	S. helvolus
स्प्रूसिआंथुस मारिआनुस	Sprucianthus marianus
स्फाग्नुम	Sphagnum
स्फा० स्कुआर्रोसुम	S. squarrosum
स्फेनोमेरिस चीनेन्सिस	Sphenomeris chinensis
स्मिथिआ सेन्सीटिवा	Smithia sensitiva
स्मीलाक्स	Smilax
स्मी० आस्पेरा	S. aspera
स्मी० जेइलानिका	S. zeylanica
स्वेइन्फुर्थिआ पापीलिओनासेआ	Schweinfusrthia papilionacea
स्वीएटेनिआ माहागोनी	Sweietenia mahagoni
स्वेर्टिआ	Swertia
स्वे० चिराटा	S. chirata
हकेलोक्लोआ ग्रानुलारिस	Hackelochloa granularis
हर्बेर्टा	Herberta
हाएमाटोकार्पुस	Haematocarpus
हाप्लोक्सीलोन	Haploxylon
हान्डेलिओब्रिउम सेट्शवानीकुम	Handeliobryum setschwanicum
हाप्लोमीट्रिउम ग्रोल्लेई	Haplomitrium grollei
हा० हुकेरी	H. hookeri
हाबेनारिआ कोम्मेलिनीफोलिआ	Habenaria commelinifolia
हा० फुर्सीफेरा	H. furcifera
हा० मार्गीनाटा	H. marginata
हामिल्टोनिआ सुआवेओलेन्स	Hamiltonia suaveolens
हार्डवीकिआ बीनाटा	Hardwickia binata
हालेस्पेस्टेस ट्रिकुस्पिस	Halerpestes tricuspis
हालोक्सीलोन मुल्टीफ्लोरुम	Haloxylon multiflorum
हा० सालिकोर्निकुम	H. salicornicum
हालोपीरुम मुक्रोनाटुम	Halopyrum mucronatum
हालोफिला ओवालिस	Halophila ovalis
हिओस्किआमुस नीजेर	Hyoscyamus niger
हि० पुसील्लुस	H. pusillus
हिप्टागे बेन्गालेन्सिस	Hiptage benghalensis
हिप्पूरिस वुल्गारिस	Hippuris vulgaris
हिप्पोफाए	Hippophae
हि० टिबेटाना	H. tibetana

हि० फ्लाबेल्लाटुम	H. flabellatum
हि० र्‌हाम्नोइडेस	H. rhamnoides
हि० सालिसिफोलिआ	H. salicifolia
हिबिस्कुस मीक्रान्थुस	Hibiscus micranthus
हि० रोसा-सीनेन्सिस	H. rosa-sinensis
हि० सीरिआकुस	H. syriacus
हिड्रोकोटिले जावानिका	Hydrocotyle javanica
हिमेनोडिक्टिऑन एक्सेल्सुम	Hymenodictyon excelsum
हि० ओबोवाटुम	H. obovatum
हिमेनोफीटॉन लाप्लोपोडुम	Hymenophyton laplopodum
हीग्रोफिला	Hygrophila
हीग्रोरीज़ा अरीस्टाटा	Hygroryza aristata
हीड्रान्जेआ माक्रोफिल्ला	Hydrangea macrophylla
हीड्रिल्ला	Hydrilla
ही० पोलिस्पेर्मा	H. polysperma
ही० वेर्टीसिल्लाटा	H. verticillata
हीपोडेमाटीउम क्रेनाटुम	Hypodematium crenatum
हीपोपिथीस	Hypopithys
हीफाएने ईन्डिका	Hyphaene indica
ही० डीकोटोमा	H. dichotoma
ही० थेबाइका	H. thebaica
हुब्बार्डिआ	Hubbardia
हु० हेप्टानेउरोन	H. heptaneuron
हेटेरोपोगॉन	Heteropogon
हे० कोन्टोर्टुस	H. contortus
हेडीकिउम थीर्सिफोर्मे	Hedychium thyrsiforme
हेमार्थ्रिआ कॉम्प्रेस्सा	Hemarthria compressa
हेमीग्राफिस लाटेब्रोसा	Hemigraphis latebrosa
हेमीडेस्मुस ईन्डिकुस	Hemidesmus indicus
हेराक्लेउम	Heracleum
हेरीटिएरा फोमेस	Heritiera fomes
हे० मिनोर	H. minor
हे० लिट्टोरालिस	H. littoralis
हेर्नान्डिआ पेल्टाटा	Hernandia peltata
हेलिआन्थुस आन्नुउस	Helianthus annus
हेलिओट्रोपिउम कुरस्सावीकुम	Heliotropium curassavicum
हे० पेरुविआनुम	H. peruvianum
हे० बाक्सीफेरुम	H. bacciferum
हे० रारीफ्लोरुम	H. rariflorum
हे० स्ट्रिगोसुम	H. strigosum
हेलिक्टेरेस इसोरा	Helicteres isora
हेलिप्टेरुम रोसेउम	Helipterum roseum
हेल्मिन्थोस्टाचिस जेइलानिका	Helminthostachys zeylantica
हेल्वेल्ला	Helvella
होपेआ	Hopea

हो० ओडोराटा	H. odorata
हो० पार्वीफ्लोरा	H. parviflora
हो० वाइटिआना	H. wightiana
होमोनोइआ रिपारिआ	Homonoia riparia
होर्डेउम वुल्गारे	Hordeum vulgare
होर्नेओफीटान	Horneophyton
होर्सफिएल्डिआ किंगिई	Horsfieldia kingii
होलार्रहेना	Holarrhena
हो० आन्टीडिसेंटेरिका	H. antidysenterica
होलीगार्ना आर्नोट्टिआना	Holigarna arnottiana
हो० ग्राहमी	H. grahami
होलोप्टेलेआ इन्टेग्रीफोलिआ	Holoptelea integrifolia
होल्कुस मोल्लीस प्र० वारीएगाटुस	Holcus mollis var. variegatus
होल्मस्कीओल्डीआ सान्गुइनेआ	Holmskioldia sanguinea

हिन्दी अंग्रेजी शब्दावली

अंगक	Organelle
अतिक्रमण	Encroachment
अधिकृत नमूना	Authentic sample
अधिपादपी	Epiphytic
अनावृतबीजी	Gymnosperms
अनुकूलन	Adaptation
अन्त:जातीय	Intraspecific
अन्त: रचना	Anatomy
अन्तर्जातीय	Interspecific
अन्तर्निहित	Inherent
अपरबहुगुण	Allopolyploid
अपसारी	Divergent
अपक्षरित	Eroded
अभयारण्य	Sanctuary
अर्धसूत्री विभाजन	Meiotic division Meiosis
अल्प जलोत्सारित	Poorly drained
अवतान	Canopy storey
अवयव	Constituent
अष्टगुण	Octoploid
असदृश	Heterologous
अक्षांश	Latitude
आकारिकी	Morphology
आत्मपोषी	Autotrophic
आधार संख्या	Base number
आनुवंशिकीविद्	Geneticist
आन्तरिक आकारिकी	Anotomy
आपेक्षिक आर्द्रता	Relative humidity
आरोही	Climbers
ऊतक	Tissue
उद्गम	Origin
उपकुल	Subfamily
उपनिवेशन	Colonisation
उपसारी	Convergent
उपरिरोही	Epiphytes
उपोष्ण	Subtropical
उभयचर	Amphibious
उष्ण कटिबन्धीय	Tropical
उष्णकटिबन्धीय वर्षा वन	Tropical rain forest
उद्यान विज्ञानी	Horticulturist
ऊतक संवर्धन	Tissue culture

एककोशीय	Unicellular
एकबीजपत्री	Monocuty ledonous
एक-प्ररूपिक	Monotypic
एक-शर्करीय	Mono-saccharide
कंटीले वन	Thorny Scrub.
कच्छ वनस्पति	Mangrove vegetation
कंद	Tuber
कवक	Fungus
कवक मूल	Mycorrhyza
कार्बनिक क्षेप्य	Organic waste
कार्यिकी	Physiology
काष्ठीय	Woody
किण्वन	Fermentation
कीटभक्षी	Insectivorous
कुल	Family
कोशिका	Cell
कोशिका द्रव्य	Cytoplasm
कोशिकानुवांशिकी	Cytogenetics
कोशिकाविद्	Cytologist
गण	Order
गुण सूत्र	Chromosomes
चतुष्ट विश्लेषण	Tetrad analysis
चयापचयन	Metabolism
चीड़	Pine
जड़-परभोगी	Root parasite
जर्मप्लाज्म	Germ plasm
जलोद्भिद	Hydrophyte
जाति	Species
जीन भंडार	Gene poop
जीवद्रव्य का प्रवाह	Protoplasmic streaming
जीवमंडल आरक्षण क्षेत्र	Biosphere reserve
जीव रसायनज्ञ	Biochemist
जीव संश्लेषण	Biosynthensis
जीवाणु	Bacteria
जीवाश्म	Fossil
टीबे (मरु)	Sand dunes
ढाल ढलान	Slopes
तल छटीय	Sedimentary
तिल्ली	Spleen
थैलस	Thallus
दक्षिणी उष्ण शुष्क पर्णपाती वन	Southern tropical dry deciduous forest
देशान्तर	Longitude
द्विआयामी	Two dimensional
द्विगुण	Diploid

द्विनाम पद्धति	Binomial system
द्विबीजपत्री	Dicotyledonous
द्वीप	Island
द्वीप पुंज	Archipelago
नदी तट के पौधे	Riverain flora
नमूना	Specimen sample
नाइट्रोजन स्थिरीकरण	Nitrogen fixation
नामकरण	Nomenclature
निर्वनीकरण (वनकटान)	Detorestation
निषेचन	Fertilization
निस्सारण	Extraction
नूतन पौध प्रमाण	New plant record
नृवनस्पति विज्ञान	Ethnobotany
न्यूक्लिक अम्ल	Nucleic acid
पृथक्करण	Isolation
पठार	Plateau
परजीवी	Parasite
परागकण	Pollen
पराबैंगनी	Ultraviolet
पराश्रयी पौधे	Parasitic plants
परितंत्र	Ecosystem
परिपाचन	Assimilation
परिस्थिति विज्ञान	Ecology
पर्णहरित	Chlorophyll
पर्यावरण	Environment
पादप रोपण	Plantation
पादपालय	Herbarium
पारिस्थितिक	Ecological
पिच्छाकार	Pinnate
पीढ़ी का एकांतरण	Alternation of generation
पुनरुत्पादित	Regenerated
पुनरुत्पादन	Regeneration
पुनर्विन्यास	Rearrangement
पुलिन वन	Beach formations
पुष्पावलि वृन्त	Peduncle
पुष्पी पौधे	Flowering plants
पुमणु	Spermatozoides
पैतृक	Parental
पोषक	Host
प्रकंद	Rhizome
प्रकाश संश्लेषण	Photosynthesis
प्रचुरता	Abundance
प्रदूषण	Pollution
प्रभेद	Variety
प्ररूप	Types

प्रवेशन	Introduction
प्रहरिता	Liverwort
प्राकृत-वास	*Habitat*
प्राचीन पौधे	Primitive plants
प्रायद्वीप	Peninsular
फ्लोरा	Flora
बन्धुता	Attinity
हिम-बर्फानी भूगर्भशास्त्र	Glacial Geology
बहुशर्करीय	Poly saccharide
बिम्ब पुष्पक	Discfloret
बीज संवर्धन	Seed culture
बीजाणुउद्भिद	Sporophyte
भूगर्भीय	Geological
मण्ड	Starch
मध्ययुगीन/मध्यकालीन	Mediveal
मरुद्भिदी	Xerophyte
मशरूम	Mushroom
मॉस	Moss
मिश्रक	Adulterant
मूलाभास	Rhizoid
मृतोपजीवी	Saprophyte
मृदा अपक्षरण	Soil erosion
युग्मीकरण	Pairing
रंगावलीक्षा	Spectroscopy
रंगावलि	Spectra
रंजक	Dye
रश्मि पुष्पक	Ray floret
रसायन वर्गिकी	Chemo-taxonomy
राष्ट्रीय उद्यान	National park
राष्ट्रीय मरुउद्यान	Desert National Park
रूपान्तरण	Tarnsformation
रेशे	Fibres
लवक	Plastids
लवणयुक्त	Brackish
लाइकेन	Lichen
लासिकी	Serology
लुप्त	Extinct
लुप्तप्राय	Endangered/Threatened
लोमयुक्त	Wooly
वंश	Genus
वनस्पतिजात	Flora
वनस्पति विश्लेषण वर्ग	Floristic analysis class
वर्गिकी	Taxonomy systematics
वर्गीकरण	Classification

वल्लरी	Creepers
वायुशिफ वन	Mangroove forest
विकास	Evolution
वितान	Canopy
विदेशी	Exotic
विद्युत भरण	Electro-phoresis
विरले	Rare
विविधता	Diversity
विसर्पी	Trailing
विस्थापक	Substitutes
वेलावन	Tidal forest
वृन्त (पर्ण)	Petiole
वृन्त (पर्णाग)	Stipe
वृक्ष-सम पर्णाग	Tree ferns
व्युत्पन्न	Derived
शंकुधारी वृक्ष	Coniferous plants
शाक	Herb
शाकविद्	Herbalist
शाकीय	Herbaceous
शीतोष्ण	Temperate
हिमाद्रि	Alpine
शैवाक	Lichen
शैवाक की	Lichenology
शैवाक फ्लोरा	Lichen flora
शैवाल	Algae
श्रृंगार प्रसाधन	Cosmetics
संकटग्रस्त	Endangered
संकर	Hybrid
संकरण	Hybridization
संगतता	Compatibility
संपुटिका स्फुटन	Dehiscence of capsule
संरचना	Structure
संरक्षण	Conservation
संवहनी पौधे	Vascular plants
संवृत बीजी	Angiosperm
संशोधन	Revision
सदाबहार	Evergreen
सन्तुलन	Balance
समुद्रतटीय क्षेत्र	Littoral
समुद्री शैवाल	Marine algae
समूह	Group
सहजीवी संयोग	Symbiotic association
सह-प्ररूप	Isotype
सार काष्ठ	Heart wood
सीमित क्षेत्री	Endemic

सूचक	Indicator
सूचीपत्र	Catalogue
सूक्ष्म	Micro
सूक्ष्मदर्शी	Microscope
सूत्रीचक्र	Mitotic cycle
स्तूप गद्देनुमा	Cushion forming
स्थलीय	Terrestrial
स्थानसीमन	Localisation
स्वजात	Wild
हरिता	Moss
हरिताविद्	Bryologist
क्षाराभ	Alkaloid
क्षुप	Scrap
क्षुप्यज	Ericaceous

3

संदर्भ-सूची

(भारत की वनस्पति से संबंधित कुछ साहित्य)

अनाम (1977) **बुलेटिन आफ बाटेनिकल सर्वे आफ इंडिया**, खंड-19, हावड़ा।

कांजीलाल, यू० एन० एवं अन्य (1934-1940) **फ्लोरा ऑफ आसाम**, खंड 1-4, कलकत्ता।

कुक, टी० (1902-1903) **द फ्लोरा आफ प्रेसीडेंसी ऑफ बोम्बे।** खंड 1-3 (पुनर्मुद्रित 1958) कलकत्ता।

गेम्बल, जे० एस० (1915-1935) **द फ्लोरा ऑफ प्रेसीडेंसी आफ मद्रास**, खंड 1-3 पुनर्मुद्रित 1957) कलकत्ता।

चैम्पियन, एच० जी० एवं एस० के० सेठ (1968), **ए रिवाइज्ड सर्वे आफ द फोरेस्ट टाइप्स ऑफ इंडिया**, दिल्ली।

चौधरी, एच० जे० एवं बी० एम० वाधवा (1984) **फ्लोरा ऑफ हिमाचल प्रदेश** खंड 1-3, हावड़ा।

जैन, एस० के० (1977) फ्यूचर स्ट्रेटेजीज फार बोटेनिकल एक्सप्लोरेशन इन इंडिया। **बुल बॉट सर्व इण्डिया** 19 : 179-184.

जैन, एस० के० (1982) बॉटनी आफ ईस्टर्न हिमालयाज। जी० एस० पालीवाल द्वारा संपादित **वेजीटेशनल वेल्थ ऑफ हिमालया** में, 201-217.

जैन एस० के० एवं आर० आर० राव (1977) **ए हैन्ड बुक ऑफ फील्ड एन्ड हर्बेरियम मेथड्स**, नई दिल्ली : टूडे एन्ड टूमारो।

जैन एस० के० एवं ए० आर० के० शास्त्री (1978) प्लान्ट रिसोर्सेज ऑफ द हिमालयाज। **प्रोस० नेशन० सेम० रिस० डेव० इन्विरोन, हिमाल० रीज०** 98-107, विज्ञान एवं औद्योगिक विभाग, नई दिल्ली।

डथी, जे० एफ० (1903-1920) **फ्लोरा ऑफ द अपर गंगेटिक प्लेन।** खंड 1-3, कलकत्ता।

देव, डी० बी० (1961) प्लांट्स आस मनीपुर। बुल० बॉट० सर्व इन्डिया 3 : 115-138 एवं 253-330।

नायर, ए० सी० (1977) फ्लोरा आफ बशाहार हिमालयाज, मद्रास।

प्रेन, डी० (1903) बंगाल प्लांट्स, खंड 1-2, (पुनर्मुदित 1963) कलकत्ता।

बाबू, सी० आर० (1977) हर्बेसियस फ्लोरा ऑफ देहरादून। नई दिल्ली।

बालकृष्णन, एन० पी० (1980-1981) फ्लोरा ऑफ जवाई, खंड 1-2, हावड़ा।

बेन्नेट, एस० एस० आर० (1979) फ्लोरा ऑफ हावड़ा डिस्ट्रिक्ट, देहरादून।

महेश्वरी, जे० के० (1963) द फ्लोरा ऑफ डिल्ली, नई दिल्ली।

मुखर्जी, ए० के० (1984) फ्लोरा ऑफ पचमढ़ी एन्ड बोरी रिजर्वस, हावड़ा।

मैथ्यू, के० एस० (1981) मेटीरियल फोर ए फ्लोरा ऑफ द तमिलनाडु—कर्नाटक तिरुचिरापल्ली।

राउ, एम० ए० (1974) वेजीटेशन एन्ड फाइटोजीयोग्राफी ऑफ द हिमालयाज, एम० एस० मनी द्वारा संपादित इकोलो एन्ड बायोजीयोग्राफी ऑफ इंडिया में, 247-210, जुन्क : द हेग।

रव, आर० आर० एवं बी० ए० राजी (1981) ए सिनोप्टिक फ्लोरा ऑफ मैसूर डिस्ट्रिक्ट, नई दिल्ली।

राव, ए० एस० (1974) द वेजीटेशन एन्ड फाइटोजीयोग्राफी ऑफ आसाम-बर्मा, एम० एस० मनी द्वारा सम्पादित, इकोलोजी एण्ड बायोजियोग्राफी आफ इन्डिया में 204-246, जुन्क: द हेग।

शर्मा, बी० डी०, एन० पी० सिंह, आर० एस० राघवन एवं यू० आर० देश पाण्डे (1984) फ्लोरा ऑफ कर्नाटक, हावड़ा।

शैट्टी, बी० वी० एवं आर० पी० पाण्डे (1983) फ्लोरा ऑफ टौंक डिस्ट्रिक्ट, हावड़ा।

सल्धाना, सी० जे० एवं डी० एच० निकोल्सन (1976) फ्लोरा ऑफ हसन डिस्ट्रिक्ट, नई दिल्ली।

संतापाऊ, एच (1958) फ्लोरा ऑफ खंडला। **रिक० बॉट० सर्व० इन्डिया** 16 : 1, 1-396 (320 एडिशन, 1967)।

सिंह, बी० (1983) फ्लोरा आफ बांसवाड़ा डिस्ट्रिक्ट, हावड़ा।

सुब्रामण्यम के० एवं एम० पी० नायर (1974) वेजीटेशन एन्ड फाइटोजियोग्रोफी ऑफ वेस्टर्न घाट्स। एम० एस० मनी द्वारा सम्पादित **इकोलोजी एन्ड बायोजीयोग्राफी ऑफ इन्डिआ**, 178-1961 जुन्क : द हेग।

हूकर, जे० डी० (1872-1896) फ्लोरा ऑफ ब्रिटिश इन्डिया, खंड 1-7, लंदन (पुनर्मुद्रित 1973)।